बेटी व बहिन देके कमा खाते थे रोटी।
शरमाते न थे करनेमे करतूत ये खोटी!
साले व ससुर होनेकी अभिलाष थी मोटी।
तज दीनको दुनियाके लिये देते थे चोटी!
यह हाल था उस वक्तके महिपालवरोंका।
कहना जिसे लजयाना है खुद अपने घरोंका ॥ ४ ॥

थी फूट यहाँतक, कि जुदे़ले सगे भाई।
रखते थे दिली मैल, निरखते थे सफ़ाई॥
बूँदीके, बिकानेरके, अम्बरके सवाई।
मुग़लोंके लिये मारते अपने सगे भाई!
रानाके सगे भाई सकतसिंह व सागर।
भाईको दग़ा देके मिले शत्रुसे जाकर ॥ ५ ॥

'परताप'ने देखा, कि "बला (२) देशके सर है।
पति-भाँति बुज़ुर्गोंकी बचे, इसका भी डर है॥
निज धर्म्मकी, निज देशकी रक्षा मेरे कर है।
यह देख तो पड़ता है, कि मुश्किलसे गुज़र है॥
पर, देहमें जबतक है रकत रामकी नसका।
दम रहते तो हूँगा न मुसलमानके बसका ॥ ६ ॥

ब्याहूँगा न बेटी, न कभी पाँव परूँगा।
छेड़ैगा तो दिल खोलके मैदान करूँगा॥

(२) बला—विपत्ति।

हो हिन्दका क्षत्री जो करै नीचकी सेवा।
अच्छा हो जो कालीजी करैं उसका कलेवा॥
भेजै जो बहिन बेटी मुसलमानके घरमें।
भेजा न रहै रामजी ! उस नीचके सरमें" ॥ ७ ॥

अकबरको उधर फ़िक्र थी इस बातकी हरदम।
"परतापको किस भाँति बना लीजिये हमदम (१)॥
बेटी व बहिन व्याहके इज़्ज़त न करै कम।
इतनाही फ़क़त कहदे, कि 'मातहत (२) हुए हम'॥
इस छोटेसे सरदारको वश कर न सके शाह।
धब्बासा मेरी शानमें लगती है यह अफ़वाह"(३) ॥ ८ ॥

परतापके वे देशके, औ जातिके भाई।
कर शाहसे सम्बन्ध जिन्हें लाज न आई!
सुन सुनके कि जग करता है सब उनकी हँसाई।
नित दिलमें रहा करती थी यह बात समाई॥
"जबतक न मिलै हममें उदयपूरका राना।
हम सबकी उड़ावैगा हँसी सारा ज़माना" ॥ ९ ॥

परताप व अकबरमे थी इस वजहसे अनबन्।
दक्खिनके बखेड़ोंसे पै चलता न था कुछ फ़न् (४)॥
था ताकमे अकबर कि "बहानेका मिलै कन् (५)।
औंर जाके दबोचूँ कि अचानकमें रहे सन्॥

(१) हमदम—मित्र। (२) मातहत—अधीन। (३) अफ़वाह—खबर। (४) फ़न—चालाकी। (५) कन्—ज़र्रा, रच।

रानाको भी अभिमानका कुछ स्वाद चखा दूँ।
केसा हूँ मुग़लज़ादा मैं, दुनियाको दिखा दूँ" ॥१०॥

परताप भी यह जानते थे, एक न इक दिन
कुछ रंग नया लायेगी यह शाहकी अनबन॥
पर दिलमें यही ठानी थी, "टुकड़े हो चहे तन।
धन-प्राण चले जायें, न छोड़ूँगा मगर पन॥
निज देशकी, निज धर्म्मकी मर्य्याद रखूँगा।
श्रीरामकी औलादको दाग़ी न लखूँगा ॥११॥

जिस वंशके वीरोंने बनाया महासागर।
गङ्गाको बहाया है धराधाममें लाकर॥
तोड़ा है महादेवका कोदंड (१) उठाकर।
रीछोंसे, कपीशोंसे बँधाया है समुन्दर (२)॥
रघु, रामसे पैदा हुए जिस वंशमें भूपन।
अच्छा नहीं, उस कुलमें लगाना कोई दूपन ॥१२॥

क्या डर है अगर फ़ौज नहीं, धन भी नहीं है।
भैयोंसे भली भाँतिसे कुछ बन भी नहीं है॥
ग़ल्ला व रसद नामसे इक कन भी नहीं है।
सेवाके लिये पासमें इक जन (३) भी नहीं है॥
जिस रामने पानीपै उतरवाये थे पाथर।
विश्वास है, इमदाद (४) करेंगे वही आकर" ॥१३॥

---

(१) कोदण्ड—धनुष।
(२) समुन्दर—समुद्र।
(३) जन—सेवक।
(४) इमदाद—सहायता।

इस तरहके विश्वाससे परताप निडर थे।
रन, वनमें भी रहनेको समझते थे कि घर थे॥
थिल्लेसे उन्हें शेर थे, पिल्लेसे सुवर थे।
था छत्र कमल-पत्र, तो निज हाथ चँवर थे॥
था रामका और अपने भुजावलका भरोसा।
भाईका, न वन्धूका, न था दलका भरोसा ॥१४॥

देखा है य अक्सर कि करौ जिसका अँदेशा।
होतव्य(१) व आ पड़ती है, आगे ही हमेशा॥
दक्खिनकी विजय करके शहंशाहका साला।
श्रीमानजी, अम्बरके महाराजका बेटा॥
दिल्लीको चला राहमें रजथानसे(२) होते।
परताप व अकबरमें घमासान सा वोते ॥१५॥

श्रीमानका परतापने सत्कार कराया।
ठहराके भली भाँतिसे भोजनको बुलाया॥
भोजनके समय अपनेको बीमार बताया।
सँग 'मान'के खानेको कुँवर अपना पठाया॥
'क्यों राना नहीं आये?' यह जब मानने पूँछा।
'सिर-दर्दसे पीड़ित हैं' य उत्तर मिला छूँछा ॥१६॥

उत्तरको सुने मानको भोजन नहीं भाता।
मन्त्रीकी तरफ़ हेरके, है क्रोध जनाता॥

---

(१) होतव्य—होनहार।
(२) रजथान—राजस्थान।

"परतापसे कह दो कि मैं खाना नहीं खाता।
सिर-दर्दकी औषधिके लिये दिल्ली हूँ जाता॥
औषधिको लिये शीघ्र इन्हीं पाँवों फिरूँगा।
सिर-दर्द मिटाकरके तो जल-पान करूँगा" ॥१७॥

यह कहके बिना खाये ही उठ घोड़ेपै बैठे।
परताप वहीं आगये निज मूँछ उमैठे॥
तब मानजी परतापसे ललकारके बोले।
"कर मानका अपमान, कोई सुखसे भी सोले॥
है नाम मेरा मान, तो परताप! रखो याद।
अभिमान तेरा चूर, करूँ तुझको भी बरबाद" ॥१८॥

परताप य सुन मानकी अभिमान भरी बात।
वीरोंकी तरह मानको दी, बातकी इक लात॥
जिस बातसे बस मान भी ज़िच खाके हुए मात।
दिखलाते बनी और अधिक कुछ न करामात॥
गंभीर सी आवाज़में रानाने कहा यों।
"जो करके दिखाना है, व कहते हो भला क्यों? ॥१९॥

क्षत्री हो डरे जानको, कुल-कान (१) मिटावे।
नाचीज़ (२) सी कुछ राज्यके हित लोक हँसावे॥
आधीन हो सेवा करे, नित शीश नवावे!
इतनेपै भी वीरत्वकी कुछ शान जनावे!

(१) कान—इज्जत।
(२) नाचीज—तुच्छ।

संग ऐसोंके भोजन नहीं परतापजी करते ।
करना हो सो जा कीजिये, तिलभर नहीं डरते" ॥२०॥
परतापने जब मानको यह बात सुनाई ।
उड़ने लगी बस मानके चेहरेपै हवाई ॥
चलनेके लिये घोड़ेको जब ऐंड़ लगाई ।
इक और भी सरदारने यह तान उड़ाई ॥
"करके कृपा, इस ओरको जब लौटके आना ।
संभव हो, तो बहनोईको भी संग ही लाना" ॥२१॥
दिल्लीमें पहुँच मानने, अकबरको सुनाया ।
"परतापने यों मुझको, महानीच बनाया" ॥
परतापकी इस बातने अकबरको जलाया ।
फ़ौरन ही हुआ हुक्म, "करो उसका सफ़ाया ॥
उस काफ़िर हिन्दूको अभी जाके करो कैद ।
मुद्दतकी (१) लगी पूजे मेरे दिलकी भी उम्मैद" ॥२२॥
बस हुक्मके होते ही हुई फ़ौज भी तैयार ।
और 'मान' (२) बनाये गये उस फ़ौजके सरदार ॥
थे 'लूनकरन' 'ग़ाज़ी' व 'सैयद' भी मददगार ।
मुलतानी, खुरासानी, पठानोंकी थी भरमार ॥
थे काबुली, गोरी व बदख़्शानी सिपाही ।
इकदममें जो फैलाते थे, मुल्कोंमें तबाही ॥२३॥

---

(१) मुद्दत—बहुत दिन ।
(२) 'मान'—राजा मानसिंह ।

थे मानकी मातहतीमें क्षत्री भी बड़े वीर।
जो युद्धमें थे धीर, बड़े न्यायमें गम्भीर॥
पर, लोभके वश धर्म्मको तज, बन गये बेपीर।
निज भाईसे लड़नेको चले, वाहरी तक़दीर!
यदि हिन्दमें यह फूटका मेवा न उपजता।
अक़बाल(१) हमारा भी कभी हमको न तजता॥२४॥

ऐ हिन्द! तू सब बातोंमें सब जगसे बड़ा है।
विद्यामें, निपुणतामें, तेरा नाम बढ़ा है॥
दौलतका बड़ा हिस्सा तेरे बाँट(२) पड़ा है।
वीरत्वमें, धीरत्वमें भी सबसे कड़ा है॥
पर, फूट व आलस्य तेरे ऐब हैं भारी।
जिससे तेरी खुशहाली सभी जाती है मारी॥२५॥

बस फ़ौजके आनेकी ख़बर सुनते ही राना।
इस जोशसे उँमगे कि हुए मानो दिवाना॥
वीरत्व दिखानेका मिला अच्छा निशाना।
कमज़ोरपै चहिये न कभी हाथ उठाना॥
क्षत्रीका यही धर्म्म है, बलवानसे जुट जाय।
दोनोंमें है यश, मारै चहै आपही कुट जाय॥२६॥

पुतवंशके कुछ वीर थे, जैमलके थे कुछ पूत।
गहलौतके कुछ भील थे, जो थे बड़े मज़बूत॥

---

(१) अक़बाल—सौभाग्य।
(२) बाँट—हिस्सा।

परतापके संबंधी थे कुल पाँच सौ रजपूत।
कुछ झाला थे, जिनके न कभी बलका मिला कूत॥
परतापने जब अपनी सभी सैन बटोरी।
ज्यों दालमें पड़ता है नमक, इतनी थी थोरी ॥२७॥

बाईसही हज़ार थे रानाके इधर ज्वान।
दो लाखसे ज्यादा थे उधर सिर्फ़ मुसलमान॥
हथियार इधर, भाले, तवर, तीर, धनुष, बान।
उस ओर अधिक था बड़ी तोपोंका घमासान॥
पर, देशकी भक्तीसे छके धीर इधर थे।
तनख़ाहके लालचसे पके वीर उधर थे ॥२८॥

जब मानने घाटीपै दिया युद्धका डंका।
थर्रानी हवा, फैल गया शोर अतंका॥
मुँह ढाँप लिया भानुने, कुल-नाशको शंका।
लहराये धराधर भी सुने वीरोंके हुंका॥
मैदानमें हर ओर मुसल्मान पटे थे।
इक तंग सी घाटीहीमें, परताप डटे थे ॥२९॥

ज्यौंही सुनीं परतापने धौंसोंकी धुकारैं।
हथियारोंकी झनकार व कर्खोंकी पुकारैं॥
जय कालिका, अल्लाह व अकबरकी हुँकारैं।
हिनकार भी घोड़ोंकी, गजोंकी भी चिकारैं॥
और देखी जो परतापने भालोंकी चमाचम।
आँखैं हुईं मंगलसी, हुआ मुँह भी तमातम ॥३०॥

उत्साहसे फूला न समाता था वदनमें।
भुजदंड फड़कने लगे, वख़्तर तना तनमें॥
आनन्द हुआ मनमें कि अब रनके सहनमें(१)।
हथियारसे सँग मानके, खेलेंगे मगनमें(२)॥
सब वीरोंको ललकारके इक बात सुनाई।
"यह आख़िरी विनती मेरी, सुनलो मेरे भाई ॥३१॥
पैदा हुआ संसारमें इक रोज़ मरेगा।
मरना मुक़द्दम(३) है, न टारेसे टरेगा॥
फिर इससे भला मौक़ा कहाँ कौन पड़ेगा ?
रजपूतीकी क्या गोटका पौ रोज़ अड़ेगा ?
पाँसे करौ तलवार, तवर, तीरके यारो !
रण-खेल मरदका है, नरद(४) शत्रुकी मारो ॥३२॥
पुरखोंके वड़े वोलकी इज़्ज़तको वचाना।
माता व वहिन, वेटीका सत्-धर्म्म रखाना॥
निज धर्म्म व सुर-धामोंका सन्मान वढ़ाना।
तीरथ व महाधामोंका सत्कार कराना॥
इन कामोंमें यदि जानका डर हो तो न डरिये।
क्षत्रीका परम धर्म्म है, यह ध्यानमें धरिये ॥३३॥
ललकारके यदि कोई निकल सामने आवे।
ब्राह्मणको, गऊ, दीनको यदि कोई सतावे॥

(१) सहन—मैदान।
(२) मगन—खुशी।
(३) मुक़द्दम—अटल।
(४) नरद—चौपड़की गोटी।

आकरके जनम-भूमिपै उत्पात (१) मचावै।
समझानेसे मानै नहीं और शान दिखावै॥
इन मौक़ोंपै क्षत्री जो करै जानकी परवाह।
बस जानलो, माताका नहीं उसकी हुआ ब्याह ॥३४॥

इस मानके ईमानकी सब तुमको ख़बर है।
फूफू व बहिन इसकी मुसलमानके घर है॥
दुनियाकी न है लाज, न भगवानका डर है।
फिर रामकी सन्तानसे लड़नेकी उमर है!
क्या इसकी बड़ी फ़ौजसे डर जाओगे यारो?
इस दुष्टकी हत्यासे मुकर जाओगे यारो? ॥३५॥

बहिनोंकी व कन्याओंकी इज़्ज़तकी हो कुछ दर (२)।
यश लेनेका कुछ ध्यान हो, निन्दाका हो कुछ डर॥
दिलमें जो हो इकलिंगजी (३) भगवानका आदर।
बप्पाके (४) व साँगाके (५) हों उपकार सिरोंपर॥
श्रीरामकी औलादकी इज़्ज़तपै नज़र हो।
तो भाइयो! यह वक्त है, बस बाँधो कमरको" ॥३६॥

'बस बाँधो कमर' सुनते ही सब वीर उमँगकर।
फड़काते अधर, ले गये कर, अपनी कमरपर॥

---

(१) उतपात—उपद्रव।
(२) दर—मूल्य, आदर।
(३) इकलिंग—उदयपुरके राणाओंके कुल-पूज्य देवता।
(४) बप्पा—राणा-कुलके आदिपुरुष "बप्पारावल"।
(५) साँगा—राणा संग्रामसिंह।

तेग़ापै पड़ा एक, तो इक हाथ सिपरपर(१)।
भालेपै नज़र डाली, कभी तीर, तबरपर॥
"सब ठीक है सामान", यही सबने पुकारा।
"इकलिङ्गकी जय, रामजी है तेरा सहारा ॥३७॥

इक बूँद भी इस तनमें रकत बाक़ी है जबतक।
इक फाल भी चलनेकी सकत(२) बाक़ी है जबतक॥
इक लोहकी कणिका भी रहै हाथमें जबतक।
लोहा न सही, दाँत व नख साथ हैं जबतक॥
तबतक जो क़दम पीछे धरै युद्ध-किता(३) से।
बस जान लो वह तली, नहीं अपने पितासे ॥३८॥

बप्पाकी क़सम पैर न पीछेको धरैंगे।
इकलिङ्गकी दायासे ग़ज़ब(४) मार करैंगे॥
साँगाका नमक खानेका ऋण आज भरैंगे।
इस 'मान' मुसल्मानसे तिलभर न डरैंगे॥
परताप! तुम्हारे लिये इक सीस य क्या है?
सौ सीसके देनेका 'हरी' नेम निबाहे" ॥३९॥

जिस वक्त सुनी ऐसी य वीरोंकी प्रतिज्ञा।
परतापका दिल सौगुना हिम्मतसे उमाहा॥
इकलिंगकी जय बोल किया मानपै धावा।
ज्यौं शेरबबर(५) करता है गजराजपै हमला(६)॥

---

(१) सिपर—ढाल। (३) युद्ध-किता—रण-भूमि। (५) शेर-बबर—अतिभयंकर बाघ।
(२) सकत—शक्ति। (४) ग़ज़ब—अति अधिक। (६) हमला—आक्रमण, धावा

तुर्कोंकी बड़ी फ़ौजका कुछ दिलमें न था, ध्यान ।
बस एक यही ध्यान था बढ़ कीजिये घमसान (१) ॥४०॥
चलने लगा हथियार इधरसे भी उधरसे ।
गिरने लगे सिर तूँबीसे कट वीरोंके धरसे ॥
कट कोई गया जाँघसे, सीनेसे, कमरसे ।
फ़व्वारे छुटे लालसे वीरोंके जिगरसे ॥
सावनके महीनेमें हुई सातैंको (२) यह बात ।
घाटीमें हुई मानो लहू पानीकी बरसात ॥४१॥
उस ओरसे तोपोंकी थी धाँ धाँय धुँआँधार ।
इस ओरसे थी तीरोंकी इक तीखीसी बौछार ॥
हर ओर यही शोर था, डटकर करौ हथियार ।
आगे बढ़ो, मारो, धरो, झारौ (३) नई तलवार ॥
हाँ देखना! दुश्मन कोई भग जाने न पावै ।
और जाये तो आकाशको, फिर आने न पावै ॥४२॥
परतापके वीरोंने जो की तीरोंकी बौछार ।
तोपैं हुई सब मानकी इकबार ही बेकार ॥
तीरोंकी सपासपसे हुए तोपची (४) बेज़ार ।
बर्छोंसे भरे वीरोंने, मुँह तोपोंके ललकार ॥
बस मानके औसान (५) ख़ता (६) हो गये इकदम ।
तलवार, कटारीसे पड़ा काम मुक़द्दम ॥४३॥

---

(१) घमसान—घोर युद्ध। (३) झारौ—चलाओ। (५) औसान—होश-हवास।
(२) सातैं—सप्तमी। (४) तोपची—गोलन्दाज। (६) ख़ता—लुप्त।

लपकी जो तरफ़ दोनोंसे तलवारकी ज्वाला।
हिम्मत हुई परतापकी उस वक्त़ दुबाला॥
मुद्दतसे जो प्यासा था, वही खाँड़ा निकाला।
बस मानके सनमानको दिल अपना सँभाला॥
चेतकको कुदा मानके सनमानको धाये।
उस वक्तका घमसान कहो कौन बताये? ॥४४॥
पैदल जो मिला राहमें सर उसका उड़ाया।
असवारको बस ज़ीनपै चुपचाप सुलाया॥
भाला जो चला उनपै उसे काट गिराया।
और वार भी तलवारका भरपूर बचाया॥
गोलीके लिये धीर था सीनेपै सिपर (१) है।
इस बातका अरमान था बस मान किधर है ॥४५॥
मिल जाये अगर मान तो अरमान (२) निकालूँ।
या सौंपूँ उसे जानको, या उससे छिना लूँ॥
दो चार छः दश वार भी तो उसपै चला लूँ।
दिखलाके हुनर युद्धका कुछ उससे कहा लूँ॥
है वीर पुरुष, अच्छा बुरा कुछ तो कहैगा?
चल बसना है संसारसे बस नाम रहैगा ॥४६॥
इस ध्यानसे हर चार तरफ़ घोड़ा बढ़ाया।
जो सामने आया किया बस उसका सफ़ाया॥

---

(१) सिपर—तवा।

(२) अरमान-हौसला।

आख़िरको बड़ी देरमें श्रीमानको पाया।
ललकारके परतापने यह बोल सुनाया॥
"ऐ मान मुसल्मान! अँबारीमें सँभल बैठ।
अब देखले क्षत्रीकी भी मूँछोंकी ज़रा एंठ" ॥४७॥

यह कहके तमक तावसे(१) भालेको सँभाला।
भुजदंडके बल तौल, किया वार निराला॥
बस छोड़ दिया मानपै इक साँप सा काला।
डस पाता तो बस उम्रका भर जाता पियाला॥
अफ़सोस महावत ही गिरा डससे निपट (२) कर।
लोहेकी अँबारीमें गिरा ज़ोरसे ठटकर ॥४८॥

चेतकको दपट(३)हाथीके मस्तकपै उड़ाया।
और चाहा कि तलवारसे कर दीजै सफ़ाया॥
चेतकने क़दम हाथीके मस्तकपै जमाया।
इतनेहीमें उस हाथीने रुख़ अपना फिराया॥
और चीख़के भागा कि भगे मानके औसान।
औसान तो भागे पै रहे मानके तन (४) प्रान ॥४९॥

कुछ तुर्कोंने देखा य लड़ाईका उलटफेर।
परतापको आकरके लिया चारों तरफ़ घेर॥
परताप अकेले थे, मुसलमान थे इक ढेर।
पड़ने लगी परतापपै बेभावकी शमशेर॥

---

(१) ताव—जोश।
(२) निपट—मरकर।
(३) दपट—ललकार।
(४) तन—शरीर।

भाले व तबर तीर मघा-मेघसे बरसे।
चेतककी लचक (१) दूमसे सब कढ़गये सरसे ॥५०॥

चेतक कभी उछला, कभी कूदा, कभी दबका।
इस ओरको रपटा, कभी उस छोरमें लपका॥
बस धूलमें पड़ता था निशाना वहाँ सबका।
सरपट थी बलाकी, तो क़दम भी था ग़ज़बका॥

कुछ लातसे रौंदे तो बहुत दाँतसे काटे।
बिजलीकी तरह भरता था सब ओर सपाटे ॥५१॥

परतापकी शमशेर परीसे भी परे थी।
वह इन्द्रकी तलवारसे कुछ काम करे थी॥
सरपर जो पड़ा हाथ तो बस पैर तरे थी।
थी ऐसी अधीरा कि नहीं धीर धरे थी॥

सर एकका काटा तो लहू औरका चाटा।
कंधेसे भरी दौड़ तो पहलूसे(२) सपाटा ॥५२॥

मुग़लोंमें भी जाँबाज़(३) थे कुछ वीर बलाके।
बस बाँध लिये दौड़के हर सिम्तसे(४) नाके॥
परताप निकल जानेको सब ओर जो ताके।
बस जान लिया अब तो हुए कौर क़ज़ाके(५)॥

जय बोलके इकलिङ्गकी घमसान मचाया।
बचते बना जिस वारसे वह वार बचाया ॥५३॥

---

(१) लचक—उछल-कूद, तेजी। (३) जाँबाज़—जानपर खेल जानेवाले।
(२) पहलू—बगल। (४) सिम्त—ओर, तरफ़। (५) क़ज़ा—मृत्यु।

पर, तीन मुग़लज़ादोंने यों भाले चलाये।
राना न सके रोक तो सब तनमें समाये॥
फ़ौरन ही मगर रानाने सब खींच चलाये।
इतनेहीमें इक गोलीने आ दाँत गड़ाये॥
पर, साहसी परतापने छोड़ी नहीं हिम्मत।
लड़ते भी थे करते भी थे ज़ख्मोंकी सरम्मत ॥५४॥

चेतकके भी सीनेपै लगा एकका भाला।
बहने लगा बस उसके वहीं ख़ून-पनाला॥
वह खींचके फेंका, उसे गिरनेसे सँभाला।
इतनेहीमें इक शत्रुने आ खाँड़ा भी घाला॥
और तीन किये वार तो राना न सके रोक।
ज़ख्मी हुए, पर दिलमें न था उनके ज़रा शोक ॥५५॥

मन्नाने य देखा कि है परतापपै संकट।
बस एक सौ पच्चास चुने ज्वान लिये झट॥
और रानाकी इमदादको (१) पहुँचा वहीं झटपट।
मुग़लोंकी अनी (२) चीरता करता हुआ खटपट॥
परतापका ले छत्र धरा शीशपै अपने।
परतापकी ली मानो बला शीशपै अपने ॥५६॥

वह छत्र ही था सत्यसा परतापकी पहचान।
उस छत्रहीपर करते थे सब वार मुसलमान॥

---

(१) इमदाद—सहायता।

(२) अनी—श्रेणी, कतार।

विन छत्रके रानापे किसीने न दिया ध्यान।
उस छत्र धरे मन्नापे सब टूट पड़े ज्वान॥
इस ओर तो राना हुए उस व्यूहसे बाहर।
उस ओर पड़े मन्नापे शमशेर व खंजर ॥५७॥
मन्ना भी तो झालाका था सरदार बहादुर।
उत्साह-भरे दिलसे दिखाने लगा जौहर॥
बस नोन-अदाईका जो पाया भला औसर।
कस-कसके लगा झाड़ने तलवार व ख़ञ्जर॥
कुछ मारे, बहुत काटे, बहुत खेतमें पटके।
कुछ डॉट-डपट देखके मैदानसे सटके ॥५८॥
मन्नाके जवानोंने ग़ज़ब जोश दिखाया।
इक आठसौ तुर्कोंका कटक काट गिराया॥
पर अन्तमें मालिकके लिये प्राण गँवाया।
छत्रित्वकी गति पाके अमरलोक बसाया॥
इक-एकके तनमें रहे जबतक कि तनक प्रान।
रानाके लिये सबने किया घोर घमासान ॥५९॥
चेतकपै चढ़े रानाजी इक ओर सिधारे।
थे घाव लगे सात छुटे ख़ून फुहारे॥
चेतकके भी बहते थे कई रक्त-पनारे।
पर पहुँचे व जबतक एक विकट नाले किनारे॥
दी ऍड़ तो चेतक पड़ा उस पार दिखाई।
ज्यों खट्टका हॉ शोर खबर हॉपै सुनाई ॥६०॥

कुछ आगे बढ़े पीछेसे आवाज़ इक आई।
"ऐ ज्वान खड़ा हो' य दिया साफ़ सुनाई॥
फिरकर जो नज़र की तो पड़े सकत दिखाई।
"हैं! यह तो सकतसिंह है छोटा मेरा भाई॥
आया है मुझे मारने जंगलमे झपटकर।"
"हॉ तू है सकत!' बोले ये परताप दपटकर ॥६१॥
"ऐ दुष्ट! तू छत्री है कि शैतान है कोई?
तूने तो विमल वंशकी लुटिया ही डुबोई॥
परतापका भाई बनै तुर्कोंका भिदोई?
आ करले जो करना हो अभी गर्म है लोई"॥
चेतकसे उतर बोले, "सकत! कह जो हो कहना।
कमज़ोर हूॅ, घायल, हूॅ, ये धोखेमे न रहना" ॥६२॥
यह सुनके सकतसिंह भी घोड़ेसे उतरकर।
डिड़कारके रोने लगे, सिर पॉवपै धरकर॥
"क्या आपकी दायासे मेरे दोष हैं बढ़कर?
भाई जी! क्षमा कीजै मुझे छोटा समझकर॥
जो होगया सो होगया अब यों न करूॅगा।
बप्पाकी क़सम वंशकी इज्ज़तपै मरूॅगा ॥६३॥
मन्नाजी मरे आपकी यों जान बचाई।
यह देख मेरे दिलमें बहुत लाज समाई॥
नौकर थे वो, और मैं तो हूॅ छोटा सगा भाई।
मुझसे न बनी, मैंने जो की वंश-बुराई॥

अब आजसे मुग़लोंकी मैं सेवा न करूँगा।
बस आपकी शिक्षापै सदा ध्यान धरूँगा ॥६४॥

दो तुर्क सवारोंको है बन्दूक़से मारा।
जब आपने घोड़ेको फँदाया था व नारा॥
थे पीछे लगे आपके कुछ पाके इशारा।
मौक़ेपै व कर बैठते नुक़सान तुम्हारा॥
यह जानके उनको तो लगा आया ठिकाने।
हाँ आया हूँ मैं आपका अब मान मनाने" ॥६५॥

सुन बात यह परतापका हियरा उमँग आया।
भाईको भुजा भरके लपक कण्ठ लगाया॥
"शाबाश सकत! तुमने मेरा प्राण बचाया।
खुश रक्खे तुम्हें देरलों अम्बा महामाया॥
सब दोष क्षमा करता हूँ लो आज तुम्हारे।
बस आजसे तुम भी हो मेरी आँखोंके तारे" ॥६६॥

चेतक भी गिरा इतनेमें बेचेत सा होकर।
ज्यों गिरता है मतवाला कोई खानेसे ठोकर॥
परताप जो बेपैर हुए घोड़ेको खोकर।
बस बोल उठे रंजकी आवाज़में रोकर॥
"हा वीर! दग़ा देके अकेले ही सिधारे।
ठहरो ज़रा हम चलते तो है साथ तुम्हारे" ॥६७॥

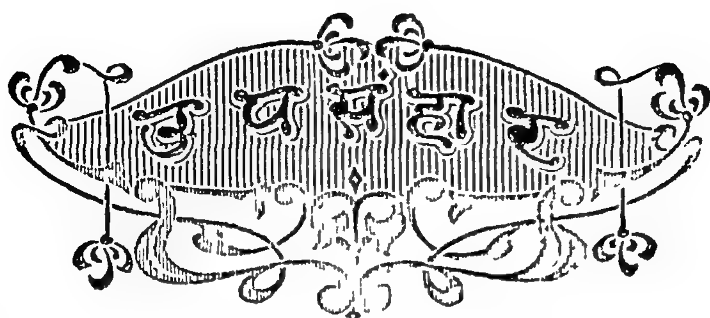
समझाया, सकतसिंहने, "यों रंज न कीजै।
घोड़ा मेरा हाज़िर है, इसे शौक़से लीजै॥

बस जाइये डेरोंमें यहाँ देर न कीजै।
क्या चाहिये करना ? मुझे वह हुक्म भी दीजै॥
अब मानकी मातहतीमे हर्गिज़ न रहूँगा।
पूछैंगे अगर हाल तो सब सत्य कहूँगा" ॥६८॥

परताप गये डेरों सकत फ़ौजमें आये।
और मानसे सब आके समाचार सुनाये॥
तज मानकी सेवा हुए परतापके साथे।
छत्रीकी तरह युद्धमें जौहर भी दिखाये॥
इतनी है प्रथम दिनकी य परतापकी करतूत।
जिसने किया परतापकी प्रख्यातिको मज़बूत ॥६९॥

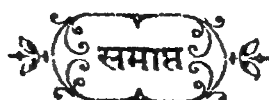
इस वजहसे परतापको सौ बार नमस्कार।
सौ बार नहीं, बल्कि सहस बार नमस्कार॥
निज देशकी रक्षामें बहाई व रक्त-धार।
मुग़लोंने जिसे पैरके पाया न कभी पार॥
इस युद्धमें रानाने विजय-श्री नहीं पाई।
तौभी रही इक तरहसे रानाकी बड़ाई ॥७०॥





चेतक, मन्ना, सकतसिंहने जान बचाई रानाकी।
धन्य-धन्य इन तीनोंकी है चुस्ती, फुरती, चालाकी ॥ १ ॥
आप कहैंगे रानाजी तो जीते नहीं लड़ाईमें।
फिर क्यों ऐसा युद्ध गिना जाता है हिन्द-बड़ाईमें ? ॥ २ ॥
सत्य बात, पर कारण इसका हम तुमको बतलाते हैं।
जिस कारण सब हिन्दू-छत्री इसको विजय बताते हैं ॥ ३ ॥
ख्याल कीजिये, रानाजी थे धनसे, जनसे, शक्ति-विहीन।
अकबर शाहंशाह हिन्दका, सब छत्री जिसके आधीन ॥ ४ ॥
रानाजीकी फ़ौज देखिये, थी केवल बाईस हज़ार।
तीन लाखके लगभग कहते हैं मुग़लोंका फ़ौज-शुमार ॥ ५ ॥
इसपर तुर्रा, मुग़ल-फ़ौजमें थीं तोपैं भारी-भारी।
जिनके मारे दिग्गज हिलते विकट फैलती अँधियारी ॥ ६ ॥
तिसपर भी मुग़लोंके योधा उस दिन कटे पचास हज़ार।
केवल चौदह सहस युद्धमे रानाने खोये सरदार ॥ ७ ॥
मुग़ल-सैनकी बारह तोपें रानाने उस दिन लीं छीन।
मानसिंहका मान बिगाड़ा हुए नहीं उसके आधीन ॥ ८ ॥

विकट युद्ध रानाका लखिकै मुग़ल-सैन होकर हैरान।
उसी रोज़ हल्दीघाटीसे उतर किया नीचे निजथान॥ ९ ॥
मारे डरके घाटी ऊपर चढ़कर युद्ध न करते थे।
घाटीके नीचे ही रहकर सदा घातमें फिरते थे॥ १० ॥
इतनेपर भी रानाजीको विजयी आप न मानेंगे।
युद्ध-तत्त्व तुम नहीं समझते, हम ऐसा ही जानेंगे॥ ११ ॥
यों तो मुग़लोंसे रानाकी हुई लड़ाई वर्ष पचीस।
हल्दी ही घाटीमें होकर हुए मारके(१) सैंतालीस॥ १२ ॥
सावन बदी सप्तमीवाली हुई लड़ाई भारी है।
इस कारण वह सर्व-श्रेष्ठ है, ऐसी राय हमारी है॥ १३ ॥
वर्णन किया गया जो ऊपर, वही युद्ध सातेंका है।
केवल एक दिवसका वर्णन हमने ऊपर लिक्खा है॥ १४ ॥
चावलके हंडेसे दो-इक सीत टटोले जाते हैं।
कच्चा है या पक्का भात, यह उससे ही लखि पाते हैं॥ १५ ॥
इसी भाँति परताप वीरकी देश-भक्तिका पूरा ज्ञान।
क्षत्री-धर्म, प्रतिज्ञा-पालन, युद्ध-वीरताका अनुमान॥ १६ ॥
इसी प्रथम दिनके संगरसे(२) बुद्धिमान लखि लेते हैं।
इसी हेतु विस्तार छोड़ हम इतना ही लिख देते हैं॥ १७ ॥



---

(१) मारके—युद्ध। (२) संगर—युद्ध।



दूसरा रत्न

वीर-बालक

लड़कोंहीपै निर्भर है किसी देशकी सब आस।
बालक ही मिटा सकते हैं, निज देशकी सब त्रास॥

भगवानदीन।

वीर-बालक

जिसने ही पढ़ा होगा ज़रा ध्यानसे इतिहास।
उसको ही मिला होगा य सच बातका आभास॥
लड़कोंहीपै निर्भर है किसी देशकी सब आस।
बालकही मिटा सकते हैं निज देशकी सब त्रास॥
चाहै तो किसी देशको बस स्वर्ग बना दे।
निज धर्मसे हट जायँ तो मिट्टीमें मिला दे॥१॥

निज देशकी उन्नतिका है सब भार इन्हींपर।
निज धर्मकी रक्षाका है सब दार(१) इन्हींपर॥
इनकार इन्हींपर है तो इक़रार इन्हींपर।
इनहीपै रिआया भी है, सरकार इन्हींपर॥
बालक जो सुधर जाये तो सब देश सुधर जाय।
हर एकका दिल मोदसे, भण्डार सा भर जाय॥२॥

बालक ही तो हैं देशके सम्मानका भण्डार।
बालक ही तो हैं देशके धन-धान्यके करतार॥
बालक ही तो हैं देशकी बल-शक्तिका आकार।
बालक ही तो हैं देशके निज धर्मका आगार॥

---

१ दार—दारमदार, आधार।

सच मानो अगर देशके सब बाल सुधर जायँ।
सब हिंदके वाशिंदोंके वर मोदसे भर जायँ ॥३॥

इनके ही विगड़नेसे बिगड़ जाता है सब देश।
इनके ही बदलनेसे बदल जाता है सब भेश॥
इनके ही बुरे होनेसे कुछ जाती नहीं पेश।
इनके ही भले होनेसे मिट जाता है सब क्लेश॥

इनके ही तो हाथोंमे है सब आगेकी आसा।
इनके ही दमों चलती है सद्धर्मकी स्वासा ॥४॥

सच मानिये निज देशके करतार यही हैं।
सच जानिये निज देशके भरतार यही हैं॥
सच लेखिये निज देशके हरतार यही हैं।
सच देखिये निज देशके रखवार यही हैं॥

इनके ही बिगड़नेसे बिगड़ जाता है सब देश।
इनकेही सुधरनेसे सुधर जाता है सब देश ॥५॥

जिस देशके बच्चोंमें हो उत्साहकी लाली।
करते न हों निज चित्तको उत्साहसे ख़ाली॥
खेलोंमें भी तजते न हों निज ओरकी पाली।
पड़ जाय कठिनता तो समझते हों बहाली॥

बस जान लो उस देशमें आनन्दका है वास।
आपत्ति फटकने ही नहीं पाती कभी पास ॥ ६ ॥

उत्साह ही संसारमें है मोदका आधार।
उत्साह ही सरकारमें है मानका आगार॥

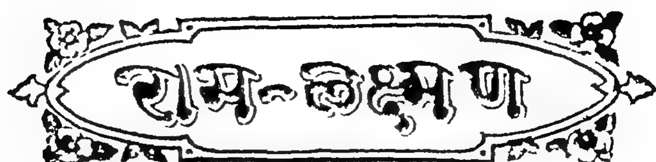
उत्साह ही उठवाता है कष्टोंका महा भार।
उत्साह ही करवाता है गिरि, सिंधु, नदी पार॥
उत्साहसे सुर-राज भी बन जाते हैं नर-दास।
उत्साह-रहित भीम भी उड़ जाते हैं ज्यों घास ॥ ७ ॥

उत्साहमें हो राँड़ तो रुस्तमसे भी लड़ जाय।
उत्साहमे हो साँड़ तो शेरोंसे अकड़ जाय॥
उत्साह हो गीदड़मे तो गज-राज पछड़ जाय।
उत्साह हो भुनगेमे तो वह भीमसे अड़ जाय॥
उत्साहसे घटजातने (१) सागरको किया पान।
उत्साहसे रवि लील गये बाल हनूमान ॥ ८ ॥

उत्साहसे प्रहलादने कश्यपको किया मात।
उत्साहसे ध्रुवने भी दिखाई है करामात॥
उत्साहसे गिनता था भरत सिंहके सब दाँत।
उत्साहसे पूरी न हो, है कौन सी वह बात?
उत्साहसे इक ग्वालने (२) गिरि-राज (३) उठाया।
सुर-राजका सब दर्प भी पानीमें बहाया ॥ ६ ॥

संसारके सब काम हैं उत्साहपै निर्भर।
यह जानके निज चित्तको उत्साहसे लो भर॥
फिर देखो कि किस कामको तुम सकते नहीं कर।
पत्थर भी बनै पानी, अगर जाओ न तुम डर॥
अब आगे सुनाते हैं तुम्हें सत्य कहानी।
उत्साह बढ़े सुनते ही और भीति हो पानी ॥१०॥

(१) घटजात—अगस्त्यमुनि। (२) ग्वाल—श्रीकृष्ण। (३) गिरि-राज—गोवर्द्धन



दशरथ जी महाराज अयोध्याके थे भूपाल।
सद्धर्मके पोषक थे, असद्धर्मके थे काल॥
जगदीशने बख़्शे थे उन्हें चार सुभग लाल।
चारो थे महाराजके तन, प्राण, सुयश, माल॥
चारोको कभी करते न थे पाससे न्यारे।
बूढ़ेकी छड़ी कहिये, कियौं आँखके तारे ॥११॥

थे चारो कुँवर रूपमें अनमोल रतन-हीर।
विद्यामें निपुण, धर्ममें दृढ़, बुद्धिमे अतिधीर॥
थे शुद्ध-हृदय, भाव सुभग, चित्तके गंभीर।
और सत्य, दया, दानमे अद्वैत, अजय, वीर॥
थे चार कुँवर राजाके या चारो सुफल थे।
या राजा व रानीनके सौभाग्यका बल थे ॥१२॥

कौशिक जी महाराजने आ राजाको घेरा।
"है मेरे महायज्ञमे उत्पात घनेरा॥
इस यज्ञकी रक्षा ही महा धर्म है तेरा।
बस मान ले हे भूप! सुभग वैन य मेरा॥
दे डालो मुझे राम-लखन थोड़ दिवसको।
मैला न करो मोहसे रघुवंशके यशको" ॥१३॥

पहले तो विकट मोहसे इन्कार बताया।
कुछ सोचके फिर बेटोंको यह वाक्य सुनाया॥
"हे राम! लखन! छोड़के अब मोहको माया।
गाधेयकी सेवामें लगो बेंचके काया॥
इस वंशकी मर्याद है संतोंका समादर।
गाधेयके सँग जाके करौ वंश उजागर॥१४॥

छत्रीका महत्कर्म है निज धर्म रखावे।
दीनोंको बचा, दुष्टोंको यम-धाम पठावे॥
संतोंका सहायक बनै, दंभीको दबावै।
आवै जो शरण उसपै न हथियार उठावे॥
इस धर्मको धर चित्तमें कौशिकका करौ काम।
जिससे रहे संसारमें रघुवंशका शुभ नाम"॥१५॥

यह सुनके लखन-रामने आनन्द मनाया।
उत्साह हुआ इतना कि तनमें न समाया॥
माताके निकट जाके यही बैन सुनाया।
"मुनि-काजके हित बापने है हुक्म लगाया॥
रणके सभी सामानसे तुम हमको सजा दो।
फिर युद्धका जो धर्म हो, सब हमको बतादो"॥१६॥

सुन बैन सुमित्राने चकित होके कहा—"क्या?
तुम दूधमुँहे बच्चोंको यह घोर सी आज्ञा?
गाधेयने जादू किया, बौरा गये राजा
मंत्रीने न रोका, न गुरुजीने बुझाया

संग्राममें बच्चे भला क्या जाके करेंगे ?
इन छोटी धनुहियोंसे भला दैत्य मरेंगे ? ॥१७॥
मुनि-राजके ये वैन, वृथा भूपने माने।
पठवाते हैं बच्चोंको, हुए कैसे दिवाने ?
क्या हो गये सब वीर अयोध्याके ज़नाने ?
सठिया गये राजाजी नही होश ठिकाने ?
छकुमारसे बच्चे तो करें जाके विकट खेत।
सामन्त सुभट शूर हैं नौकर भला किस हेत ? ॥१८॥
हे राम ! लखन ! तुमको मैं जाने नहीं दूँगी।
नाराज़ी भी अवधेशकी निज शीश सहूँगी॥
कौशिकका वचन-वज्र भी निज सीनेपै लूँगी।
समझाना गुरूजीका भी इक कोने धरूँगी॥
मन्त्रीकी कहाँ ताब है, कुछ मुझसे कहैगा ?
बोलैगा अपर कोई तो फिर दण्ड सहैगा" ॥१९॥
लक्ष्मणने लखा माताको है मोहने घेरा।
अब चाहिये कुछ युक्तिसे इस बुद्धिको फेरा॥
वात्सल्य-भरे भावसे मुख मातुका हेरा।
भोलेसे वचन बोल, दिया ज्ञान-दरेरा॥
"तूनेही तो मुझसे य बहुत बार कहा है।
'रघुवंशका व्रत, दीनकी रक्षा ही रहा है' ॥२०॥
राजाने सभा-मध्य वचन मुनिको दिया है।
हम दोनोंकी रक्षाका वचन मुनिसे लिया है॥

तू होती है यों मोहके वश, कैसा हिया है?
क्यों छत्रीके घर तूने मुझे पैदा किया है?
छत्रानी हो, यों पुत्रका भय चित्तमें लावै।
सो कैसे लखनलालकी महतारी कहावै? ॥२१॥

कन्या नहीं क्या छत्रीकी तू? सच तो बता दे।
रानी नहीं रघुवंशकी क्या? भेद सुना दे॥
पैदा किया किस हेतु मुझे कुछ तो लखा दे।
वाजिब नहीं कर मोह मुझे क्रूर बना दे।
क्यों मुझको पिलाईं भला निज दूधकी धारैं?
उस दूधका बल, बोल तो हम किसपै निकारैं? ॥२२॥

है याद मुझे खूब कि जब कौशसे डरकर।
भागा था लड़कपनमें तेरे पासको भीतर॥
तब तूने बड़े नेहसे निज गोदमें धरकर।
फटकारा था शत्रुघ्नको इस बातको कहकर॥
'वीरत्व भरा दूध मेरा पीके डरैगा।
शंका है मुझे, मुझको तू बदनाम करैगा' ॥२३॥

क्या मुझको नहीं तूने वही दूध पिलाया?
उस गोदमें क्या मुझको नहीं तूने खेलाया?
वीरत्वका क्या धर्म नहीं तूने सिखाया?
रघुवंशका व्रत सत्य, नहीं तूने लखाया?
फिर आज वृथा करती है क्यों इतना महा मोह?
निज वाक्य सुमिर, छोड़ दे मिथ्याका महा मोह ॥२४॥

तूने तो कई बार परीक्षा मेरी ली है।
पढ़नेमें व लड़नेमें विकट जाँच भी की है॥
पक्का मुझे पाया है, तो शावाशी भी दी है।
इस वक्त बता, ओछा हुआ क्यों तेरा जी है?
माता ही जो इस भाँति करे पुत्रको डरपोक।
वीरत्वको, क्षत्रित्वको हा हन्त! महाशोक! ॥२५॥
करती रही जिस दूधकी तू नित्य बड़ाई।
देती रही तू जिसके विकट बलकी दोहाई॥
है तूने मुझे उसकी कोई धार पिलाई?
या बातें ही बातें हैं तेरी ऐसी सोहाई?
तैयार हूँ मैं इसकी परीक्षाके लिये आज।
बस छोड़ दे मिस और महा मोहका सब साज" ॥२६॥
ये पुत्र-वचन सुनके सुमित्राने कहा, "लाल!
बस हो चुका, अब जान लिया मैंने सकल हाल॥
फैलाया था मैंने जो अभी मोहका जंजाल।
लखनेके लिये तेरा ही उत्साह, थी इक चाल॥
मुनि-संगमें जा चैनसे पितु-वैनको पालो।
रघुवंशके वीरत्वसे मख-ध्वंस बचा लो ॥२७॥
पर, देखना, रण-भूमिसे हट कुल न लजाना।
उज्ज्वलसे मेरे दूधमें कारिख न लगाना॥
कौशिकके वचन मान-सहित शीश चढ़ाना।
श्रीरामकी सेवामें कभी कोर न लाना॥

मंगल हो तुम्हारा सदा आशीश है मेरी ।
अब जानेमें हे पुत्र ! करो कुछ भी न देरी ॥२८॥

उत्साहसे रण-भूमिमें निज ज़ोर दिखाना ।
जो आवै शरण उसपै न हथियार उठाना ॥
नारीको, बड़े-बूढ़ेको, बालकको बराना (१) ।
ललकारके आवै उसे दिल खोल छकाना ॥
जो अंगसे कुछ भग हो वा शस्त्र-रहित हो ।
रण-भूमिका यह धर्म है, मत मारना उसको" ॥२९॥

उत्साह सहित पूछके फिर कौशिला माई ।
फिर केकईसे जाके सकल बात सुनाई ॥
इन दोनो ही माताओंने वह बात सिखाई ।
कल्याण हो संसारमे और वंश-बड़ाई ॥
"उत्साह ही संसारमें शुभ कामोंका है मूल ।
बस, जाओ करो काज, इसे जाना नहीं भूल" ॥३०॥

आनन्द सहित राम-लखन द्वारपै आये ।
मित्रोंसे मिले, बापके पद शीश नवाये ॥
यों गाधि-सुवन संग चले मोद (२) बढ़ाये ।
सब अंग थे इन वीरोंके उत्साहसे छाये ॥
भुज-दंड फड़कते थे, क़दम आगेको चलते ।
धनु-बाण अकड़ते थे, सँभालेसे सँभलते ॥३१॥

---

(१) बराना—बचाना ।

(२) मोद—खुशी ।

आश्रमके निकट पहुँचे तो इक राक्षसी धाई।
समझे य लखन-राम कि इक आंधी सी आई॥
पर, बात जो थी सत्य सो कौशिकने बताई।
"यह राक्षसी है ताड़का मारीचकी माई॥
ठोकरसे शिला और बड़े वृक्ष उड़ाती।
खानेके लिये तुमको चली आती है धाती" ॥२२॥

सुन बात हुआ रामको संकोच य भारी।
"बर्ताव करैं कैसा? य है जातिकी नारी॥
अबलाको हनैं इसमें है वीरत्वकी ख्वारी।
मारैं न अगर इसको तो है हानि हमारी"॥
संकोचमें पड़ रामने कौशिकको थहाया।
गाधेयने तब रामको यह मन्त्र बताया ॥२३॥

"ब्राह्मणको, गऊ, दीनको जो कोई सतावै।
सद्धर्ममें बाधा करै, अभिमान जनावै॥
खुद दौड़के रण-भूमिमें जो सामने आवै।
समझानेसे मानै नहीं, उत्पात मचावै॥
नारी हो चहै नर हो, उसे दंड ही करना।
छत्रीका परम धर्म है, यह ध्यानमें धरना ॥२४॥

अबला है वही नारि जो निज बल न जनावै।
मर्दोंके निकट नम्र रहै, लाज ही भावै॥
अबला नहीं वह नारि, जो चंडित्व दिखावै।
चंडीसी बनी वीरोंके ढिग दौड़के आवै॥

इस बातको गुन राम ! मेरी मान लो यह बात ।
खा जायगी यह तुमको नहीं शीघ्र करो घात" ॥३५॥

सुन बात. य श्रीरामने कोदंड लिया तान ।
टेढ़ी हुई कुछ भौंह तो बस सीधा हुआ बान ॥
ह्याँ शरने छुआ कान, उधर नाकों हुई जान ।
सन्नाके छुटा बान तो भन्नाके भगे प्रान ॥

पहले हुई क्या बात कहै कौन विधाता ?
सर छूटा किधों मर गई मारीचकी माता ? ॥३६॥

आश्रममें पहुँच मुनिसे कहा, "यज्ञ रचाओ ।
विघ्नोका कोई भय न तनक ध्यानमें लाओ ॥
किस ओरसे बाधाका है भय मुझको बताओ ।
मैं रोकूँगा, तुम मौजसे सब कृत्य कराओ ॥

आवेंगे अगर लाख तो इक दममें मरैंगे ।
हम दोनों यथाशक्ति कठिन मार करैंगे" ॥३७॥

गाधेयने भय छोड़के निज यज्ञ रचाई ।
मारीचने सुन विघ्नके हित धूम मचाई ॥
मरवाई है कौशिकने मेरी ताड़का माई ।
यह सोचके बस करही दी आश्रमपै चढ़ाई ॥

सब सेन लिये आत सभुज साथमें लेकर ।
चढ़ दौड़ा उसी द्वेषको निज चित्तमें देकर ॥३८॥

इस ओर घटा घोर सी मख-धूमकी छाई ।
दादुरसे लगे करने ऋषी वेद-रटाई

उस ओरसे मारीच-अनी आंधी सी आई।
मानो अभी ले जायगी ऋषि-कुलको उड़ाई॥
पर, राम-लखन आड़में गिरि-राजसे आये।
मारीच-अनी-आँधीके धुरेंसे उड़ाये ॥३९॥
बिजली सा कड़क दुष्ट सुभुज सामने आया।
इक आनमें श्रीरामने यम-धाम पठाया॥
फिर एक पवन-बाणसे मारीच उड़ाया।
लंकाके निकट, सिंधुके तट, फेंक बहाया॥
सब सेन लखन-लालने यों काट गिराई।
कातिकमें कृपक करते हैं ज्यों वास कटाई ॥४०॥
यों टार सभी विघ्न अभय यज्ञ कराई।
संसारमें निज वंशकी यों कीर्ति बढ़ाई॥
वीरत्वकी करतूत प्रगट करके दिखाई।
उत्साहसे क्या होता है? यह बात लखाई॥
छत्री न अगर शत्रुसे रण-खेतमें डर जाय।
निज वंशकी मर्यादसे कुछ काम भी कर जाय ॥४१॥
इस हिन्दके बालक भी जो उत्साहसे भरजायँ।
'भय क्या है' यही बात जो निज चित्तमे धरजायँ॥
विघ्नोंकी कठिनतासे न निज चित्तमें डरजायँ।
निश्चय है कि इस हिन्दके सब काम सुधर जायँ॥
बजने लगै हर ओरसे आनन्द-बधाई।
फिर जाये महा मोदकी हर ओर दोहाई ॥४२॥

राम-कृष्ण

दुर्दण्ड वली कंस था मथुराका महाराज।
तपता था महातेजसे करता था, अधम काज॥
निज चित्तके अनुकूल जुटाया था सकल साज।
मनमानी क्रिया करता फ़क़त नीतिका था व्याज (१)
मंत्रीका वही हाल था सेनाका वही ढंग।
सब राज्यमें फैला था विकट कष्टका इक रंग ॥१॥

जो चित्तमें आता, वही रैयतसे कराता।
जो सत्य सुनाता, उसे भरपूर दवाता॥
सम्वन्धियोंकी सीख न कुछ ध्यानमें लाता।
मित्रोंके महामंत्र हवाहीमें उड़ाता॥
निज वापको कर वंद में, माताका किया तोप।
तव वाकी बचा कौन सा करनेको भला दोप? ॥२॥

रैयतकी सुभग (२) वस्तु ज़बरदस्ती छिनाता।
सुन्दर सी बहू-बेटीको निज नारि बनाता॥
रैयतसे विना पूछे ही महसूल लगाता।
इस भाँतिसे धन जोड़के मनमाना उड़ाता॥

(१) व्याज—वहाना।
(२) सुभग—सुन्दर, अच्छी।

रैयतके लिये उसमेंसे कौड़ी न लगाता।
समझाता जो कोई तो उसे जेल दिखाता ॥३॥

दिन-रात रजोगुणमें रहा करता था माता।
रैयतकी न सुनता, न कभी न्याय चुकाता॥
बस अपने ही आरामके सब काम कराता।
बनवाके बड़े रंग-भवन उनको सजाता॥
इस भाँति सकल, राज्यका धन धूर मिलाता।
समझाता जो कोई तो उसे जेल दिखाता ॥४॥

सुन्दर सी किसी नारिका कुछ खोज जो पाता।
धन-दानसे, छल-मानसे निज हाथमें लाता॥
राजाओंपै कन्याओंके हित सैन चढ़ाता।
रण-खेतमें निज सैनको संहार कराता॥
नर-रक्तसे निज कामकी यों आग बुझाता।
समझाता जो कोई तो उसे जेल दिखाता ॥५॥

था राज-महल कंसका, बस एक परिस्तान।
जमघट था परीज़ादोंका, उड़ती थी सदा तान॥
दिन-रात हुआ करता था मदिराका महापान।
समझाना किसी व्यक्तिका करता न था कुछ कान॥
विक्रममें न था हीन, पै अबलाओंका था दास।
यों काम अधम कंसका करवाता था उपहास ॥६॥

बल-वीर्यमें यह कंस न था इन्द्रसे कुछ कम।
यदि क्रोधमें आजाय, तो भय खाके भगै यम॥

दिक्पालोंकी क्या ताब कि मारैं तो भला दम ?
मारुत भी निकट होके गुज़रता था तो थम-थम ॥
नर-सिंह भी ललकार सुने कान दबाते ।
लखि तेजको आदित्य भी निज आँख झपाते ॥७॥

थी इसकी चचाज़ाद बहिन देवकी वारी ।
गुण-रूपकी भंडार, सकल वंशकी प्यारी ॥
वसुदेवसे ब्याहा उसे सब करके तयारी ।
पहुँचानेके हित साथ चला लैके सवारी ॥
उस वक़्त गगन-धामसे वाणीने पुकारा :-
"इसका ही सुवन आठवाँ है काल तुम्हारा" ॥८॥

सुन वाणी लगा मारने भगिनीको उसी ठौर ।
वसुदेवने रोका, कहा—"कीजे तो भला ग़ौर ॥
भगिनीके सिवा शत्रु तुम्हारा है कोई और ।
पाओगे भला क्या इसे तुम मारके इस तौर ?
संतान जो होगी उसे मैं तुमको ही दूँगा ।
विश्वास रखो करके कपट पाप न लूँगा" ॥९॥

कुछ काल गये पैदा हुआ फूल सा लाला ।
वसुदेवने ला कंसकी निज गोदमें डाला ॥
पाषाण-हृदय कंसने ऊपरको उछाला ।
गिर भूमिपै बस चूर हुआ प्राण-पियाला ॥
वसुदेवने निज आँखसे यह हाल निहारा ।
वचनोंके वशीभूत थे, कुछ दम नहीं मारा ॥१०॥

फिर दूसरा, फिर तीसरा, फिर चौथा हुआ बाल।
फिर पाँचवें छठवेंका भी ऐसा ही हुआ हाल॥
निज हाथसे वसुदेवने ये खो दिये सब लाल!
पर, बात जो कह दी थी, उसे सकते न थे टाल॥
छत्रीका यही धर्म है जो बात निकाले।
फिर हानि हो या लाभ, उसे वैसेही पाले ॥११॥

थी रोहिणी, वसुदेवकी इक और भी नारी।
वह भी हुई इस कालमें जब पाँवकी भारी (१)॥
वसुदेवने तब चित्तमे यह बात विचारी।
इस नारीकी संतान कहीं जाय न मारी॥
इस हेतु इसे और किसी धाममें रक्खें।
फिर अपने किये कर्मका फल शौकसे चक्खें ॥१२॥

गोकुलमें रहा करते सुभग 'नन्द महर' नाम।
वसुदेवके इक मित्र थे, गोपालका था काम॥
इनके ही यहाँ भेज दी वसुदेवने निज वाम (२)।
मिलता था वहाँ रोहिणीको खूब ही आराम॥
है मित्र वही सत्य, जो दुख-दर्द बटावे।
आपत्ति-समय मित्रके यों काममें आवे ॥१३॥

जब ठीक समय रोहिणीने पूतको जाया।
तब नन्द-यशोदाने बड़ा हर्ष मनाया॥

---

(१) पाँवकी भारी—गर्भवती।
(२) वाम—स्त्री।

बुलवाके पुरोहितको सकल कर्म कराया।
वसुदेवको आनन्द-समाचार पठाया॥
बल-धाम समझ नाम भी 'बलदेव' रखाया।
सन्मित्रका सब कर्म प्रगट करके दिखाया ॥१४॥

जब देवकीको गर्भ हुआ सातवीं बारी।
आनन्द सहित तनकी सुछवि बढ़ गई भारी॥
फिर गर्भके सब चिह्न मिटे, देख सुरारी।
समझा यही "बस हो गई इस गर्भकी ख़्वारी॥
अब आठवें बालकका बड़ा शोध करूँगा।
होते ही प्रगट चिह्न, विकट रूप धरूँगा" ॥१५॥

कुछ दिनमें हुआ देवकीको आठवाँ अवधान।
तब कंसने दोनोंका किया क़ैदसे सम्मान॥
बहनोई-बहिन क़ैदमें, साला हो निगहबान!
आश्चर्य है यह कैसा पड़ा, हाय रे भगवान!
निज स्वार्थके वश भूप नहीं मानते सम्बन्ध।
होते रहे, हैं, होंगे, बहुत ऐसे विकट अन्ध ॥१६॥

पाठकजी! विचारो तो सही कैसी विकट बात?
भगिनीपै करै ऐसे समय भ्रात ही यह घात!
है यह कि नहीं सारी रजोगुणकी करामात?
स्वारथके वशीभूत सभी होते हैं बदज़ात॥
पर, जिसने जगन्नाथको ही क़ैदमें डाला।
आश्चर्य नहीं, उसको जो दुख दे सगा साला ॥१७॥

जाने दो, मगर ख़ैर य है बात पुरानी।
अब आगे सुनो, कृष्णकी करतूत-कहानी॥
पैदा हुए, वसुदेवने है युक्ति जो ठानी।
पाला है यशोदाने, जो थी नन्दकी रानी॥
यह सारी कथा कहना अभिप्राय नहीं है।
वीरत्वसे मतलब है, जो इतिहास सही है ॥१८॥

जब कंसने उत्पात बड़ा ब्रजमें मचाया।
हर भाँतिसे ब्रज-वासियोंको खूब सताया॥
गोपोंने निकल बास कहीं दूर बनाया।
तब भी न अधम कंसने उत्पात घटाया॥
नित एक नये स्वाँगसे रैयतको सताता।
उत्पातके हित वीर हरइक ओर पठाता ॥१९॥

दूतोंसे सुना था कि युगुल नन्द-दुलारे।
हैं रूपके भंडार, महा तेजके तारे॥
शंका थी उसे, दोनों य आभीरके बारे।
बल-शक्तिमें बढ़, रोकैं न उत्पात हमारे॥
'दोनोंको किसी भाँति लगा दीजै ठिकाने।'
दिन-रात रहा करता था वह चित्तमें ठाने ॥२०॥

कुछ छलसे सुभट भेजके दोनोंको थहाया।
बल-तेजमें दोनोंको विकट वीर ही पाया॥
तब और भी चिन्ता बढ़ी, यह दिलमें समाया।
'इन दोनोंका अब चाहिये कर देना सफ़ाया'॥

निज द्वारपै दंगलका सकल साज सजाया।
इस मिससे सकल ग्वालोंको निज पास बोलाया ॥२१॥
पहुँचे जो वहाँ नन्द, तो यह मामला पाया।
द्वारेपै कुवलियासा प्रबल गज है डटाया॥
कहनेपै भी हथवानने हाथी न हटाया।
तब कृष्णने हथवानसे यह बैन सुनाया॥
"राजाहीके बुलवानेसे हम आये यहाँपर।
तू जाने नहीं देता है क्यों ग्वालोंको भीतर ?" ॥२२॥
हथवान लगा कहने कि "है भूपकी इच्छा।
चाहैगा यहाँ आना कोई वीर जो सच्चा॥
बल उसका प्रथम जाँचैगा गजराज कुवलिया।
तब उसको अखाड़ेमें मिलै आनेकी आज्ञा॥
आभीरके (१) बालक हो, चलो ढोर (२) चराओ।
वीरोंके अखाड़ेके लिये दिल न चलाओ ॥२३॥
जाना ही अगर चाहो तो निज शक्ति दिखाओ।
निज शक्तिसे इस पीलको (३) द्वारेसे हटाओ॥
तब जाके धनुष-यज्ञका आनन्द उड़ाओ।
ऐसा न हो कर सकते, तो निज धामको जाओ॥
ऐसे तो बहुत आते हैं आभीरके बेटे।
आये हैं बड़े वीर बने, धूर लपेटे!" ॥२४॥

---

(१) आभीर—अहीर।
(२) ढोर—चौपाया।
(३) पील—हाथी।

सुन वैन य बलदेवका चेहरा दमक आया।
मस्तकपै झपट पीलके इक दंड जमाया॥
हाथोंसे पकड़ दाँत जो पीछेको हटाया।
हाथीने विकट क्रोधसे दाऊको(१) दबाया॥
बस होने लगी दोनों दिशाओंसे रिलापेल।
भिड़ जाती है, इस हिन्दमें अब रेलसे ज्यों रेल॥२५
तब कृष्णने हथवानके इक दंड जमाया।
लगते ही विकल होके धरा-धामपै आया॥
आते ही धरा-धामपै यम-धाम सिधाया।
श्रीकृष्णने तब गजको पकड़ पूँछ घुमाया॥
जब कृष्णपै दौड़ा तो उधर दाऊने ठोंका।
बलदेवपै झपटा तो इधर कृष्णने भोंका॥२६
कुछ देर इसी भाँति कुवलियाको खेलाया।
दण्डोंकी विकट मारसे उस गजको छकाया॥
दाँतोंपै पड़ी मार तो हाथी भी सकाया(२)।
चिंघारके भागा तो झपट भूमि गिराया॥
बलदेवने निज हाथसे गज-दन्त उखाड़े।
कंधेपै धरे दोनों गये राज-अखाड़े॥
तब कंस लगा कहने कि, "हे कृष्ण व बलराम!
सुनता हूँ कि तुम दोनों बड़े वीर हो बल-धाम॥

---

(१) दाऊ—बलराम (बलदेव)
(२) सकाया—घबराया।

हाथीको पछाड़ा है अभी, है य विकट काम।
मल्लोंसे मेरे लड़के करो और भी कुछ नाम॥
तब जानूँ तुम्हें नन्दके तुम वीर हो बाँके।
वरना मैं यही मानूँगा सब झूठे हैं साके" ॥२८॥

बलदेव लगे कहने कि "हो भूप हमारे।
हम नन्दके बालक हैं प्रजा दीन तुम्हारे॥
आभीरके हम बाल हैं, ये मल्ल हैं भारे।
मल्लोंसे आ भिरते हैं कहीं बाल बिचारे?
आये हैं यहाँ देखने दङ्गलका तमाशा।
कुश्ती करैं हम इनसे, रखो ऐसी न आशा" ॥२९॥

चाणूर लगा कहने कि "बातैं न बनाओ।
भूपालको निज युद्धका कर्तब तो दिखाओ॥
तैयार हैं हम, तुम भी निकल सामने आओ।
कर युद्धसे इन्कार न निज वंश लजाओ॥
महराजके गजराजको है तुमने पछारा।
क्या जीतही घर जाओगे, यह तुमने विचारा?" ॥३०॥

तब कृष्ण उठे बोल, "कि चाणूर! (१) सुनो बात।
आभीरके हम बाल हैं, तुम मल्ल हो विख्यात॥
हम कैसे लड़ें तुमसे, हमारी भला क्या घात(२)?
सिंहोंके निकट मेष करै कौन करामात?

---

(१) चाणूर—कंसका एक पहलवान।
(२) घात—शक्ति।

यह युद्ध है, होता है बराबरहीके जनसे।
उत्साह भी हो मनमें, उधर सम भी हो तनसे ॥३१॥

ऐसी ही सदा नीति चली आई है जगमें।
खोदी हुई है बात य इतिहासके नगमें॥
जो व्यक्ति चले इससे पृथक और ही मगमें (१)।
लगता है विकट काँटा बहुत शीघ्र ही पगमें॥
इस हेतु न तुम बोलो न राजासे कहाओ।
आपसमें पकड़ खेलके आनन्द मचाओ" ॥३२॥

तोसलने (२) कहा, "आये हो तुम नीति सिखाने?
या युद्ध-कला अपनी अखाड़ेमें दिखाने?
राजाकी रज़ा (३) मानो बनो यों न दिवाने।
अब जीते नहीं पाओगे निज धामको जाने॥
हमलोग बहुत दिनसे तुम्हें जान रहे हैं।
तुम नन्दके बेटा नहीं, यह मान रहे हैं" ॥३३॥

तब कंस उठा बोल, कि "मत देर लगाओ।
राज़ीसे नहीं लड़ते तो उत्पात मचाओ॥
लो टाँगके बल खींच इन्हें बलसे घुमाओ।
नभ ओर उछालो, कहीं पर्वतपै गिराओ॥
सब ग्वाल करो चूर, करो नन्दको कैदी।
हर एकको दो पीठमें दस-पाँच लबेदी (३)" ॥३४

---

(१) मग—रास्ता।
(२) तोसल—कंसका एक पहलवान।
(३) रज़ा—अनुमति।
(४) लबेदी—छड़ी, बेंत।

यह सुनते ही बलरामका चेहरा तमक आया।
ललकारके निज तेहसे यों बैन सुनाया॥
"हाँ,—देखो अगर नन्दके तन, कर भी छुवाया।
या मेरे सखाओंको अगर नेक सताया॥
जाने रहो बस खेल बिगड़ जायगा सारा।
कूटेंगे तुम्हें, मारेंगे सरदार तुम्हारा" ॥३५॥

यह सुनते ही चाणूर भिड़ा कृष्णसे आकर।
मुष्टिक(१) भिड़ा बलदेवसे झट टाँग अड़ाकर॥
भिड़ही गये जब दुष्ट, तो निज तेजमें आकर।
लड़ने लगे, बलराम-हरी रङ्ग मचाकर॥
होने लगे यों पेंच कि इक रङ्ग सा आया।
बस देखते बनता था जो घमसान मचाया ॥३६॥

दी डूक* किसीने तो किसीने दिया गोता*।
चपरास* कसी इसने तो उसका चला तोड़ा*॥
बगलीसे* दबाया तो उधर चढ़ गया कूल्हा*।
लङ्गरमें* लपेटा तो उधर चल पड़ा हफ़्ता*॥
सांटीसे* कमरसांटसे* नकतोड़से* बाँधा।
दस्तीसे* बेहलीसे* गिरह* देके उखाड़ा ॥३७॥

उस ओर जो चाणूरने अहिफाँससे * मारा।
इस ओर कन्हैयाने उसे कीलसे* काटा॥

---

(१) मुष्टिक—कंसका एक पहलवान।
(*) ये सब पहलवानोंके दाव-पेचोंके नाम हैं।

मुष्टिकने दिया तोड़* तो बलदेवने घिस्सा* ।
बेलनसे* लपेटनसे* मचा ख़ूब तमाशा ॥
जो पेंच चला एकका दूजेने हटाया ।
इस भाँतिसे चाणूर वो मुष्टिकको छकाया ॥३८

आख़िरको कलाजङ्गसे* चाणूर हुआ चूर ।
दाऊने जटाचीरसे* मुष्टिकको किया धूर ॥
तब कृष्णसे 'सल्ल' (१) आके भिड़ा शक्तिसे भरपूर ।
'तोसल' (१) भिड़ा बलदेवसे तज जङ्गका दस्तूर ॥
जब स्वार्थके वश होता है जगमें कोई इन्सान ।
शर्माता नहीं वह कभी, तज देनेमें ईमान ॥३९

करकोड़से* बलदेवने 'तोसल'को पछारा ।
श्रीकृष्णने धोबीपटासे* 'सल्ल' को मारा ॥
यह देख अपर वीर सभी खींच किनारा ।
हरएक अखाड़ेसे सटक घरको सिधारा ॥
चिल्ला उठा तब कंस कि, "मारो, धरो, धाओ ।
इन नन्दके बेटोंको अभी मार गिराओ" ॥४०

सुनते ही झपट दाऊने दस-पाँचको कूटा ।
गज-झुण्डमें ज्यों सिंह हो, अति क्रोधसे छूटा ॥
श्रीकृष्णने यों प्राण झपट कंसका लूटा ।
तीतरपै बड़ा बाज़ हो, ज्यों चावसे टूटा ॥

---

* ये सब पहलवानोंके दाँव-पेंचोंका नाम हैं ।
(१) 'सल्ल', 'तोसल'—कंसके पहलवान ।

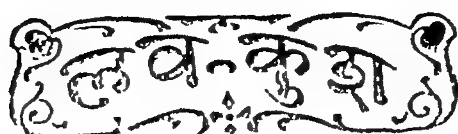
बस एक दपेटामें झपट मंचसे पटका।
बल, तेज, अहंकार, सकल छोड़के सटका ॥४१॥

जब पापकी करतूतसे भर जाता है प्याला।
बल, तेज, अहङ्कार, बड़ा क्रोध भी आला॥
राजत्वका, वीरत्वका संभ्रान्त मसाला।
बुझ जाता है ज्यों प्रेतके दीपकका उजाला॥
ऐसा ही हुआ कसका बस हाल तनकमें।
बस कूट धरा कृष्णाने दपटाके तनकमें ॥४२॥

थोड़ी ही कड़ी आँचसे ज्यों दूध उबल जाय।
अत्यन्त तनक तापसे ज्यों मोम भी गल जाय॥
थोड़े ही तरणि-तेजसे हिम-राशि पिघल जाय।
बारूदका ज्यों ढेर तनक आगसे जल जाय॥
उड़ जाय तनक तापसे काफरका ज्यों ढेर।
त्यों कंसके वध करनेमें अति अल्प लगी देर ॥४३॥

यों कृष्णने सब बालोंको इक पाठ पढ़ाया।
उत्साहसे क्या होता है? सो करके बताया॥
फल क्या है महा पापका? प्रत्यक्ष दिखाया।
'रैयतको सताना नहीं,' राजोंको सिखाया॥
जानैगा सो मानैगा, न मानैगा, सो जानै।
है ईश-नियम ऐसाही, क्या 'दीन' बखानै? ॥४४॥





लव-कुश

क्षत्रित्व है क्या वस्तु? कहाँ और किधर है?
वीरत्व दिखा सकता है, वह कौन सा नर है?
है मूल (१) कहाँ वीरकी और कैसा हुनर है?
सुरपुरसे है आता, कि धराधाममें घर है?
हूँ आज तुम्हें ऐसी ही मैं बात बताता।
तुम भी तो जरा जाँच लो, क्या सत्य है भ्राता ॥१

इतिहासके पन्नोंको उलट-फेरके देखो।
संसारके वीरोंके सकल काम परेखो॥
परताल करो, जाँच करो, ध्यानसे लेखो।
तब अन्तमें आता है यही एक सरेखो (२)॥
माताहीकी निज गोद सकल गुणकी धरा है।
माताहीकी शिक्षामें सकल तत्त्व भरा है ॥२

मातायें अगर चाहें तो यह देश सुधर जाय।
यह देश सकल फिर भी विकट वीरोंसे भर जाय॥
यह दीन-दशा हिन्दकी जानें न किधर जाय।
फिर हिन्दके बल-तेजसे संसार हहर जाय॥
माताओंकी इच्छाहीपै निर्भर है सकल बात।
माताओंकी शिक्षाहीसे है हिन्दकी कुशलात ॥३

---

(१) मूल—जड़। (२) सरेखो—निश्चय।

माताहीकी शिक्षासे लखनलाल हुए वीर।
अर्जुन भी हुए माताकी शिक्षाहीसे रण-धीर॥
षट्मुख भी हुए माताकी इच्छाहीसे दल-चीर।
अनिरुद्धकी हिम्मत भी है सब माताकी तद्‌वीर॥
सामत, पृथीराजके थे कन्ह व कैमास।
माताओंकी शिक्षाही थी इनकी भी सकल आस ॥४॥

थे वीर बनाफर जो युगुल युद्धके सरदार।
रहते थे महोवामें जो परमालके दरबार॥
है नाममें जिनके भरा वीरत्वका भंडार।
सुनते ही हुआ करता है क्षत्रित्वका सञ्चार॥
आल्हा था विकट वीर तो ऊदल भी था रण-धीर।
माताहीकी शिक्षासे बने थे य विकट वीर ॥५॥

दक्षिणमें शिवाजी जो हुआ वीर मराठा।
जिसने कि मुसल्मानोंको है ख़ूब छकाया॥
चम्पतका जो था पुत्र छतरसाल बुंदेला।
वीरत्वमें हो गुज़रा है इक आप अकेला॥
माताओंकी शिक्षाहीसे ये वीर बड़े थे।
माताओंकी इच्छाहीसे मुग़लोंसे लड़े थे ॥६॥

वर वीर बुनापार्ट (१) जो यूरुपमें हुआ है।
यूनानका वर-वीर सिकन्दर जो सुना है॥

---

(१) बुनापार्ट—यूरोप-विजयी नेपोलियन बोनापार्ट।

नोट—सम्राट पृथ्वीराज, नेपोलियन बोनापार्ट और सिकन्दर बादशाहकी सचित्र जीवनियां हमारे यहांसे मँगा देखिये। दाम पहलीका १।), दूसरीका ७) और तीसरीका ॥=) रुपया है।

ईरानमें प्रख्यात जो रुस्तमकी कथा है।
जापानके टोगोने जो वीरत्व किया है॥
माताओंने निज करसे इन्हें वीर बनाया।
कर सकती हैं मातायें, वही करके दिखाया ॥७॥

अब और अधिक नाम सुवीरोंके गिनाना।
है मेरे निकट व्यर्थका बकवाद बढ़ाना॥
सिद्धान्त है बस एक यही तुमको बताना।
लो जाँच अगर इसमें हो कुछ झूठ बहाना॥
माताहीकी इच्छापै है वीरत्वका आधार।
माताहीकी शिक्षापै है छलित्वका सब भार ॥८॥

सीतासी सती नारिको जब रामने टाला।
इक मूढ़के कहनेसे उसे घरसे निकाला॥
बालमीकके आश्रममें रही जाके व बाला।
सहने लगी अति धीरसे दुख, दर्द, कसाला॥
थी गर्भवती, रहती महा शोक-सताई।
उस वक़्तमें अभिलाष यही चित्तमें आई ॥९॥

"हे ईश! अगर पुत्र हो इस गर्भसे पैदा।
संसारके योधाओंमे हो वीर बलाका॥
यशधारी, महा तेजसी, रण-खेलमें बाँका।
हुङ्कार सुने जिसकी पड़े रणमें सनाका॥
वीरत्वसे बस मेरे कलेजेको जुड़ावै।
निज बापको भी एक दफ़ा खूब छकावै ॥१०॥

निर्दोष मुझे रामने जङ्गलमें निकाला।
देखी न दशा मेरी, न कुछ मेरा कसाला॥
कहनेमें लगे उनके सुमित्राके भी लाला।
यश मेरे पिता-वंशका कुछ देखा न भाला॥
हे ईश! सुवन दे, जो इन्हें खूब छकावै।
वीरत्वका है गर्व इन्हें, उसको घटावै" ॥११॥

इस नित्यकी इच्छाका असर गर्भपै भरपूर।
पड़ने लगा, बढ़ने लगा मुख और ही कुछ नूर॥
साहस बढ़ा, धीरज हुआ, आलस्य गया दूर॥
वन-कष्ट समझने लगीं सीताजी महज़ धूर॥
है वीर सुवन गर्भमें जननीके जब आता।
इस भाँतिके सब चिन्ह हैं प्रत्यक्ष दिखाता ॥१२॥

पैदा हुए दो पुत्र महा तेजके भण्डार।
थे भानुके दो बिम्ब किधौं अग्निके दो सार॥
करने लगीं सीता जी बड़े छोहसे संभार।
मुनिराज भी करने लगे उन दोनोंपै अति प्यार॥
मुनिराजने अति शुद्ध कुलाचार कराया।
'कुश' एकका, 'लव' दूसरेका नाम धराया ॥१३॥

सीताके तो ये थे ही युगुल आँखके तारे।
मुनि शिष्य भी माने थे इन्हें प्राण-पियारे॥
इस भाँति बरस पाँच बहुत शीघ्र गुज़ारे।
फिरने लगे आश्रममें विकट तेजके धारे॥

वन-जंतु सभी नाचके थे इनको रिझाते।
पक्षी भी मधुर तानसे निज गान सुनाते ॥१४॥

"तुम पुत्र हो क्षत्रानीके, सुन लो मेरे प्यारे!
निमि-वंशके नाती हो तो रघुवंशके चारे॥
क्षत्रीके विकट धर्म हैं सब कर्म तुम्हारे।
रहती हूँ इसी आससे निज प्राणको धारे॥

देखूँगी तुम्हें जब कभी वीरत्वमें आला।
तब दिलसे निकल जायगा सब कष्ट-कसाला ॥१५॥

दीनोंपै दया, सबसे हया, दुष्टको दरना।
दस्मीके दबानेमें कभी देर न करना॥
आवे जो शरण, उसको कभी भी न निदरना।
यह धर्म है क्षत्रीका इसे ध्यानमें धरना"॥

नित दोनोंको सीता जी यही पाठ पढ़ातीं।
पर किनके सुवन हो, न कभी साफ़ बतातीं ॥१६॥

"तलवार, तबर, तीर खिलौने हैं तुम्हारे।
कोदण्डकी टङ्कार भी इक राग है प्यारे!
रण-भूमि सुथल खेलका है बापके द्वारे।
नर-मुण्ड हैं सब गेंद, रहो चित्तमें धारे"॥

नित दोनोंको सीताजी यही सीख सिखातीं।
भयभीत न हों जिससे वही काम करातीं ॥१७॥

मुनि-धामकी बरकतसे सभी जन्तु बनैले।
आश्रममें भरे रहते, न थे चित्तके मैले॥

त्यों कीट-पतङ्ग भी सभी कुछ बिगड़े।
आश्रममें फिरा करते, बने मोमके थैले॥
युग-भ्रात इन्हीं सँग सदा खेल मचाते।
खुद खाते जो फल-मूल सो इनको भी खिलाते॥१८॥
सिंहोंके पकड़ कान तमाचे भी लगाते।
शूकरके पकड़ दाँत कभी बलसे हिलाते॥
सर्पोंको पकड़ खेलमें कोपीन बनाते।
रीछोंको पकड़ मातुके ढिग लाके नचाते॥
माता भी बड़े प्रेमसे कुछ उनको खिलाती।
"अब जाने दो बेटा इन्हें," यह कहके छोड़ाती॥१९॥
माताका यही धर्म है, यों पुत्रको पाले।
'भय' वस्तु है क्या, मात्र न यह चित्तमें डाले॥
भयभीत हो बालक तो तुरत भयको निकाले।
उत्साहको तज अन्य कभी बात न चाले।
तब पुत्र हुआ करते हैं वीरत्वमें बाँके।
उत्साह भरे, बलके विकट, वीर लड़ाके॥२०॥
यों हो गये जब बाल युगुल सोला बरसके।
भीजी मसें और लगने लगे युद्धके चसके॥
लीलाहीमें भुज-दण्ड निरखते कभी हँसके।
वन-जन्तु पकड़ लाते कभी खोहमें धँसके॥
तब जान लिया सीताने, हैं पुत्र मेरे शूर।
सब खेद गया, दिलमें हुआ मोद भी

जब रामने हय-मेधका सामान रचाया।
तजि अश्वको, रक्षाके लिये दलको पठाया॥
उस दलने विकट युद्धसे वीरोंको हराया।
और रामके सम्राज्यका जय-घोष बजाया॥
हर ओर यही शोर पड़ा, 'राम हैं सम्राट'।
माने न जो बस पड़ती थी उसपरही विकट काट ॥२२॥

मुनि-धाम निकट जब कि वही अश्व सिधारा।
जय-पत्र बँधा घोड़ेके सिर लवने निहारा॥
"हैं! हम भी तो क्षत्री हैं!—यही भाव सँभारा।
जय-घोष सुने मुख हुआ निर्धूम अङ्गारा॥
हमको तो अभी रामने जीता नहीं रनमें।
सम्राट बना जाता है क्या सोचके मनमें? ॥२३॥

माताजी बताती हैं हमें क्षत्रीके बालक।
कहती हैं पिता अब भी हैं निज देशके पालक॥
फिर कौन हुआ 'राम' यं क्षत्रित्वका घालक?
सम्राट ही बनता है जो निज तेजका चालक।
जीतेही हमारे जो बनैं राम महाराज।
क्षत्रित्वके अपमानका है कौनसा फिर काज ॥२४॥

"घोड़ेको पकड़ आज अभी खेल मचाऊँ।
दल पीटके, माताको यहाँ लाके दिखाऊँ॥
मातासे पता लेके, निकट बापके जाऊँ।
चरणोंमें नवा शीश विनय-वाद सुनाऊँ॥

आनंद सहित बापको सम्राट बनाऊँ ।
यों क्षत्री-सुवन होनेका आनंद मनाऊँ ॥२५॥
निज बाहुके बल जो न धराशीश कहावै ।
निज गुणसे न निज बापको सम्मान दिलावै ॥
नित भोर ही रैयतसे न निज नाम रटावै ।
रिपु-नारिका हियरा न सुबह-शाम कँपावै ॥
वह व्यर्थ है क्षत्रित्वको बदनाम कराता ।
माताको है दस मास वृथा भार ढोवाता" ॥२६॥
यह सोचके, झट दौड़के, उस अश्वको पकड़ा ।
ज़ञ्जीरसे नज़दीकके इक पेड़से जकड़ा ॥
धनु तान खड़ा होगया उस पन्थमें अकड़ा ।
बस अड़ गया श्रीरामके वीरत्वका छकड़ा ॥
'हाँ आगे बढ़ो, मारो, धरो, अश्वको लो छोर' ।
ऐसा ही मचा फ़ौजके हर चार तरफ़ शोर ॥२७॥
इक वीरने बढ़ आगे कहा, "सुनता है मुनि-बाल !
घोड़ेको पकड़ क्यों तू बुला लेता है निज काल ?
मुनि-बाल समझ तुझको न मारैंगे लखनलाल ।
तू छोड़ दे घोड़ेको, न ले जानपै जञ्जाल ॥
इस खेलकी धनुहीसे न कुछ काज सरैगा ।
मुनि-बाल हो भूपालसे तू कैसे लरैगा ?" ॥२८॥
'मुनि-बाल समझता है तो ले युद्धकी आशीश' ।
यों कहके दिया तीर तो फ़ौरन ही उड़ा शीश ॥

जब रामने हय-मेधका सामान रचाया।
तजि अश्वको, रक्षाके लिये दलको पठाया॥
उस दलने विकट युद्धसे वीरोंको हराया।
और रामके सम्राज्यका जय-घोष बजाया॥
हर ओर यही शोर पड़ा, 'राम हैं सम्राट'।
माने न जो वस पड़ती थी उसपरही विकट काट ॥२२॥

मुनि-धाम निकट जब कि वही अश्व सिधारा।
जय-पत्र बँधा घोड़ेके सिर लवने निहारा॥
"हैं! हम भी तो क्षत्री हैं!—यही भाव सँभारा।
जय-घोष सुने सुख हुआ निर्धूम अङ्गारा॥
इमको तो अभी रामने जीता नहीं रनमें।
सम्राट बना जाता है क्या सोचके मनमें? ॥२३॥

माताजी बताती हैं हमें क्षत्रीके बालक।
कहती हैं पिता अब भी हैं निज देशके पालक॥
फिर कौन हुआ 'राम' ये क्षत्रित्वका घालक?
सम्राट ही बनता है जो निज तेजका चालक।
जीतेही हमारे जो बनें राम महाराज।
क्षत्रित्वके अपमानका है कौनसा फिर काज ॥२४॥

"घोड़ेको पकड़ आज अभी खेल मचाऊँ।
दल पीटके, माताको यहाँ लाके दिखाऊँ॥
मातासे पता लेके, निकट बापके जाऊँ।
चरणोंमें नवा शीश विनय-वाद सुनाऊँ॥

आनंद सहित बापको सम्राट बनाऊँ।
यों क्षत्री-सुवन होनेका आनंद मनाऊँ ॥२५॥
निज बाहुके बल जो न धराशीश कहावै।
निज गुणसे न निज बापको सम्मान दिलावै॥
नित भोर ही रैयतसे न निज नाम रटावै।
रिपु-नारिका हियरा न सुबह-शाम कँपावै॥
वह व्यर्थ है क्षत्रित्वको बदनाम कराता।
माताको है दस मास वृथा भार ढोवाता" ॥२६॥
यह सोचके, झट दौड़के, उस अश्वको पकड़ा।
ज़ञ्जीरसे नज़दीकके इक पेड़से जकड़ा॥
धनु तान खड़ा होगया उस पन्थमें अकड़ा।
बस अड़ गया श्रीरामके वीरत्वका छकड़ा॥
'हाँ आगे बढ़ो, मारो, धरो, अश्वको लो छोर'।
ऐसा ही मचा फ़ौजके हर चार तरफ़ शोर ॥२७॥
इक वीरने बढ़ आगे कहा, "सुनता है मुनि-बाल!
घोड़ेको पकड़ क्यों तू बुला लेता है निज काल?
मुनि-बाल समझ तुझको न मारेंगे लखनलाल।
तू छोड़ दे घोड़ेको, न ले जानपै जञ्जाल॥
इस खेलकी धनुहीसे न कुछ काज सरैगा।
मुनि-बाल हो भूपालसे तू कैसे लरैगा?" ॥२८॥
'मुनि-बाल समझता है तो ले युद्धकी आशीश'।
यों कहके दिया तीर तो फ़ौरन ही उड़ा शीश॥

यह देखके फिर आगे बढ़ा और भी इक कीश।
निज भावसे डरवाने लगा काढ़के निज ग्नीश॥
इक तीर दिया लवने हुआ होश ठिकाने।
हर ओरसे तब दौड़ पड़े वीर सयाने ॥२९॥

इक ओरसे अङ्गद व हनूमान जो धाये।
नल, नील, द्विविद एक तरफ़ आके तुलाये॥
इक ओरसे सुग्रीवने कुछ पैर बढ़ाये।
रिक्षेश भी इक ओरसे दल बांधके आये॥
हर चार तरफ़ लवके लगे फौजके मेले।
ज्यों आगको घेरा चहैं बारूदके ठेले ॥३०॥

हनुमान व अङ्गदको पवन-बाणसे झेला।
गिरि-बाणसे, नल, नीलको पीछेको पछेला॥
सुग्रीवको रवि-बाणका ऐसा दिया ठेला।
किष्किन्धामें दिखलाई पड़ा उनका झमेला॥
रिक्षेशकी सेनामें अगिन-बाण चलाया।
जलने लगे सब रीछ तो "दैयारे" मचाया ॥३१॥

लंकेशने तब बढ़के विकट मार मचाई।
उनकी भी सकल सेन पवन-सरसे उड़ाई॥
इस भाँतिसे जब हो चुकी सेनाकी सफ़ाई।
बाक़ी रहे शत्रुघ्न, लखन दोनो ही भाई॥
उस ओरसे दो काका थे इत एक भतीजा।
मन देके सुनो ऐसे विकट रणका नतीजा ॥३२॥

शत्रुघ्न, लखनलाल जो थे बाण चलाने ।
हो जाते सकल फूल इधर आते ही आने ॥
इस ओरसे लव तानके धनु तीर चलाने ।
वे होते सकल फूल उधर जाने ही जाने ॥

जब दोनों तरफ़ वीरोंने देखा य अजब हाल ।
झल्लाये विकट क्रोधमें, क्या मायाका है जाल ॥३३॥

तब होके सजग लवने विकट बाण चलाया ।
शत्रुघ्नको बेहोश किया भूमि गिराया ॥
यह देख लखनलालको यों कोप जगाया ।
बस एक विकट सरसे तुरत लवको सुलाया ॥

इतनेमें खबर पाते ही कुश दौड़के आये ।
ललकार लखनलालको यों बैन सुनाये ॥३४॥

"क्षत्री नहीं तुम, भिड़ते हो बच्चोंसे समरमें ।
रण देखे नहीं तुमने, रहे हो सदा घरमें ॥
लो देख लो क्षत्रीका भी बल एक ही सरमें ।
यह बाल न था पूरा अभी युद्ध-हुनरमें" ॥

यों कहके बड़े क्रोधसे इक बाण चलाया ।
सह-सैन लखनलालको कोशलमें गिराया ॥३५॥

लखि हाल य सब रामको आश्चर्य सा आया ।
दे सैन भरतलालको रण हेत पठाया ॥
उनका भी वही हाल हुआ जैसा बताया ।

सुनते ही विजय-नाद युगुल भ्रात भी चलकर।
रण-भूमिमें आ डट गये हर भाँति सँभलकर ॥

जब रामने देखा कि "युगुल भ्रात हैं बारे।
हैं रूपके निधि नैनको लगते हैं पियारे॥
मुख दोनोंके लख पड़ते हैं अनुहार हमारे।
इक स्याम है, इक गौर है, धनु-बाण हैं धारे॥

अत्यन्त विकट तेजसे चेहरे हैं चमकते।
ज्यों अग्निके दो पिण्ड हों निर्धूम दमकते ॥

कोपीन कसे, सिरपै जटा-जूट बनाये।
मृग-चर्म-वसन धारे धनुष-बाण लगाये॥
गोधाके कठिन चर्मके दस्ताने चढ़ाये।
दो तूण कसे, क्रोधसे कुछ नैन रँगाये॥

रस-रौद्र सहित वीरको मुनि-भेष बनाकर।
ज्यौं शान्त लिवा लाया हो मनसिजपै चढ़ाकर" ॥

यह भेष अजब देखके छकसे रहे श्रीराम।
पूछा कि नहीं तुमने सुना मेरा कभी नाम?
क्या जानते हो मैंने किया है जो विकट काम?
रावणसे विकट वीरको पठवा दिया यमधाम?

मुनि-बाल हो तुम जाओ करौ वेद-रटाई।
रण-भूमिमें मिलती नहीं मुनियों को बड़ाई।

कर डाला जो कुछ उसको अभी माफ़ करूँगा।
मुनि-बाल समझ दोष न कुछ मनमें धरूँगा॥

मख-साजसे तुम लोगोंके आश्रमको भरूँगा ।
इतनेपै न मानोगे तो फिर दण्ड करूँगा ॥
करके वृथा मातुको मत शोक विसारो ।
बटु-रूपमें हो अपना बटुक-धर्म निबारो" ॥४०॥

"मुनि-बाल समझ धोखा न खा जाना भला राम !
हम जानते हैं तुमने जो लङ्कामें किया काम ॥
इक विप्र बिचारेको बधा पाया बड़ा नाम !
बस इतनेपै बन बैठे हो वीरत्वके निज धाम ?
ानी-कुमारोंके जरा सामने आओ ।
तज धर्म, दया, युद्धमें क्षत्रित्व दिखाओ ॥४१॥

अबतक तो चराये हैं सदा रीछ व बानर ।
मारे हैं समर-भूमिमें पापीश निशाचर ॥
क्षत्रीके विकट बाहु नहीं देखे भयङ्कर ।
मुनियोंकी खुशामदसे बने फिरते हो नर-वर ॥
ना हो तो लड़ जाओ नहीं घरको सिधारो ।
डरवानेके हित मुफ्त न यों शेखी बघारो" ॥४२॥

जब रामने देखा, कि नहीं मानते कुछ बात ।
समझे, कि सहजहीमें इन्हें करके अभी घात ॥
संसारको दिखलाऊँ नई और करामात ।
मख-पूर्णके दिन भी तो फ़क़त शेष हैं छः सात ॥
हना नहीं सुनते हो तो लो, युद्ध ही कर लो ।
दिखलाके युवक-जोशको निज चित्तको भरलो"

संग आपके पुत्रोंका जो यह युद्ध हुआ है।
भारतके सभी लोगोंको मालूम कथा है॥
यह सोचके विस्तार नहीं मैंने किया है।
बस याद दिलानेके लिये इतना लिखा है॥
घटना है अजब, सीख है अनमोल सिखाती।
वीरत्व किसे कहते हैं? यह तत्त्व बताती ॥४४॥

इस युद्धमें श्रीरामने बाज़ी नहीं पाई।
सीताहीने तब बीचमें पड़ सन्धि कराई॥
सब सत्य जो थी बात, सो पुत्रोंको बताई।
और रामको निज सत्वकी सब बात लखाई॥
माताहीकी इच्छासे व शिक्षासे बने वीर।
जगतेशको भी डालें छका ऐसे हों रणधीर ॥४५॥

माताके विचारोंका असर गर्भ-समयमें।
बच्चोंको सदा रखना लड़कपनमें अभयमें॥
फिर उनको निपुण करना कुलाचार-निचय (१) में।
सानन्द मदद देना उन्हें उनकी विजयमें॥
निज वंशके पुरुषार्थोंका वीरत्व सुनाना।
सुत वीर जो चाहो, तो य पँचाम्बु पिलाना ॥४६



(१) निचय—समूह।

अभिमन्यु

हूँ आज सुनाता तुम्हें उस वीरका मज़मून ।
जो रूपमें रतिनाथ था, पौरुषमें था [illegible] ॥
श्रीकृष्णका था भानजा पारथका प्रथम पून ।
सम्राट परीक्षितका पिता कङ्कका [illegible] ॥
निज वंशका आधार, सुभद्राका दुलारा ।
सौभाग्यवती उत्तराका प्राणपियारा ॥ १ ॥

जिस वक्त, कि भारतका महा युद्ध हुआ है ।
संसारमें जिसकी बड़ी मशहूर कथा है ॥
उस वक्त पै इस वीरने जो काम किया है ।
चौंके न उसे सुनके भला किसका हिया है ?
बस आज वही दृश्य हूँ मैं तुमको दिखाता ।
कर सकते हैं क्या वीर युवक, यह हूँ बताता ॥ २ ॥

मानो, कि निकट सामने इक वीर खड़ा है ।
सब युद्धके सामानसे नख-शिखसे जड़ा है ॥
कुछ क्रोधका आभास भी नेत्रोंमें पड़ा
वीरत्वका उत्साह भी सीनेमें अड़ा
भुजदण्ड फड़कते हैं तो पग आगेको बढ़ते ।
"जय धर्मकी" ये शब्द स्वयं

इस वारने यौवनमें अभी पाँव धरा है।
पर, वीर-उचित जोशसे भरपूर भरा है॥
वीरत्व दिखानेको इसे ऐसी त्वरा(१) है।
कौरवके बड़े दलकी न परवाह ज़रा है॥
माताके मने करते भी रण-थलको चला है।
पत्नीसे भी ज्यों त्योंसे छुड़ा लाया गला है॥४॥

उठ दाहिना कर चाहता है मूँछपै दे ताव।
मूँछैं ही नहीं जानके सङ्कोचका है भाव॥
डाला गया है हालहीमें प्रेमका उलझाव।
थोड़ा ही सा बस देखा है संसारका बरताव॥
निज तेजका कुछ अंश स्वपत्नीको दिया है।
संसारका बस एक यही काम किया है॥५॥

इस ज़ोरसे जाता है चलै जैसे कोई तीर।
आओ, चलैं देखें तो, कहाँ जाता है यह वीर॥
लो देखो, खड़ा हो गया, मुख-भाव है गंभीर।
कहता है, सुनो, "चाचा! करो एक य तदबीर॥
मै व्यूहको हूँ भेदता, पीछे मेरे आओ।
जय बोलते उत्साहसे वीरत्व दिखाओ"॥६॥

क्या जानते हो, किसने, य क्यौं व्यूह रचा है?
क्यों पाण्डवोंकी सेनमें हलकम्प मचा है?
है नाम "चकाबू" (२) सभी व्यूहोंका चचा है।
श्रीद्रोणका रचनेमें इसे मग्ज़ पचा है॥

(१) त्वरा—जल्दी। (२) चकाबू—चक्रव्यूह।



अर्जुनके सिवा तोड़े इसे कौन सुभट है ?
विश्वास था सबको, कि यह घटना ही प्रकट है।
संसप्तकोंको जीतने अर्जुन हैं सिधारे।
यह जानके कुरु-राज गया द्रोणके द्वारे॥
"गुरुदेव ! सकल लाज है अब हाथ तुम्हारे।
बस आज कोई व्यूह रचो हेत हमारे॥
जिससे कि महावीर कोई शत्रुका मारें।
या भीमको, या धर्म-तनयहीको पछाड़ें"।
इस बातपै श्रीद्रोणने यह व्यूह बनाया।
और युद्धके हित धूमसे धौंसेको बजाया॥
इस व्यूहको लख भीम भी अत्यन्त डराया।
सब भूल युधिष्ठिर भी गये धर्म-अमाया॥
बिल सांपका था खोजता,(१) कहते हैं नकुल वीर।
सहदेवके कर कूच गये देवता और पीर (२)॥
घबराये हैं सब चाचा य अभिमन्युने जाना।
उस वक्तका यह हाल है जो पहले बखाना॥
अब व्यूहके भेदनका सुनाता हूँ फ़िसाना (३)।
क्या हाल हुआ मध्यमें, यह भी है सुनाना॥
पर, हाल सुनाता हूँ विकट वीरका यारो।
धड़के न कहीं अपने कलेजोंको

(१) सांपका बिल खोजना—डरकर रक्षाका स्थान खोजना
(२) देवता और पीर कूंचकर गये—होशहवास जाते रहे।
(३) फ़िसाना—कहानी, किस्सा।

मुख-द्वारपै वरवीर जयद्रथ ही डटा था॥
जो शिवका कृपा-पात्र था और छैल छँटा था।
रणमें जो किसी काल किसीसे न हटा था।
सब हिन्दमें वीरत्वका यश जिसके पटा था॥
अर्जुनके सिवा कोई उसे मार न सकता।
हुंकार सुने सिंह भी जङ्गलमें दुबकता ॥११॥

आते हुए अभिमन्युको जब इसने निहारा।
"हे बाल! खड़ा रह वहीं," यों डटके पुकारा॥
"अब आगे धरा पैर, तो यमधाम सिधारा।
मातासे सुना ही नहीं बल-तेज हमारा?
बल, तेज मेरा जानता है तेरा सगा बाप।
वैरीके लिये वज्र हूँ या शिवका महा शाप" ॥१२॥

तब रोषसे अभिमन्युने यों बैन उचारा।
"मैं जानता हूँ सिंधु-धनी! तेज तुम्हारा॥
तुमहीको तो था मेरी विमाताने * पछारा।
जब उसके पकड़नेको था कर अपना पसारा॥
हट जाओ, नहीं जाओगे जी-जानसे मारे।
कहता हूँ इसी हेतु, कि फूफा हो हमारे" ॥१३॥

सुनते ही जयद्रथने शरासनको सँभारा।
तीखासा विकट बाण भी तरकशसे निकारा॥

---

* पाण्डवोंके वनवास समयमें, एक वार जयद्रथ द्रौपदी-हरणके हेतु उनके स्थान- पर गया था। द्रौपदीने इसे तीन वार पटका था।

इतनेहीमें अभिमन्युने बढ़ उसको पछारा।
और आगे बढ़ा धूमसे उत्साहका मारा॥
अभिमन्युको तो वीर जयद्रथ न सका रोक।
पर अन्य सुभट जा न सके साथमें, हा शोक! ॥१४॥

सहदेव, नकुल, भीम, युधिष्ठिरसे महावीर।
और इनके तरफ़वाले विकट वीरोंकी सब भीर॥
हर भाँतिसे उद्योग किया, जायें कटक चीर।
पर, वीर जयद्रथसे चली एक न तदबीर॥
अभिमन्यु अकेला ही चक्रव्यूमें सिधारा।
बालूसे नहीं रुकता कहीं पर्वती नारा ॥१५॥

फिर दूसरे, फिर तीसरे, फिर चौथेको तोड़ा।
फिर पाँचवें, छठवेंको भी, सप्तमको न छोड़ा॥
जो सामने आया उसे शर-जालसे फोड़ा।
इसको यहाँ पटका तो वहाँ उसको मरोड़ा॥
यों सात अगम द्वार चक्रव्यूके किये पस्त।
ज्यों कज समूहोंको दले पील कोई मस्त ॥१६॥

जब मध्यमें पहुँचा तो विकट वीर झुके यों।
इक शल्लकीपर आके झुकें शेर बहुत ज्यों॥
ज्यों वीर झुके और भी उत्साह चढ़ा त्यों।
यों युद्ध लगा करने, कि सब बोल चले क्यों॥
जो सामने आता उसे बस भूमि चुमाता।
या आप ही वह भागके निज पीठ दिखाता।

आया जो दुशासन तो उसे खूब छकाया।
मुँह फेर सुयोधनको भी रण-थलसे भगाया॥
गजकेतु* महामेघको* यमधाम झँकाया।
सितकेतुको* हनि, अश्वध्वजाको भी गिराया॥
मगधेश सुवनकुमार, सुवर्चाके* किये खण्ड।
पर, बीतने पाये हैं अभी सिर्फ़ युगुल दण्ड॥१८॥

रिपुजीतको* मारा, तो बृहद्बलको* पछारा।
फिर भानु* सहित पंच महावीरोंको मारा॥
फिर चन्द्रध्वजा* वीरको रणखेतमें पारा।
कोशलका धनी* भिड़ते ही यमधाम सिधारा॥
कुरु-राज-तनय वीर लपणको भी गिराया।
सुत एक दुशासनका भी यमलोक पठाया॥१९॥

उत्साह सहित क्रोधसे अभिमन्यु तपा जब।
चंडांशु सरिस तेजसे अति लाल हुआ तब॥
अभिमन्युकी फुरतीको लखे बोल उठे सब।
"गुरुदेव! बचाओ हमें, संकट है महा अब॥
यह चक्रसा है घूमता और बाण चलाता।
इसका तो कोई अंग नहीं दृष्टिमें आता॥२०॥

कब तीर कढ़ा, और चढ़ा, किसपे चलाया?
किस ओर गया, किसके लगा, किसको गिराया?

---

* ये सब कौरव-सेनाके महाबली योद्धा थे।

यह काम किसीके न कभी दृष्टिमें आया।
सब देखते हैं वीरोंका होता है सफ़ाया॥
फल मात्र फकत शलुको देता है दिखाई।
इतनेसे समझ लीजिये कुन्ती व सगाई" ॥२७॥

इस भाँतिसे अभिमन्यु लड़ा याम अढ़ाई।
आधीसे अधिक सेनकी कर डाली सफ़ाई॥
कुरु-राजके तब ध्यानमें यह बात समाई।
"साहससे इसे जीतना संभव नहीं भाई॥
बस सप्त-रथी मिलके इसे लक्ष्य बनावें।
जिस भाँतिसे हो इसको अभी भूमि सुलावें" ॥२८॥

बस कर्ण, दुशासन व कृपा और सुयोधन।
निज पुत्र सहित द्रोण-गुरु जो थे तपोधन॥
छल-छद्मका भंडार जो शकुनी था जलेतन।
ये सात रथी करने लगे वार दनादन॥
यों एकपै ये सात रथी, हाय रे अन्याय!
संसारमें क्या स्वार्थ ही है न्याय? हरे हाय! ॥२९॥

यह देखके अभिमन्यु तनक भी न सकाया।
उत्साह हुआ दूना बड़े जोशमें आया॥
कहने लगा, "यह चक्र बड़े भाग्यसे पाया।
धीरजकी परीक्षाका समय हरिने दिखाया।
गुरु लोग हैं मेरे इन्हें करतब दिखा दूँ।
आचार्यके कर वीरोंमें निज नाम लिखा

यह सोच लगा वेगसे शर-जाल चलाने।
हर एकका शर बीचहीमें काट गिराने॥
तन छेदके सातोंके किये होश ठिकाने।
चिल्लाने लगा कोई, लगा कोई पराने॥
तब बोल उठा वीर, कि "मुझसे न अड़ोगे ?
फिर मेरे पिता संग कहो कैसे लड़ोगे ? ॥२५॥
गुरुदेवजी! गुरुदक्षिणा तो लेते ही जाओ।
निज शिष्य-सुवन जानके सम्मान बढ़ाओ॥
चाचाजी! खड़े होके ज़रा ज़ोर दिखाओ।
यों भागके साहस न भतीजेका घटाओ॥
पहला ही है उत्साह मेरा भंग न कीजे।
कायरका भतीजा हूँ, य बदनामी न दीजे" ॥२६॥
शकुनीसे कहा टेरके,—"बाबाजी! सुनो बात।
क्यों जाते हो भागे? सहो दो-चार तो आघात॥
रण-विज्ञ समझता था बड़ा मैं तो तुम्हें तात!
पर, कैसे जुवारीसे हो कुछ रणमें करामात?
अबतक तो मेर तनमें पसीना नहीं आया।
तुम सातोंने यों बोलके उत्साह घटाया" ॥२७॥
फिर सातों रथी जुड़के लगे करने विकट मार।
अभिमन्यु बचाने लगा फुरतीसे सकल वार॥
यों वार बचाते हुए तजते हुए शर-धार।
बाणोंसे दिया छेद सकल वीरोंको ललकार॥

वर वीर करण, द्रोण, दुशासनको भगाया।
कुरु-राजको, शकुनीको भी अत्यंत छकाया ॥२

यों सात दफ़ा सप्त-रथी मार हटाये।
और सात दफ़ा जीतके जय-नाद सुनाये॥
गज, अश्व, रथी मारके यों धुर्रे उड़ाये।
हर वीरके चित भयके विकट भूत समाये॥

सर्वत्र ही अभिमन्यु उन्हें पड़ता दिखाई।
सराटे विकट बाणोंके पड़ते थे सुनाई ॥२

हर ओर मचा शोर, कि "अब कौन बचावै?
आचार्यसे यह हाल विकट कौन सुनावै?
वरवीर कृपा काहे कृपा, मनमें न लावै?
दुर्धर्ष करण आज न क्यों ज़ोर दिखावै?

बालक य किया; चाहता है, सत्य प्रलय आज।
हे द्रोण! बचाओ हमें, हे त्राहि कृपाचार्य!" ॥३

यों दलको विचल देख दुशासनने सँभारा।
फिर सातोंने मिल उसपै किया वार करारा॥
धनु तान दुशासनने विकट बाण पवारा।
खण्डित हुआ धनु, हो गया बिन अस्त्र बिचारा॥

तब खींचके तलवार लगा वार बचाने।
उड़-उड़के लगा घोर घमासान मचाने ॥

जिस ओर लपक जाता वहीं धूम मचाता।
सिर और भुजाओंका बवण्डर सा उड़ाता॥

सब वार बचा शत्रुओंको भूमि चुमाता।
किस वेगसे? वाणीकी समझमें नहीं आता॥
पर, कर्णने शर मारके तलवार उड़ा दी।
सौभद्रकी जनु वीरताकी ज्वाल बुझा दी ॥३२॥

हथियार नहीं हाथमें, बालक है अकेला!
दिन-भरका थका कैसे करे युद्धमें हेला?
और सात महावीरोंके तीरोंका है रेला!
अनुमान करो पाठको! कैसा है झमेला?
यह देख दशा ज़ोरसे अभिमन्यु पुकारा:—
"धिक्कारके लायक है यह वीरत्व तुम्हारा! ॥३३॥

रे कायरो! है साफ़ य अन्याय तुम्हारा।
जब सात दफ़े मैंने तुम्हें रणमें पछारा॥
हथियार-रहित करके मुझे आठवीं बारा।
मारा तो भला कौनसा वीरत्व सँवारा?
यों करके, हो वीरत्वको क्यों दाग़ लगाते?
क्षत्रित्व मलिन करते नहीं नेक लजाते? ॥३४॥

हथियार कृपा करके मुझे एक गहाओ।
फिर वीर-वरो! शौक़से हथियार चलाओ॥
क्षत्रित्वको बदनामीके धब्बेसे बचाओ।
वीरत्व मेरा देख लो, या अपना दिखाओ॥
—थियार-रहित शत्रुपै हथियार चलाना।
वीरत्वकी मर्यादको है साफ़ मिटाना" ॥३५॥



यह सुनके सुयोधनने कहा,—"सत्य है ज्ञानी !
बकते हैं मरण-कालमें सब यों ही कुबानी ॥
भूपालोंकी यह नीति नहीं है तेरी जानी ?
जिस भाँति बनै शत्रुको कर डालना पानी ॥
भूपाल जो है न्यायको निज अङ्ग लगाता ।
वह राज्यका सुख खोजनेपर भी नहीं पाता ॥३६॥
जिस भाँति बनै, शत्रुको नीचा ही दिखाना ।
सुख-भोगके पथ ख़ूब हो विस्तीर्ण कराना ॥
मित्रोंको भलीभाँतिसे डरपोंक बनाना ।
गुरुओंका कपट-नीतिसे विश्वास हटाना ॥
अन्यायका वा न्यायका कुछ ध्यान न लाना ।
बस स्वार्थ ही साधन है फ़क़त भूपका बाना" ॥३७॥
यों कहके लगे सातो रथी घालने निज तीर ।
हर ओरसे छिद्कर हुआ अभिमन्यु विचल धीर ॥
जिस ओरको फिरता था, उधर चोट थी गंभीर ।
हा ! कैसा विकट दृश्य है, अन्याय है यदुवीर !
तीरोंसे छिदा रथमें य सौभद्रका तन था ।
या वीरताका भानु य संयुक्त-किरन था ॥३८॥
"हा ! हाय ! पिता ! आज य अभिमन्यु तुम्हारा ।
अन्यायसे रण-भूमिमें यों जाता है मारा ॥
मामाजी ! लखो आज य भानेज तुम्हारा ।
बिन अस्त्र, रथी सातसे यों जाता है मारा ॥

इस कार्यका बदला तुम्हीं कुरु-राजसे लेना।
जो दण्ड उचित हो, इन्हे भरपूर सो देना" ॥३९॥

अन्याय लखै कौरवोंका भूमि सकानी।
अभिमन्युको निज गोदमें ले जीसे जुड़ानी॥
अन्याय सके देख न जब भानु सुज्ञानी।
मुँह फेरके चादर वहीं तम तोमकी तानी॥
अन्यायको लख दौड़ी हवा सिंधुमें गिरने।
जड़ कुण्ड-कवच कटके लगे रक्तमें तिरने ॥४०॥

द्रोषण था दुःशासनका सुवन एक कुचाली।
लेनेके लिये लोकमें वीरत्वकी लाली॥
गिर पड़नेपै अभिमन्युके सिरपर गदा घाली!
दिखला ही दी निज वंशकी करतूत निराली॥
कायरका यही काम है मरतेको सताना।
ललकारते वीरोंके निकट पूँछ दबाना ॥४१॥

हे वीर-प्रवर पार्थ-सुवन! तुमको नमस्कार।
सौ बार नमस्कार, सहस बार नमस्कार॥
तुम मारे गये युद्धमें, शोकित हुआ परिवार।
पर काम किया ऐसा, कि यश गावैगा संसार॥
कुरु-राजका अन्याय व वीरत्व तुम्हारा।
कल्पान्त तलक होंगे सुवाणीका सहारा ॥४२॥



बभ्रुवाहन

लो आज सुनाता हूँ तुम्हें एक कहानी।
शायद हो तुम्हारी भी सुनी, समझी व जानी॥
'भारत' जो है इस हिन्दके गौरवकी निशानी।
उसमें ही लिखी है य कथा व्यास-बखानी॥
क्या धर्म है माताका? पिता कहते हैं किसको?
क्या वस्तु है वर वीर सुवन? जानौगे इसको ॥ १॥

वनवास-समय पार्थने, कुल-रूपकी भारी।
व्याही थी "मनीपूर" में* इक राजकुमारी॥
वादा था यही, "होगी जो सन्तान तुम्हारी।
इस राज्यके हित होगी व सन्तान हमारी॥
उसपर ही धरा जायगा इस राज्यका सब भार।
मानैंगे तुम्हें सिर्फ कुमारीहीका भर्त्तार" ॥ २

इस राजकुमारीका था 'चित्रांगदा' नाम।
अर्जुन सा सुपति पाके लहे पूर्ण मनोकाम॥
इसका ही सुवन था, जो था वीरत्वका निज धाम।
था रूप अतुल, तेज विकट, जैसे हुए राम॥

---

* "मनीपुर" का सचित्र इतिहास हमारे यहाँ "मनीपुरके सेना[पति] टिकेन्द्रजितसिंह" के नामसे छपकर तय्यार है। मनीपुरमें ऐसे-ऐसे [...] हो गये हैं, कि पढ़कर भुजाएँ फड़कने लगती है। दाम सिर्फ १) रुपया।

'था 'बभ्रु' सहित नाममें 'वाहनका समावेश ।
वीरत्वमें, क्षत्रित्वमें अर्जुनका अपर भेश ॥ ३ ॥
ह्याँ रहते समय और भी इक नाग-कुमारी ।
जो प्रेमकी भण्डार थी, और रूपमें भारी ॥
आसक्त हुई पार्थके गुण-रूप निहारी ।
अर्जुनने किया उसको भी निज नेहसे नारी ॥
था नाम 'अलपी' न भरी उसकी मगर गोद ।
ये दोनों रहा करतीं मनीपूरमें सह-मोद ॥ ४ ॥
चित्रांगदाके पुत्रको अपना ही सुवन जान ।
बभ्रूका किया करती थी अति नेहसे सम्मान ॥
अर्जुनने इसे धायका पद देके किया मान ।
फिर और किसी देशको बस कर दिया प्रस्थान ॥
बभ्रू भी समझता था इसे अपनी ही माता ।
इसके ही निकट रहता सदा मोद मचाता ॥ ५ ॥
बभ्रू तो इधर पञ्चदशी पाके अवस्था ।
नानाकी जगह करने लगा राज्य-व्यवस्था ॥
उस ओर युधिष्ठिरने जो हय-मेध* रचाया ।
रक्षाके लिये अश्वकी, अर्जुनको पठाया ॥
भारी सी विकट सैन लिये पार्थ सिधारे ।
बजने लगे हर ओर विजय-यशके नगारे ॥ ६ ॥

---

* इस हय-मेध-यज्ञका हाल हमारे यहांके 'हिन्दी-महाभारत' में विस्तार-पूर्वक लिखा है। इसमें रंग-बिरंगे २२ चित्र भी हैं। दाम सिर्फ ३।) रु० है।

]

जिस वीरने स्वीकार किया धर्मका (१) शासन।
उसके ही बचाये बचा निज राज्य-सिंहासन॥
जो आके भिड़े, उनका हुआ खूबही त्रासन।
रण-भूमिमें पाते थे फ़क़त भूमिका आसन॥
इस भाँतिसे अर्जुनके विकट बलका पड़ा शोर।
बस साफ था मैदान, निकल जाते थे जिस ओर॥७॥

जब घूमते इस भाँति मनीपूरमें आये।
बभ्रूने समाचार सकल दूतसे पाये॥
तब राज्य-उचित भेंटके सामान सजाये।
निज पूज्य पिता जानके सम्मानको धाये॥
सह नीति निकट जाके विनय-वाद सुनाया।
कर जोड़के सम्मान सहित शीश नवाया॥८॥

यह देखके अर्जुनको विकट क्रोधने घेरा।
बोले कि, "अरे दुष्ट! नहीं पुत्र तू मेरा॥
कुछ सूझता है तुझको, कि है दिन कि अँधेरा?
सम्बन्ध मेरे साथमें क्या आज है तेरा?
मैं बनके तेरा बाप नहीं आया हूँ इस ठौर।
मैं तेरा विपक्षी हूँ, ज़रा बातपै कर ग़ौर॥६॥

रे दुष्ट! अगर सत्य सुवन पार्थका होता।
तब शत्रुको यों शीश नवा मान, न खोता॥

(१) धर्म—धर्मराज युधिष्ठिर।

धिक्कार तेरी मातुको, मुझको दिया गोता।
यदि जानता, बचपनमें तुझे जलमें डुबोता॥
या ऐसे अधम पुत्रका मैं बीज न बोता।
जगमें जो अपुत्रीका अयश होता तो होता ॥१०॥

क्षत्री है कोई, शत्रुको जो शीश नवावै ?
आगम ही सुने भेंट लिये, भेंटको धावे ?
ईश्वर न करै ऐसा कुसुत गर्भमें आवै।
शूराग्रगणित बापका जो नाम धरावै॥
क्या तुझको सिखाई है अलूपीने यही बात ?
दुष्टाने किया, हाय ! मेरे मानपै आघात ॥११॥

हट जा तू मेरे सामनेसे, मुख न दिखाना।
अर्जुनका सुवन कह, न कभी मुझको लजाना॥
माताने तेरी मुझको छला आज य जाना।
नारीका युवा-कालमें क्या ठीक-ठिकाना ?
यदि पुत्र मेरा होता तो रण-साज सजाता।
घोड़ेको पकड़ धीर सहित युद्ध मचाता ॥१२॥

तू कहता है, मैं बाप हूँ, तू पुत्र है मेरा।
पर आज तो बन बाप नहीं आया हूँ तेरा ?
मैं आज विपक्षी हूँ, तुझे देके दरेरा।
ले जाऊँगा सब कोश तेरा लूट घनेरा॥
भाषेंगे सभी लोग, 'मनीपूरका अधिराज।
अर्जुनका सुवन, शत्रुके आधीन हुआ आज' ॥१३॥

'अर्जुनका सुवन शत्रुके आधीन हुआ आज'।
यह सुनना सदा तुझसे कुपूतोंहीका है काज॥
यह सुनके मुझे खेदसे आवैगी विकट लाज।
मर जाना पड़ेगा मुझे तजि वीरका सब साज॥
चित्रांगदा! हा! तूने मेरा मुँह किया काला!
हत ऐसा अधम धारके क्यों गर्भ न डाला? ॥१४॥
रे क्रूर! अगर रखता है कुछ वंशका अभिमान।
और चाहता है मुझसे बचैं तेरे अधम प्रान॥
तो शस्त्र पकड़, साजके वीरत्वका सामान।
उत्साह सहित युद्धमें कर मुझसे घमासान॥
तब जानूँगा माता तेरी है मेरी सुनारी।
नाहीं तो पिता कहके मुझे देना न गारी" ॥१५॥
सुन बात अलूपीने, जो थी साथमें आई।
ललकारके बभ्रूको यही बात सुनाई॥
"हमपर जो महाबाहुने है जीभ चलाई।
यह दोष मिटानेके लिये, कर तू लड़ाई॥
चित्राङ्गदाने तुझको जना, मैंने है पाला।
करवाता है क्यों बापसे यों मुँह मेरा काला? ॥१६॥
निज बाहुके बल दोष हमारा य छुड़ा दे।
पाण्डवको गिरा भूमिमें या प्राण लुटा दे॥
निज हाथसे या मेरा गला खड़्गसे हटा दे।
चित्रांगदाको मारके अपमान मिटा दे॥

इन बातोंमें जो भावे वही करके दिखा वीर !
पाण्डवके हैं ये वैन, कि अपमानके हैं तीर ? ॥१७॥

क्षत्रानी कोई ऐसे वचन सुन नहीं सकती।
ये वैन सुने आग है सीनेमें धधकती ॥
पत्नी न अगर होती तो ख़ुद मैंही धमकती।
यों लड़ती, कि बस बुद्धि न यों इनकी सनकती ॥

निज पुत्रका अपमान, सदाचारमें शङ्का।
क्षत्रानी नहीं सहती य है बात अशङ्का ॥१८॥

सुर पूजके कुन्तीने इन्हें वीर किया है।
निज दूधका बस पाँचवाँ हिस्साही दिया है॥
तूने तो युगुल मातुका सब दूध पिया है।
क्या इनसे भी शङ्का है, तुझे कैसा हिया है ?

तेरे तो दशम अंशके सम इनमें है कस-बल।
ललकारके बस युद्धके हित खेतमें अब चल ॥१९॥

हमको भी समझ रक्खा है, ज्यों पञ्चभतारी*।
कीचकने सभा-बीच जिसे लात थी मारी ॥
या वीर दुशासनने पकड़ खींची थी सारी।
करता था जयद्रथ भी जिसे अपनी ही नारी ॥

पंचाली-ख़सम* होके अहङ्कार है भारी।
क्षत्रानी सभी सूझती हैं पचभतारी ॥२०॥

---

* 'पचभतारी' 'पचाली'—द्रौपदी। इस घटनाका हाल हमारे "हिन्दी-" मे विस्तारपूर्वक लिखा गया है, २२ चित्र भी हैं। दाम ३।) रु०

[...]

क्या हो गया तू वीरके बानेसे पतित आज?
क्या डर गया तू देखके अर्जुनका विकट साज?
कहलायेगा तू कैसे मनीपूरका महराज?
जब करता है तू जानके यह क्रूर-सदृश काज!
क्षत्री ही नही, जिसमें न वीरत्व न बल हो।
वह आग नहीं, जिसमें न गर्मी न कहल हो ॥२१॥

वह पुत्र नहीं, माताको अपवाद चढ़ावै।
माताकी भी सुन गारी न कुछ जोशमें आवै ॥
निज शक्तिको दिखलाके न अपवाद मिटावै।
उस दोष-लगैयाको न कुछ सीख सिखावै ॥
उस पुत्रसे ससार हो अति शीघ्र ही खाली।
माताके सदाचारकी रक्खे न जो लाली ॥२२॥

ललकार सुने क्षत्री तो यमको नहीं डरते।
रण-खेलके हित नित्य विनय रामसे करते ॥
देखा नहीं तुझको कभी अभिमानसे जरते।
इस भाँति किसी खेलसे भय करके पछरते ॥
बस, आज मुझे अपना तू रण-खेल दिखादे।
इस वीरको अपवादके हित सीख सिखा दे" ॥२३॥

माताके सुने बैन तो उत्साह भर आया।
अर्जुनको सजग करके यही बैन सुनाया ॥
"निज पूज्य पिता जानके दर्शनको था आया।
तुमने तो मेरी मांको बुरा दोष लगाया ॥

रण-खेतमें चलिये तो तुम्हें आज दिखा दूँ ।
क्षत्रीका असल पुत्र हूँ, जारज हूँ कि क्या हूँ ? ॥२४॥

पर, याद रखो, द्रोण-तनय मुझको न जानो ।
और सिन्धुका अधिराज जयद्रथ भी न मानो ॥
छल करके वधा जिसको, मुझे भीष्म न जानो ।
दिव्यास्त्र चलें जिसपै, मुझे कर्ण न मानो ॥
उस वीरका मैं पुत्र हूँ, जो कृष्ण-सखा है ।
तुमने न अभी वीर कोई ऐसा लखा है ॥२५॥

तुम जिसके बने फिरते हो, यों आज चमूधीश ।
वह राज्य भी है सिर्फ़ मेरे बापकी बख़शीश ॥
लड़ता न मेरा बाप तो होते न धरा-धीश ।
रह जाते युधिष्ठिर भी फ़क़त काढ़े हुए खीश ॥
सम्राट न होते न य हय-मेध रचाते ।
यों भूमि सिंचानेको कहाँ रक्त व पाते ? ॥२६॥

क्यों वीर बने फिरते हो ? क्या शक्ति तुम्हारी ?
तुमने तो बचाई न कभी अपनी ही नारी !
पञ्चालीका अपमान सभामें हुआ भारी ।
कुछ भी तो तुम्हारी वहाँ उखड़ी न उखाड़ी !
कीचकने सभा-मध्यमें जब लात थी मारी ।
संसारने तब देखी थी करतूत तुम्हारी ॥२७॥

निज मातुके सम्मानके हित आज उमड़कर ।
मैं तुमसे समर करनेको उद्यत हूँ घुमड़कर ॥

বীর-পঞ্চরত্ন



दिखलाऊँगा संसारको मैं आपसे लड़कर।
बालक भी किया करते हैं कुछ काम अकड़कर॥
माताके लिये बापसे भिड़ जाना नहीं पाप।
हे कृष्ण-सखा! साखी बनो इसके स्वयं आप" ॥२८॥

बस होने लगा बापका रण बेटेसे डटकर!
हर ओर लगे गिरने बड़े वीर भी कटकर॥
चिग्घार उठे पील, चले अश्व झपटकर।
आगेको गिरा कोई, कोई पीछेको हटकर॥
तीरोंकी सरासरसे भरा वायुका मण्डल।
हर ओर दिखाई पड़ा शर-कोट अखण्डल ॥२९॥

लपकी कहीं तलवार, तो चमका कहीं भाला।
झनका जो यहाँ तेगा, तो खनका वहाँ खाँड़ा॥
तोमरका तड़ाका था कहीं गद्द गदाका।
शूलोंकी सपासप कहीं फाँसोंका फड़ाका॥
छप बोली कटारी तो उधर घप हुई कत्ती।
रण-अश्व भी करने लगे आपुसमें दुलत्ती ॥३०॥

बभ्रूने किया वार तो अर्जुनने बचाया।
अर्जुनके विकट तीरोंको बभ्रूने उड़ाया॥
लग जाता कोई घाव तो मन होता सवाया।
ऐसाही था उत्साह युगुल वीरोंके छाया॥
बेटेके तो मनमें न रहा बापका कुछ ध्यान।
और बापने बेटेकी नहीं मानी तनक आन ॥३१॥

दो याम-तलक वीर डटे करते रहे मार।
पर अन्तमें होने, लगी अर्जुनकी तरफ़ हार॥
अर्जुन सा पका वीर महायुद्धका सरदार।
सह सकता न था बभ्रूके बाणोंकी विकट धार॥
व्याकुल हो गिरा भूमिमें सब होश गँवाकर।
भगके भगी फ़ौज भी बभ्रूसे डराकर॥३२॥

रण जीतके बभ्रूने अलूपीको सुनाया।
"ले तेरे वचन मानके यह पाप कमाया॥
निज हाथसे निज बापको यों मार गिराया!
अब अपना भी करता हूँ मैं निज हाथ सफ़ाया॥
यों बापकी हत्याका महापाप मिटाकर।
अब मै भी रहूँगा वहीं ढिग बापके जाकर॥३३॥

माताका विकट दोष मिटानेके लिये आज।
और तेरे वचन मान, किया मैंने अधम काज॥
अब मेरे भी जल जानेका निज हाथसे कर साज।
वह देख, खड़े हैं, मेरे ले जानेको यमराज॥
माताके अमित मानकी रक्षा था मेरा धर्म।
सो कर चुका, अब बापके हित करता हूँ यह कर्म॥३४॥

जिन हाथोंसे इस वक्त पिताको है सँहारा।
सेवा तो न की, उलटा विकट बाणोंसे मारा!
उन हाथोंको रखना नहीं अब मुझको गवारा।
हाथोंही को क्यों, तन भी तो यह पापी है सारा?

]

...स हेतु जलाकर मै इसे ख़ाक करूँगा।
तव पुत्रके कर्त्तव्यसे मन मोद भरूँगा ॥३५॥

चित्रांगदाने हाल सुना दौड़के आई।
ढिग आके अलूपीको विकट बात सुनाई॥
"दुष्टा है अलूपी ! तू अधम नागकी जाई।
तूने तो मेरे भाग्यकी कर डाली सफ़ाई॥
प्राणधके शुभ नेहका सुख तूने मिटाया।
अब पुलका भी चाहती है करना सफाया ? ॥३६॥

अच्छा, तो मेरे हेत चिता एक सजा दे।
होती हूँ सती, आग तू निज करसे लगा दे॥
इस भाँति सवति-भावको पूरा तो निभा दे।
दुख-सिंधुमें बहती हुईको घाट लगा दे॥
ससारमें फिर तू भी रँडापेका मज़ा देख।
और पूरे सवति-डाहका डंका तू बजा देख" ॥...

"चित्रांगदा ! कुछ तेरी समझमें नहीं आया।
तेरे ही हृदय-मध्य सवति-भाव है छाया॥
उत्तेजना दे बापसे बेटेको लड़ाया।
इस कामसे तुझको ही तो निर्दोष बनाया...
पति-मृत्युसे मुझको भी तो तेरा ही सा दुख है ?
पर तुझको कलंकित करे, वह कौन सा सु...

प्राणेशने जैसा तुझे अपवाद लगा...
फल उसका तुरत बेटेके हाथोंसे च...

बेटेको भी क्षत्रीका परम धर्म सिखाया।
जो धर्म था मेरा, वही सब करके दिखाया॥
अब और भी क्या करती हूँ सो देख ठहर कर।
बे-समझे, महा खेद है क्यों बकती है बर-बर?" ॥३९॥

यों कहते हुए जूड़ेसे मणि एक निकाली।
रण-भूमिसे अर्जुनकी वहीं लाश मँगा ली॥
कर ध्यान सुधा-धामका छातीसे लगाली।
इक तीखी नज़र ग़ौरसे फिर लाशपै डाली॥
घावोंसे छुवाते ही हुए पार्थ प्रथम लाल!
कुछ देरमें उठ बैठे भले-चंगे व खुशहाल! ॥४०॥

अर्जुनहीने यह रत्न अलूपीको दिया था।
कुछ रोज़ मनीपूरमें जब वास किया था॥
संजीवनी-मणि नाम था, अमृतका दिया था।
विष-मृत्युका तम हरनेको अनमोल दिया था॥
बस पार्थके उठते ही मची मोद-बधाई।
पूँछा कि य "चित्रांगदा कैसे यहाँ आई?" ॥४१॥

चित्रांगदाने सत्य सकल हाल सुनाया।
अर्जुनको हुआ मोद, कि तनमें न समाया!
अति प्रेमसे बभ्रूको लपक कंठ लगाया!
"शाबाश! मेरे नामको बस तूने जगाया॥
हो पुत्र तो ऐसा ही हो, और नारि तो ऐसी।
ऐसा न हो यदि, वीरकी तब ज़िन्दगी कैसी?" ॥४२॥

सुत, नारि सहित राज-भवन पार्थ सिधारे।
आनन्द हुआ बापको निज पुत्रसे हारे॥
दिन एक रहे, फिर कहीं अन्यत्र पधारे।
गाथा य कही 'दीन' ने उत्साहके मारे॥
ऐसा ही पिता धन्य है, ऐसी ही सुमाता !
ऐसा ही सुवन रचके बनै धन्य विधाता ! ॥४३॥

अर्जुन सा पिता पुत्रको निज धर्म सिखावै।
निज देह पतन होवै तो हो, धर्म न जावै॥
माता हो अलूपी सी, जो उत्साह बढ़ावै।
वैधव्य हो, पर पुत्र न हत-धर्म कहावै॥
बभ्रु सा सुवन माताके हित युद्ध मचावै।
पड़ जाय कुअवसर, तो पितातकको छकावै ॥४४॥

ऐसे ही पिता, माता, सुवन हिन्दमें हो जायँ।
तो शीघ्र ही इस देशके सब दोष भी धो जायँ॥
दारिद्र सहित दुःख व दुष्कर्म भी खो जायँ।
दल-दीह सहित सारे अमितचार भी सो जायँ॥
संपत्ति बढ़ै और फिरै सुखकी दोहाई।
सब हिन्दमें बजने लगै आनन्द-बधाई ॥४५॥



नोट—यदि आपको 'अभिमन्यु' और 'बभ्रुवाहन' के विकट युद्धोंका पूरा हाल जानना हो, तो हमारा सर्वांग-सुन्दर सचित्र "महाभारत" अवश्य पढ़िये। उसमें रंग-बिरंगे २२ चित्र भी हैं। दाम जिल्द बँधी पुस्तकका ३।) रुपया

आल्हा-ऊदल

करतूत हो जिस मर्दकी हर व्यक्तिको भाती।
सुनते ही उमग उठती हो उत्साहसे छाती॥
भुज-दंडोंको फड़काती हो, ओठोंको कँपाती।
वीरत्वकी लालीसे हो नेत्रोंको रँगाती॥
निज देशमें हर व्यक्तिसे गाथाय कहा दे।
है कौन कृतघ्नी जो भला उसको भुला दे? ॥१॥

वीरत्वसे हो जिसने अचल कीर्ति कमाई।
निज देशको निज शक्तिकी करतूत दिखाई॥
वीरत्वपै रंगत हो नई जिसने चढ़ाई।
निज देशके बच्चोंको हो शुभ-सीख सिखाई॥
उसका ही सुभग यश तो है वाणीका सहारा।
लिखनेमें क़लम मोदसे है मस्त हमारा! ॥२॥

रहते थे महोवेमें जो दो वीर बनाफर।
देवलके युगुल पुत्र थे, परमालके चाकर॥
ऊदल था महावीर तो आल्हा था अमर नर।
था शारदा-देवीका मिला उनको यही वर॥
इन दोनोंकी करतूत सुनाता हूँ तुम्हें आज।
बचपनमें किया दोनोंने वीरत्वका जो काज ॥३॥

माँडामें रहा करता था इक वीर वघेला।
करता था विकट वलसे समर-भूमिमें रेला॥
परमालको 'कर' देता न था एक अधेला।
माहिलने (१) बनाया था उसे अपना सुचेला॥
रण-भूमिमें दसराजको (२) उसने ही तो मारा।
देवलका (३) छिना ले गया इक हार पियारा ॥ ४॥

उस वक्त बहुत छोटे थे देवलके युगुल पूत।
कर सकते न थे युद्धमें वीरत्वकी करतूत॥
देवलके महा दुःखका उस वक्त न था कूत।
पर धीरसे बच्चोंको बनाने लगी मज़बूत॥
जंगलमें लिवा जाती थी आखेट कराने।
हथियार चलाना लगी निज करसे सिखाने! ॥ ५॥

सिखलाती हिरन मारना, रीछोंको भगाना।
दन्तीको दवाना, कभी शूकरको गिराना॥
वाघोंको विकट घातसे वकरोंको बचाना।
सिंहोंका सिरोहीसे भी सत्कार कराना॥
घोड़पै चढ़ाकर कभी नालोंको लँघाती।
दौड़ाते हुए अश्वको पर्वतपै चढ़ाती ॥ ६॥

---

(१) माहिल—राजा परमालका साला, जो बड़ा चुगलखोर था।

(२) दसराज—आल्हा-ऊदलके पिता।

(३) देवल—आल्हा-ऊदलकी माता।

सिखलाती थी तेग़ासे भी चौरंग उड़ाना (१)!
और सैफ़से निम्बूके भी दो टूक बनाना!
भालेसे भी निज माथकी टिकुलीको गिराना!
तीरोंसे भी इक बाल-बँधी लौंग उड़ाना!
दोनोंको बनाती कभी दो फौजोंका नायक।
और आप बना करती थी ऊदलकी सहायक ॥ ७॥

इस तरहसे दोनोंसे रणाभास (२) कराती।
यों वीर-प्रवर होनेकी सब सीख सिखाती॥
आल्हाको दबाकर कभी ऊदलको जिताती।
ऊदलको भगाकर कभी आल्हाको बढ़ाती॥
सब युद्धके करतव्य स्वयं उनको सिखाये।
माताके जो करतव्य हैं, सब करके दिखाये ॥ ८॥

माताहीका कर्तव्य है कुल-धर्म सिखाना।
बालकके हृदय-धामको मनमाना बनाना॥
निज बुद्धिसे हर बातका सब मर्म बताना।
निज धर्मका सब मर्म सहजहीमे सुझाना॥
चाहे तो सुवन अपनेको अमरेश बना दे।
अमरेश तो क्या? चाहै तो उससे भी बढ़ा दे ॥९॥

देवलको तो हम धन्य कहैंगे इसी कारण।
विधवा, थी मगर ख़ूब किया धीरको धारण॥

---

(१) ऊँटके चारो पैरोको एक साथ बाँध देते थे और तलवारके एक ही हाथसे चारों पैरोंको काट डालते थे। इसेही चौरग उडाना कहते है।

(२) **रणाभास**—बनावटी युद्ध, जिसे अगरेजीमें Sham fight कहते है।

कुल-धर्म न छोड़ा, न किया खेद अकारण।
मालिकके भी दुख करती रही बुद्धिसे वारण॥
पुत्रोंको भी कुल-धर्म चतुरतासे सिखाया।
कर्तव्य जो क्षत्रानीका था, करके दिखाया ॥१०॥

माताकी सुशिक्षासे युगुल भ्रात बने यों।
रस-रौद्र-सहित वीर बने चंदके(१) कर ज्यों॥
थे युद्धमें ज्यों वीर तो धर्मज्ञ भी थे त्यों।
फिर हम भी सुयश इनका निडर हो न लिखें क्यों?
सब वीर किया करते हैं सम्मान कलम का।
वीरत्वका यश-गान है, अभिमान कलमका ॥११॥

परमालके दरबारमें दोनोंका बढ़ा मान।
सब दुष्ट जिसे देखके होने लगे हैरान॥
माहिलने विचारा, कि करूँ इनको परेशान।
वश चल न सकेगा मेरा, हो जायेंगे जब ज्वान(२)॥
दुष्टोंकी य पहचान है सतोंने बताई।
वे देख नहीं सकते विभव-वृद्धि पराई ॥१२॥

ऊदलको किसी रोज़ य माहिलने जताया।
"क्या जानो तुम्हें किसने पिता-हीन बनाया?
माताको किया राँड़ सकल माल छिनाया।
तुम वीर बने फिरते हो, धिक्कार है काया!

(१) चन्द—चन्दवरदाई (पृथ्वीराज-रासोकार)
(२) ज्वान—युवा।

यदि वीर हो निज बापका बदला तो चुका लो ।
पितु-शत्रुको हनि दिलकी उमंगोंको निकालो ॥१३॥

क्षत्रीका नहीं धर्म है, बल-हीनको मारै ।
निज गाँवकी गलियोंहीमें वीरत्व बघारै !
पनिघटपे बुरी दृष्टिसे पनिहारी निहारै ।
ढीली सी कसै लाँग अजब माँग सँवारै ॥

ग्रामीण प्रजापर ही सकल शक्ति लगा दे ।
ऊँचोंके घृणा, नीचोंके चित भीति जगा दे ॥१४॥

जिस क्षत्रीने निज बापका बदला न चुकाया ।
पितु-शत्रुको हनि मातुका जियरा न जुड़ाया ॥
जननी व जनमभूमिका अपमान कराया ।
निज वंशका, निज जातिका यश कुछ न बढ़ाया ॥

उस क्षत्रीका होना है, न होनेके बराबर ।
बस जानो उसे एक धरा-भार सरासर" ॥१५॥

यह सुनते ही ऊदलके हुए नेत्र अँगारा ।
"बतलाओ तो किसने है मेरे बापको मारा ?"
माहिलने कहा, "मैंने सुना था सो उचारा ।
निज मातुसे जा पूँछिये वृत्तान्त य सारा" ॥

था दिलमें कपट, "इनको करिंगासे जुझाऊँ ।
स्वच्छन्द महोबामें डटा चैन उड़ाऊँ" ॥१६॥

ऊदलने तुरत जाके स्वमाताको सुनाया ।
"माहिलने मुझे आज अजब भेद जनाया ॥

बतला तो तुझे किसने है यों रौंड़ [illegible]?
किसने है मेरे बापको सुरधाम [illegible]?
बतलाती नहीं तू तो मैं भोजन न करूँगा।
सौगन्द तेरी, [illegible]" ॥८॥
देवलने तुरत भाँप ली माहिलकी [illegible]।
फिर धीर सहित पुत्रको यह बात सुनाई।
"माहिलको नहीं जानता? है गूढ़ [illegible]।
इस हालके सुननेको समैया[2] नहीं आई।
सोला ही बरसकी है अवस्था अभी तेरी।
यह हाल [illegible] ॥९॥
सुनते ही उदयसिंहने [illegible]।
हठ करके विकट क्रोधमें [illegible]।
"बतला दे, नहीं करता हूँ दुनिया [illegible]।
बस 'नाहीं' कही, मैंने [illegible]"।
यह देख, झपट हाथ पकड़ फिर बिठाई।
रोते हुए उदलको [illegible] सुनाई ॥१०॥
"माँड़ोके करिंगाने तेरे बापको मारा।
नौ लाखका इक हार तेरे उरसे उतारा॥
था अश्व 'पपीहा' जो तेरे बापका प्यारा।
था हाथी 'विजयगज' भी सुभग भाग्यका तारा॥

---
(१) चवाई—चुगुल।
(२) समैया—अवसर।

सब लूटके माँड़ामें है आनन्द मनाता।
माहिल है उसे भेद महोबाका बताता" ॥२०॥

सुनते ही उदयसिंहका चेहरा दमक आया।
आँखोंमें दिखाई पड़ी कुछ भौमकी(१) छाया॥
कुछ भौंह तनी ओंठसे दाँतोंको दबाया।
धड़का जो कलेजा तो उठी काँपसी काया॥
माताके युगुल पैरोंपे निज सीस नवाया।
आकाशकी दिशि हाथ उठा बैन सुनाया ॥२१॥

"चाहै कोई दे साथ मेरा चाहै रहै दूर।
ऋण तेरे अमर दूधका चुकता करूँ भरपूर॥
रणखेतमें मस्तक न करिंगाका करूँ चूर।
तो वंश बनाफरपै पड़ै सेर दशोक धूर॥
बोटी जो करिंगाकी न चील्होंको खिलाऊँ।
तो लौट महोबामें कभी मुँह न दिखाऊँ ॥२२॥

फिर अश्व 'पपीहा' जो न पैंड़ामे(२) बँधाऊँ।
और प्यारे 'विजयगज'को न द्वारेपै झुमाऊँ॥
नौ लाखका वह हार न फिर तुझको पिन्हाऊँ।
उस दुष्ट करिंगाको न यम-धाम झुकाऊँ॥
माँड़ाका नगर खोद न गदहोंसे जोताऊँ।
तो लौट महोबामें कभी मुँह न दिखाऊँ" ॥२३॥

---

(१) भौम—मगल-ग्रह।
(२) पैंड़ा—घोड़सार, अस्तबल (बुंदेलखंडी)

फ़ौरन ही निकल घरसे दिया युद्धका डंका।
मलखान व आल्हा भी जुड़े सुनते ही हंका॥
मीराँ भी मिला आके सखा शूर अशंका।
देवा भी तुरत आगया जो वीर था बंका॥
इन पांच युवक-वीरोंने मिल सैन सजाई।
माँड़ापै चढ़े बोलके "जय शारदा माई" ॥२४॥

यह देखके देवलने विकट रूप बनाया।
कंधेपै पड़ी ढाल कड़ाबीन कसाया॥
लटकाया तबर, तेग़ा भी कम्मरसे लगाया।
बिछुवा था छिपा चोलीमें, भाला भी उठाया॥
इस ओर सिरोही थी, उधर किर्च कटारी।
घोड़े पै चढ़ी, साथमें माँड़ाको सिधारी ॥२५॥

कुछ दूरपै माँड़ाके निकट सैन उतारी।
देवलने अजब ढंगसे की रणकी तयारी॥
कुछ वीरोंको व्यौपारी बनाया बड़ा भारी।
उत्तरमें पड़े जाके अजब भेष सँवारी॥
इक भाग पथिक-भेपसे दखिणमें जमाया।
इक योगियोंके भेपसे पच्छिममें टटाया ॥२६॥

फिर पाँचो युवक-वीरोंको योगी सा बनाकर।
और आप भी योगिनका सुभग भेप सजाकर॥
लेनेके लिये भेद सकल ग्राम घुमाकर।
उत्साह भरैं जिससे युवक वीर बनाकर

इक छोटी सी टुकड़ीको लिये ग्राममें आई।

फिर घूमके लड़नेकी सकल घात लखाई ॥२७॥

घुड़सालमें जा घोड़े 'पपीहा'को निहारा।
लखते ही 'पपीहा'के वही आँसुकी धारा॥
फिर जाके 'विजयगज'को लखा धीरको धारा।
वट-वृक्ष लखे फिर न रहा क्रोध सँभारा॥

दसराजकी जब खोपड़ी लटकी हुई पाई।

क्रोधाग्नि भभक चित्तकी बस आँखमें आई ॥२८॥

देवलके विलोचनसे वही अश्रुकी धारा।
यह देखके उन वीरोंने उत्साह सँभारा॥
ऊदलने जो पाया ज़रा आल्हाका इशारा।
क्षत्रीकी तरह दर्पसे यह बैन उचारा:—

"करियाकी खोपड़ियाके जो टुकड़े न उड़ाऊं।

दसराज-सुवन आजसे हर्गिज़ न कहाऊँ" ॥२९॥

मीराँने झपट वाटिका राजाकी उजारी।
की दौड़के आल्हाने 'पपीहा'पै सवारी॥
देवाकी बजी सिंगी विकट नादसे भारी।
मलखानने वह खोपड़ी निज करसे उतारी॥

देवलने उधर खोपड़ी सीनेसे लगा ली।

ऊदलने स्वरक्षाके लिये सैफ़ निकाली ॥३०॥

सिंगीका सुना शब्द हुई सैन भी तैयार।
उस ओर करिंगाने सुने सारे समाचार॥

सेना लिये बस आगया रणखेतमें ललकार।
और गूँज गई खेतमें हथियारोंकी झनकार॥
उस वक़्की हूँ सारी कथा तुमको सुनाता।
भारतके युवक-वीरोंका हूँ दृश्य दिखाता ॥३१॥

देवल थी बनी दुर्गा तो भैरव सा था मलखान।
देवाका व मीराँका भी योंही करो अनुमान॥
तुम चाहते हो करना अगर उम्रकी पहचान।
भीजी हैं मसें, सबको है मूँछोंहीका अरमान॥
आल्हा था षड़ानन तो वटुक-रूप था ऊदल।
दिखलानेको तैयार थे क्षत्रित्वका कस-बल ॥३२॥

उस ओर 'करिंगा' था विकट वीर बघेला।
अति युद्ध-निपुण, करता था रणखेतमे रेला॥
'जम्बा' था विकट वीर लड़ै सौसे अकेला।
था वीर 'अनूपी' जो करै खेतमें हेला॥
'सूरज' था महातेज तो 'रगा' था रँगीला।
'बगा' भी विकट वीर था अत्यंत हठीला ॥३३॥

"इक पुत्र मुसलमानका यों बाग़ उजारै!
इक बाल बनाफरका विजय-चिह्न उतारै!
बच्चा सा बनाफर मेरे पैंड़ामें विहारै!
लै अश्व-पपीहाको सहजहीमें सिधारै!"
इन बातोंको कर याद करिंगा भी हुआ लाल।
और क्रोधके बस बन गया यमराजसा विकराल ॥३४॥

बस होने लगी मार इधरसे भी उधरसे।
सन्नाते हुए तीर निकलने लगे सरसे॥
कोई तो कटा कंठसे और कोई कमरसे।
बस ख़ूनके फ़ौवारे उछलते थे जिगरसे॥
मस्तकपे लगा तीर तो चिग्घारता हाथी।
हय हींसते, चिल्लाते, सबल शब्दसे भाथी(१) ॥३५॥

बस डेढ़ पहर युद्धमें तीरोंकी हुई मार।
और वीर हज़ारों हुए निज धर्मपै बलिहार॥
बढ़ते ही गये आगेको हर ओरके सरदार।
और धूपसे मालूम हुई प्यासकी झंकार॥
था चाटता कोई तो पसीना ही बग़लका।
लेता था कोई रक्तहीसे काम छुजलका! ॥३६॥

हर ओरके वीरोंने यही दिलमें विचारा।
"मरना ही समर-भूमिमे है धर्म हमारा॥
मरता है य वीरोका जथा(२) प्यासका मारा।
तब क्यों न बहा देवैं भला ख़ूनकी धारा?
तलवारके ही घाट तो अब पानी बचा है।
निश्चय ही वही होगा जो ईश्वरने रचा है" ॥३७॥

यह सोचके हर वीरने तलवार निकाली।
बिजली थीं हज़ारों कि सहस जीभकी काली॥

---

(१) भाथी—भाथा, अर्थात् तर्कश बांधनेवाले तीरदाज।
(२) जथा—समूह, झुंड।

उस धूपकी तेज़ीमें चमक आई निराली।
दिखलाई किधौं कालने निज घोर रदाली(१)॥
ली सी चमक देख चकाचौंधसी आती।
जिस ओर नज़र फेरते उस ओर दिखाती ॥३८॥

जिस ओर लपक जाते थे वे वीर बनाफर।
लगते थे बरसने वहीं बूँदोंकी तरह सर॥
छू जाते ही तलवारके था, हंस(२) हवापर।
दोटूक हो रह जाती थी बस देह धरापर॥
लखानकी, आल्हाकी भी, ऊदलकी भी तलवार।
कवि कौन लहै पैर प्रशंसाकी नदी पार? ॥३९॥

बिल्लीकी बची बनके तो गज-भाल कतरतीं।
पावककी बनीं पुत्रिका पैदलको पकरतीं॥
मौसी सी बनीं मौतकी असवारको छरतीं।
काकी सी बनीं कालीकी रण-केलि सी करतीं॥
ीं चूमती तलवा जो इन्हें सीसपै लेता।
जो कंठ लगाता इन्हें बस प्राण ही देता ॥४०॥

कंधेसे लगीं आनमें पाँजरसे हुईं पार।
पैदल हुआ दोटूक तो चौटूक है असवार॥
बिजलीकी बनी बेटीसी करती थीं चिपट मार।
कहनेमें लगे देर, न कटनेमें लगे वार॥

(१) रदाली—दाँतोंकी पंक्ति।
(२) हंस—जीव, प्राण।

सिर छूते ही असवारका थीं तंगके नीचे ।
पैदलका छुत्रा सीस तो थीं रान-दुवीचे ॥४१॥

वस डेढ़ पहर करके महा घोर घमासान।
ऊदलने अनूपीके व सूरजके लिये प्रान॥
आल्हाने भी जम्वाको कराया महा-प्रस्थान।
और काल करिंगाका बना युद्धमें मलखान॥

इस युद्धमें देवलने भी हथियार उठाये ।
'रंगा'के सहित वंगाके वंगासे* उड़ाये ॥४२॥

ऊदलने करिंगाका झपट शीश उड़ाया।
निज क्रोधके आवेशमें भालेसे वँधाया॥
माताके हवाले किया, गढ़ ओरको धाया।
नौ लाखका वह हार भी रानीसे छिनाया॥

निज साथ 'विजयगज'को लिये सैनमें आया ।
अति भक्ति सहित माताके पद शीश नवाया ॥४३॥

फिर अश्व पपीहाके नई नाल जड़ाई।
टापोंसे वहीं खोपड़ी करियाकी फोड़ाई॥
फिर उसकी कतर लोथ भी चीलोंको खिलाई।
खुदवाके गढ़ी माँड़ाकी चौराई वोवाई॥

इस भाँति युवक वीरने निज पनको निबाहा ।
वदला लिया निज बापका, कर शत्रुका स्वाहा ॥४४॥



---

* बंगासे—टुकडेसे ।

अभयचन्द और निर्भयचन्द

इस वक़् फ़तेहपूर जो सरकारी ज़िला है।
उस प्रान्तके वीरत्वका यों हाल मिला है॥
खजुहाके निकट छोटासा अरगलका क़िला है।
वीरत्वका यह पुष्प उसी गढ़मे खिला है॥
गौतम था वहीं एक विकट वीर धराधीश।
रज़ियाका भतीजा था उसी वक़्में दिल्लीश(१) ॥ १ ॥

नव्वाव था उस वक़् अवधका जो इमामी।
धनवान था जितना ही बड़ा, उतना ही कामी॥
रानी थी जो अरगलकी व थी रूपमें नामी।
उस ओर थी नव्वावकी कुछ दृष्टि हरामी॥
गौतमसे विकट वीरसे कुछ वश न था चलता।
रह जाता था नव्वाव सदा हाथ ही मलता ॥ २ ॥

सन पंदरह सौ बीसमे घटना हुई ऐसी।
नव्वाव-अवध चाहता था चित्तसे जैसी॥
गौतमपे हुई शाहकी कुछ दृष्टि अनैसी(२)।
कुशलात कहाँ होती है फिर हीनकी कैसी?

---

(१) नसीरुद्दीन—रजिया वेगमका भतीजा।
(२) अनैसी—बुरी।

आज्ञा हुई नव्वावकी, "गौतमको करो क़ैद" ।
नव्वावने समझा, कि वस अब पूजेगी उम्मेद ॥ ३ ॥

नव्वावने गौतमपै विकट फ़ौज चढ़ाई ।
गौतमने भी मैदानमें की घोर लड़ाई ॥
आख़िरको यवन-सैन सकल मार भगाई ।
वजने लगी अरगलमें विजय हेतु वधाई ॥

वस भागके नव्वावने निज जान वचाई ।
वकसरके* निकट गंगाके तट सैन रचाई ॥ ४ ॥

अरगलके धराधीशकी रानीने विचारा ।
"शंकरकी कृपाहीसे वचा धर्म हमारा ॥
शंकर ही हैं सौभाग्यके हित एक सहारा ।
पूजनके लिये श्रेष्ठ है गंगाका किनारा ॥

गंगामें नहाकर करूँ गौरीशकी पूजा ।
गौरीश सरिस देव नहीं पूज्य है दूजा" ॥ ५ ॥

पूजनके लिये रानीने यों करली तैयारी ।
कुछ संगमें अनुचर लिये वकसरको सिधारी ॥
वकसरहीका उस प्रान्तमें इक घाट था भारी ।
इस हेतु सिधारी वहीं गौतमकी सुनारी ॥

सह सेन इसी ठौर है नव्वावका डेरा ।
मालूम न था. पहुँची वहीं होते सवेरा ॥ ६ ॥

---

* वकसर—जिला फतेहपुरमें गगाके किनारेपर अव भी इस नामका एक मौजूद है ।

इक ओर तो नव्वावका यों डेरा खड़ा था।
बाक़ी बचा लश्कर भी उसी ठौर पड़ा था॥
आजाय न गौतम कहीं, पहरा भी कड़ा था।
गौतमसे विकट वीरका डर दिलमें अड़ा था॥
कुछ बाल-सिपाही लिये कुछ संगमें बाँदी।
कुछ दूरपै फिरने लगी रानीकी मुनादी॥ ७॥

ज्यों भेड़ स्वयं जा गिरे अजगरके उदरमें।
ज्यों जाय स्वयं चन्द्रकला राहुके गरमें॥
ज्यो गाय चली जाय कभी शेरके घरमें।
ज्यो कौड़ी स्वयं जाती है कंजूसके करमें॥
त्योंही तो य अरगलके धराधीशकी नारी।
अनजाने ही नव्वाब-निकट आप सिधारी॥ ८॥

रानीने नहा-धोके सदाशिवको मनाया।
कर जोड़के अति भक्ति सहित शीश नवाया॥
"है धन्य तुम्हैं नाथ! मेरा धर्म बचाया।
हे शंभु! सती-नाथ! तेरी धन्य है माया॥
रक्षा मेरे पति-धर्मकी है हाथ तुम्हारे।
संसारमें तुमही तो हो इक नाथ हमारे" ॥ ९॥

शिव पूजके जब होने लगी घरको रवाना।
देखा, कि तरफ़ तीन है नव्वाबका थाना॥
नव्वाबने निज चित्तमें यह ध्यान था ठाना।
"कुट-पिटके भला लग तो गया ...

अब जाने कहाँ पाती है चंगुलसे निकलकर ?
बच सकती है क्या मक्खी मकड़-जालमें सल कर?" ॥१०॥

जब ज्ञात हुआ घिर गई नव्वाबके दलमें।
रानीकी दशा होगई कुछ और ही पलमें॥
नव्वाबसे कहलाया, कि "कुछ फल नहीं छलमें।
मछली न पकड़ पाओगे बेथाहसे जलमें॥

तू कर न सकेगा मेरे पति-धर्मपै आघात।
औरतसे बिगड़जाता है क्यों अपनी बनी बात? ॥११॥

तू जानता है, हूँ उसी गोतमकी पियारी।
रणखेतमें है जिसने तेरी पाग उतारी॥
शरमाता नहीं चित्तसे तू दुष्ट अनारी!
क्या सिंहनी बन जायगी जंबुककी भी नारी?

यों छेड़ना पर-नारिको वीरोंका नहीं काम।
यदि मर्द है, पति मेरेसे कर डाँटके संग्राम ॥१२॥

पतिसे न चलै दाँव तो पत्नीको सताना।
और बाप करै घात तो बेटेसे भँजाना (१)॥
ये काम हैं वैसे ही कहै जैसे अहाना (२)।
बाँकेसे विवश होवै तो सूधेहीको खाना॥

धोबिनसे विजित धोबीके चित क्रोध जो पैठे।
निज नारिको तज कान गदहियाके उमेठे ॥१३॥

---

(१) भंजाना—बदला लेना।
(२) अहाना—आख्यान, कहावत।

क्या पन्थ मुसल्मानी सिखाता है यही बात ?
'पतिसे न चलै ज़ोर तो पत्नीपै करै घात ?'
क्या इसमें ही है पीर-पयम्बरकी करामात ?
पर-नारिको यों छेड़ना, है काम ख़ुराफ़ात(१)॥
यदि सत्य मुसलमान है, वीरत्व है तनमें।
अबलाको न तू छेड़ अकेले महा वनमें ॥१४॥
यदि चाहता है मुझको तू निज नारि बनाना।
रहकर मेरे सहवासमें रस-रङ्ग मचाना॥
तो चाहिये तुझको न बनै हीन ज़नाना।
वीरोंकी तरह चाहिये वीरत्व दिखाना॥
मैदानमें तू छीन ले गौतमकी जो तलवार।
तलवोंसे तेरे आँख मलूँ मैं भी सहसवार ॥१५॥
जबतक मेरे ख़ाविंदके है, हाथमें तलवार।
वीरत्वका है जिसके मेरे दिलमें अहङ्कार॥
उस वीरका वीरत्व ही है मेरा मददगार।
तबतक न चलै मुझपै तेरा, कोई कुटिल वार(२)॥
दे छोड़ मेरा रास्ता मैं धामको जाऊँ।
मजूर न हो यह तो करामात दिखाऊँ" ॥१६॥
गौतमकी विकट मारसे था खा ही चुका हार।
अब उसकी ही पत्नीसे मिली ज़ोरकी फिटकार॥

---

(१) ख़ुराफ़ात—अनुचित।
(२) वार—आक्रमण।

नव्वावके चित फिर न रहा क्रोधका कुछ पार।
इकबारगी यों कहने लगा ज़ोरसे ललकार॥
"ऐ वीरो! इसे आज इसी ठौर पकड़ लो।
हर चाँदीको ज़ंजीरोंसे मजबूत जकड़ लो" ॥१७॥

सुनते ही यवन-सेन हरइक ओरसे धाई।
बस 'धाओ, धरो, पकड़ो' य आवाज़ थी छाई॥
यह सुनते ही क्षत्रानी भी कुछ क्रोधमें आई।
इक टीलेपै चढ़ ज़ोरसे आवाज़ लगाई॥
सुनते ही जिसे गूँज उठा गङ्ग-किनारा।
क्षत्रित्वकी नस-नसमें बढ़ी खूनकी धारा ॥१८॥

"हे विष्णुपदी मात! तेरे तीरपै आकर।
क्या जीवैगी क्षत्रानी भी निज धर्म गँवाकर?
क्या सो ही गये भूलपती! भङ्ग चढ़ाकर?
दासीको भुलाही दिया यों बात बढ़ाकर?
क्या बूँद भी क्षत्रीके रकतकी नहीं इस ठौर?
हे नाथ! मेरा दोष है क्या? कुछ तो करो गौर ॥१९॥

इस सैनमें यदि हो कोई क्षत्रानीका बच्चा॥
रखता हो जो निज वंशका अभिमान भी सच्चा।
दे आके मदद मुझको, उधर शत्रुको गच्चा॥
है नारिकी इज्ज़तका घड़ा ख़ूब ही कच्चा॥
बस अन्य पुरुषने जो इधर हाथ लगाया।
और होगया जड़से ही उधर उसका सफाया ॥२०॥

इक बूँद भी क्षत्रीका रकत जिसके हो तनमें।
खाया हो नमक क्षत्रीका जिसने किसी पनमें॥
बूढ़ा हो, रकतकी न हो इक बूँद बदनमें।
बच्चा हो, दिये मुख भी हो क्षत्रानीके थनमे॥
क्षत्रानीकी इज्ज़तको बचानेके लिये आज।
उठ दौड़े न सुनते ही वचन, उसपै गिरै गाज ॥२१॥

गोरी तो हो, पर काली बनो बाँदियो! इस ठौर।
और चित्तमे कुछ मेरे नमकका भी करो ग़ौर॥
नव्वाबका भी देख लो बदला हुआ यह तौर।
ऐसा करो, हो जाय अभी औरका कुछ और॥
नारीत्वको अब फेकके कालीत्वको धारो।
मालिकके नमक-बलसे यवन-सेन सहारो ॥२२॥

लो, ध्यान लगा सुन लो, मेरे बाल-सिपाही!
गौतमके लगा चाहती है मुखपै सियाही॥
माताकी तरह मैंने तो निज बानि निबाही।
आने नहीं दी तुमपै कभी कोई तबाही॥
तुमपरसे बहाई है अतुल दूधकी धारा।
दम सोच लो, इस दम्फ़ है क्या धर्म तुम्हारा?" ॥२३॥

सुनते ही वचन बाल युगुल सामने आये।
हो भैरों, बटुक जैसे युगुल रूप बनाये॥
कर जोड़ युगुल रानीके पद शीश नवाये।
ललकारके वीरत्व-भरे बैन सुनाये॥

"क्या ताव है यवनेशकी यों जीतें हमारे।
छू पावे कहीं अङ्गकी छायाको तुम्हारे? ॥२४॥
लो, घोड़ेपे चढ़ बैठो, चलो साथ हमारे।
हम करते हुए चलते हैं यवनोंको किनारे॥
मैं आगे चलूँ, भाई चले पीछे तुम्हारे।
तुम मध्यमें रहकर चलो, पर धीरको धारे॥
'जय कालिका' कहती हुई चोटी चले हर ओर।
जो सामने आजाय, करे घात महा घोर" ॥२५॥
यों कहके अभयचन्दने घोड़ेको बढ़ाया।
रानीने भी निज अश्वको पीछे ही लगाया॥
तब पीछेसे निर्भयने भी निज अश्व उड़ाया।
अरगलका लिया रास्ता, पर दिल था सवाया(१)॥
"जो सामने आजायगा धर देवेंगे धुनकर।
छोड़ेंगे तो वैरीके विनय-वाक्को सुनकर ॥२६॥
माता जो मेरी सत्य ही क्षत्रीकी प्रिया है।
क्षत्रीके रक्तहीसे मुझे जन्म दिया है॥
और मैंने भी क्षत्रानीका यदि दूध पिया है।
और तुमने भी निज पुत्र सरिस पुष्ट किया है॥
है नाम अभयचन्द किसीसे नहीं डरता।
यवनेशकी सेनाको अभी तो हूँ कतरता" ॥२७॥
यों कहते हुए म्यानसे तलवार निकाली।
दाहनने(२) दोहाई दी तो सकुचा गई काली॥

---

(१) सवाया—उमगपर। (२) दाहन—अग्नि।

बिजलीने चकाचौंधसे निज आँख छिपाली।
चकराके गिरी बिल्ली, तो सुरपतिने सँभाली॥
बस देख अभयचन्दकी तलवारकी चमकन।
दिग-नाथ उठे काँप, दबी शुक्रकी दमकन ॥२८॥

तब्बावने ललकारके सेनाको पुकारा।
"दो सिंहके सावक हैं छिनाते मेरा चारा॥
क्या सूझ नहीं पड़ता है, क्या धर्म तुम्हारा?
खा-खाके नमक वक़्पै करते हो किनारा!
धर बाँधो इन्हें, या तो ठिकाने ही लगा दो।
रानीको पकड़ बाँदियोंको दूर भगा दो" ॥२९॥

सुन ऐसे वचन वीर यवन सामने आये।
फ़ौरन ही अभयचन्दने दो चार गिराये॥
दो-चार यवन रानीने यम-धाम पठाये।
निर्भयने भी निज हिस्सेसे दो-चार गिनाये॥
दस पाँचको उन बाँदियोंने मार गिराया।
फिर आगे बढ़े करते हुए पथका सफाया ॥३०॥

आगेसे जो आता, तो अभय सामने लेता।
हर वारका उत्तर भी भली भाँतिसे देता॥
जिस वीरपै करता था झपट वार अचेता।
धड़, धरतीको और प्राण था यमधामको सेता॥
पड़ने भी चले जाते थे, लड़ते भी थे डटकर।
निकले ही समय दूर निकल जाते झपटकर ॥३१॥

पीछेसे यवन कोई अगर घातमें आता।
निर्भय उसे घनघोर समर करके छकाता॥
उस वक्त अभयचन्द क़दम और बढ़ाता।
निर्भय भी समय पाके वहीं आन तुलाता॥
हर दोनों तरफ बाँदियाँ करती थीं विकट मार।
घनघोर समर-भूमिमें शीशोंकी थी बौछार ॥३२॥

इस भाँति अभयचन्द जो बिन मूँछका था ज्वान।
रानीको बचाता हुआ, करता हुआ घमसान॥
बकसरसे निकल ही गया छः कोसके अनुमान।
इतनेहीमें गौतमकी भी कुछ सैन मिली आन॥
यों पाके मदद रानीने चिल्लाके सुनाया :—
"निर्भय व अभयहीने मेरा धर्म बचाया" ॥३३॥

गौतमकी विकट सैनने यवनोंको दबाया।
नव्वाब सहित सैनको अति दूर भगाया॥
अरगलकी तरफ़ रानीने तब पैर बढ़ाया।
निर्भय व अभय दोनोंका यश वीरोंने गाया॥
है धन्य वही वीर जो करतूत दिखावे।
मालिकके लिये प्राणका भय मनमें न लावे ॥३४॥

निर्भयके कई घाव विकट ऐसे लगे थे।
मानो बड़े यमराजके लघु बन्धु सगे थे॥
पर, रानीकी रक्षाके उपायोंमें पगे थे।
इस हेतुसे न प्राण उसके चोलासे भगे थे॥



वीर-बालक "अभयचन्द" और "निर्भयचन्द"

[illegible]

रानीजी सुरक्षित हुईं यवनेश गया भाग ।
यह जानके प्राणोंने भी चोलाको दिया त्याग ॥३५॥
निर्भयके लिये रानीने अति शोक मनाया ।
और उसकी सुमाताका बड़ा मान बढ़ाया ॥
फिर वीर अभयचन्दको छातीसे लगाया ।
मुख चूमके फिर शीशपै अञ्चल भी ओढ़ाया ॥
इस भाँति उसे मानके निज कोखकी सन्तान ।
निज करसे किया रानीने वीरत्वका सम्मान ॥३६॥
निर्भयको नमस्कार है कवि 'दीन' का सौ बार ।
और वीर अभयचन्दको शाबासकी बौछार ॥
इन दोनोंकी जननीको सहस बार नमस्कार ।
है इनकी जनम-भूमिकी रज (१) धन्य सहस बार ॥
हे वीर-प्रवर ! तुम हो मेरे देशके भ्राता ।
इस हेतु मेरे मनमें नहीं मोद समाता ॥३७॥
वीरत्व तुम्हारा सुना दिल जोशमें आया ।
शब्दोंने सफ़ैं बाँध परा (२) अपना जमाया ॥
फौरन ही क़लम-भाला लिये खेतमें आया ।
हर हर्फ़ने सैनिकका विकट वेष बनाया ॥
बस काव्यके मैदानमें सब युद्धका सामान ।
एकत्र हुआ देखके, क्रूरोंके भगे प्रान ॥३८॥

(१) रज—धूल ।
(२) परा—व्यूह ।

है ढाल सरिस बिन्दु* तो हैं किर्चसे काने* ।
बंदूक सी इक-मात*, बहुत हर्फ़ हैं ताने ॥
दो-मात* हैं जुग दरमें सिरोहीके ठिकाने ।
पिच्छूके सहित अग्गू* हैं बस दाँत व बाने ॥
ओंड़ी* है कटारी सी तो लहतुर* है गदा सी ।
लखते ही भभर भागती है दिलकी उदासी ॥३९॥

वीरत्वका सामान इकट्ठा हुआ पाया ।
और देशके अभिमानसे दिल जोशमें आया ॥
रस-वीरका कुछ अंश उचित दिलसे मिलाया ।
निज भाईका यश भाईको यों गाके सुनाया ॥
वीरत्वके यश-गानका है 'दीन' को उत्साह ।
उत्साहहीसे होता है संसारमें निर्वाह ॥४०॥



---

* बिंदु—अनुस्वार ' ' काने—आकारकी मात्रा 'ा'
* इक-मात, दो मात—'ए' और 'ऐ' की मात्रायें—'े' 'ै'
* पिच्छू, अग्गू—'इ' और 'ई' की मात्रायें—'ि' 'ी'
* ओंड़ी और लहतुर—'उ' 'ऊ' की मात्राएँ "ु" "ू"

अभयसिंह और रणजीतसिंह

रस वीरकी घनघोर घटा दिलमें है छाई।
उत्साहकी चपलाने चकाचौंध मचाई॥
शब्दोने भी बक-पाँतिकी आभा सी दिखाई।
रस-वीरके भेदोने त्रिविधि वायु उड़ाई॥
भावोंकी झड़ी लग गई कवि 'दीन' के उरसे।
वाचक इसे चातकसे रटे धूमके छरसे॥१॥

लहराये अगर इसको पढ़े मोदका सागर।
मौजैं सी उठैं चित्तमें उत्साहकी आगर॥
रस-वीरका कुछ आवै मज़ा दिलमें उजागर।
आनन्द लहैं पढ़ते ही ग्रामीण व नागर (१)॥
कवि 'दीन'को जन जानके तब यादमें लावैं।
खुद पढ़के, कसम रामकी, मित्रोंको सुनावैं॥२॥

जब राय पिथौराने समाचार य पाये।
ऊदलके सहित आल्हा हैं कन्नौजमें छाये॥
ब्रह्मा (२) बड़ा अलहड़ है, तो मलखान हैं कोहाये।
परमाल पड़ा रहता है निज हाथ दबाये॥
तब राय पिथौराने यही बात विचारी।
'परमालकी बेटीको बना लीजिये नारी'॥३॥

---

(१) नागर—नगरके रहनेवाले। (२) ब्रह्मा—परमालका पुत्र।

सावनका महीना है, महोबाका है मैदान।
आ ताल-किरितुवा(१) पै डटा शानसे चौहान॥
चौंड़ा भी है, ताहिर भी है, सर्दान भी मर्दान(२)।
परमालकी पुत्रीपै है, चौहानका अरमान॥
सेना है पिथौराकी घटा घोरसी छाई।
उपमा है मेरे चित्तमें इस भाँतिसे आई॥४॥

बादलकी गरज है, कि है धौंसोंकी धुकारन।
भालोंकी चमाचम है, कि बिजलीकी पसारन॥
बक-पाँति उड़ी है, कि है बानोंकी उड़ारन।
कौंधेकी लपक है, कि है किर्चोंकी सँभारन॥
सतरङ्ग पगड़ियाँ हैं, कि है इन्द्र-धनुष ऐन।
हैं वीर बहूटी, कि हैं वीरोंके अरुण नैन॥५॥

त्यौहार सलोनोका(३) सुखद सामने आया।
विप्रोंने महामोदसे उत्साह मनाया॥
जजमानको दे 'राखी' 'चिरञ्जीव' सुनाया।
सामान सहित दान भी जजमानसे पाया॥
विप्रोंको तो थी सूझती सावनकी हरीरी।
चन्देलकी रानीकी छटा हो रही पीरी॥६॥

---

(१) ताल-किरितुवा—महोबाके कीर्तिसागर नामक तालावको साधारणतः किरितुवाही बोलते हैं।

(२) चौंड़ा, ताहिर, सर्दान और मर्दान—ये सब पृथ्वीराज चौहानकी सेनाके नामी योद्धा थे।

(३) सलोनो—रक्षाबन्धनका त्योहार।

"आल्हा नहीं, ऊदल नहीं, यह वक्त कड़ा है।
चौहान लिये सेन किरितुवापै पड़ा है॥
बेटीके लिये आज कठिन पौ य अड़ा है।
डोला न कहीं छीनले, भय इसका बड़ा है॥
त्यौहार मना करके कजलियाँ भी खोटाऊँ।
है घात कठिन, बेटीको मैं कैसे बचाऊँ? ॥७॥
ऊदलने हमें दिलसे भुलाहीसा दिया है।
ब्रह्माने भी सँग चलनेसे इन्कार किया है॥
माहिलने चुगुलख़ोरीका बीड़ासा लिया है।
हा! कैसा कठिन हो गया इन सबका हिया है!
इस ध्यानमें मल्हन(१) थी बनी शोककी मूरत।
देखी नहीं जाती थी बिलखती हुई सूरत ॥८॥
माहिलके युगुल पुत्र जो थे वैसके बारे(२)।
रणजीत, अभयसिंह सुभग नामोंको धारे॥
फूफूके निकट ज्योंहीं सहज भाव सिधारे।
देखा कि अचल बैठी है, निज चित्तको मारे॥
उत्साह नहीं चित्तमें, कपड़े नहीं धानी।
बैठी है मनो हो रही है दुखसे दिवानी ॥९॥
अभईने(३) कहा "आज कजलियोंका है त्यौहार।
फूफूजी! किये बैठी हो क्यों शोकका व्यवहार?

(१) मल्हन—परमालकी रानी। (२) बारे—छोटे।
(३) अभई—अभयसिंह।

चन्द्राको (१) किया ही नहीं तुमने अभी तैयार।
क्या उसको कजलियाँ (२) हमें देनेसे है इन्कार?
हम कैसे बहिन-भाईके अनुरागसे फूले ?
क्या खोंसके कानोंमें, लपक झूलेपे झूलें ?" ॥१०॥

ये भाव-भरे बैन अभयसिंहके सुनकर।
रोने लगी मल्हन, वहीं निज शीशको धुनकर॥
फिर प्रेम सहित भावको निज चित्तमें गुनकर।
यों बोल उठी बैन, बड़े बोधसे चुनकर॥
"भाई हो तो भगिनीको कजलियाँ तो खोंटाओ।
चौहानसे रक्षा करो, आनन्द बढ़ाओ ॥११॥

दसराज-सुवन होते तो त्योहार कराते।
चौहान-सरिस राहुसे चन्द्राको बचाते॥
इस वंशकी मर्याद, सहित हर्ष रखाते।
भगिनीके लिये भाईका अनुराग दिखाते॥
भगिनीके लिये भाईको क्या चाहिये करना ?
करतूतसे दिखलाते, कि 'बस मारना, मरना" ॥१२॥

सुनते ही वचन बोला अभयसिंह कड़ककर।
"हाँ, ऐसा लगा है तुम्हें फूफू जी! विकट डर?
चौहान कलङ्कित करे चन्देलका यो घर!
होना नहीं, जबतक मेरे कंधोपै है यह सर॥

---

(१) चन्द्रा—चन्द्रावती, परमालकी बेटी।
कजलियाँ—जवारा (जौंका पौधा)

चलता हूँ मै रक्षाके लिये साज सजाओ।
त्यौहार सलोनोका भली भाँति मनाओ" ॥१३

रणजीत भी चलनेके लिये होगया तैयार।
सुनते ही ख़बर बाँध लिये फ़ौजने हथियार॥
डोलोंपै चलीं रानियाँ, हर ओर थे सरदार।
चन्दा भी चली मध्यमे सब साजके सिंगार॥

हर डोलेमें चकमक भी थी, बारूद भी थी साथ।
थी विषकी डली जेबमें, ज़हरीली छुरी हाथ ॥१४

थी चित्तमे यदि 'राय पिथौरा'ने सताया।
और सैनके वीरोको अगर काट गिराया॥
परमालकी इज्ज़तपै अगर दाँत गड़ाया।
डोलोंके पकड़नेको अगर हाथ बढ़ाया॥

तो प्राण-पखेरूको उड़ाते न लगै देर।
चौहानके कर आये फ़कत लाशोंका इक ढेर ॥१५

बस देखने लायक़ थी सलोनोकी सवारी।
सरदारोने पोशाक हरी शौक़से धारी॥
हर नारिने थी तनपै सजाई हरी सारी।
ज़ेवर भी थे पन्नोंके, जो थे मोलके भारी॥

रनवासके डोले हरे परदोंसे मढ़े थे।
सब राजकुँवर घोड़ोंपै सब्ज़ोंपे चढ़े थे ॥१६

डोलोंके कहारोंकी भी पोशाक हरी थी।
था छत्र हरा, चौर हरी, सब्ज़ छरी थी॥

थे सब्ज़ कमरबन्द तो ढाली भी हरी थी।
तलवार हर एक वीरकी ज्यों सब्ज़परी थी॥
थे शीशपे दोने भी कजलियोंके हरे रङ्ग।
होते थे जिन्हें देखके, पन्नोंके भी दिल दङ्ग ॥१७॥

धरतीपै तो लहराती थी धानोंकी कियारी।
कुछ ऊँचेपै लहराती थी हर नारिकी सारी॥
सिरपर भी कजलियोंकी लहर डोलती भारी।
लहराते थे जी ज्वानोंके सुन राग मल्हारी॥
यह जानके उपमा है मेरे ध्यानमें आती।
सुरपतिको धरा अपनी उमगें थी दिखाती ॥१८॥

सुरपतिको धरा अपनी उमंगें थी दिखाती।
चौहानके भयसे थी किधौं काँपती जाती॥
या भूमि अभयसिंहकी हिम्मत थी बढ़ाती।
या युद्धसे हट जानेकी थी सैन जनाती॥
या आप महोबाकी धरा क्रोधसे भरकर।
चौहानसे लड़नेको लपकती थी उभर कर ॥१९॥

हर ओर नज़र आती थी बस ऐसीही हलचल।
प्रत्येक सुघर व्यक्ति हरा और सुचञ्चल॥
कवियोंने था इस प्रश्नको इस भाँति किया हल।
श्यामा है चली श्यामपै, लहराता है अञ्चल॥
या झूमती पृथ्वी है सुने तान मल्हारी।
या आई किरितुवाके निकट जम्बु-कुमारी (१) ॥२०॥

जम्बु-कुमारी—जमुना।

माहिलने उधर जाके पिथौराको जनाया।
"चन्दाके हड़प लेनेका मौक़ा भला आया॥
मल्हनने है चन्दाको किरितुवापै पठाया।
रक्षामें है दो बालकोंको सङ्ग लगाया॥
कुछ सैन उधर भेजके निज काम निकालो।
धमकाके भगादो उन्हें, चन्दाको छिना लो" ॥२१॥

चौहानने यह सुनते ही चौंड़ाको पठाया।
और टङ्कके नरनाथको भी सङ्ग लगाया॥
सर्दनको भी, मर्दनको भी, सूरजको बोलाया।
और सबको भली भाँतिसे उत्साह दिलाया॥
"रंजितको(१) अभयसिंहको घुड़कीसे भगाना।
परमालकी बेटीको पकड़ साथमें लाना" ॥२२॥

सबने यही समझा था, कि घुड़कीसे डरैंगे।
लड़के हैं, भला ज्वानोंसे क्या रार करैंगे?
चौंड़ाकी सुने घुड़की कहाँ धीर धरैंगे?
टंकेशकी ललकारसे दमभर न अरैंगे॥
डोलेका छिना लेना है ज्यों भातका खाना।
या जैसे, कि चुम्बकके लिये लोह उठाना ॥२३॥

चौंड़ाने झपट आगे अभयसिंहको टोंका।
"जाते हो कहाँ वीर! लिये सङ्ग महोफा(२)॥

(१) रँजित—रणजीतसिंह।
(२) महोफा—नाजनी।

आता है नज़र आज कोई रङ्ग अनोखा।
या मेरी नज़रहीको हुआ है कोई धोखा?
इस डोलेमें है कौन ज़रा मुझको बताओ।
तब होके अभय आगे क़दम अपना बढ़ाओ" ॥२४॥

"क्या तुमको नहीं ज्ञात, कि है मास य सावन?
और आज है त्यौहार सलोनोंका सोहावन॥
भगिनीके लिये होता है त्यौहार य भावन।
भाई भी प्रकट करता है निज प्रेम सुपावन॥
चन्द्रावली जाती है कजलियोंको सिराने।
भगिनी है मेरी, जाता हूँ मैं उसको रखाने" ॥२५॥

"शाबाश! बड़े वीर हो सब सत्य बताया।
रक्षा करै आफ़तसे तुम्हारी महामाया॥
पर, हमको पिथौराने है इस हेतु पठाया।
लें छीन य डोला, करैं रक्षकका सफ़ाया॥
डोला हमें दो, लौटके तुम घरको सिधारो।
बालक हो अभी, लड़के न निज वंश बिगारो" ॥२६॥

"हाँ! आप पिथौराके कोई वीर हैं भारी?
आये हैं यहाँ छीनने भगिनीको हमारी?
कर आये हो लड़नेकी भी सब भाँति तयारी।
इस हेतुसे हो रोकते सावनकी सवारी?
पर, याद रखो, मुझको भी माहिल न समझना।
है नाम अभयसिंह, समझ-बूझ उलझना ॥२७॥

जबतक मेरे भुजदंडमें है रक्तका संचार।
और हाथ चला सकता है इक काठकी तलवार॥
कंधोपै मेरे शीश है और दिलमें रकत-धार।
हिलनेकी सकत बाक़ी है, कर सकता हूँ कुछ वार॥
तबतक तो किसी वीरको डोला नहीं दूँगा।
यमराज भी आजायँ तो मैदान करूँगा॥२८॥

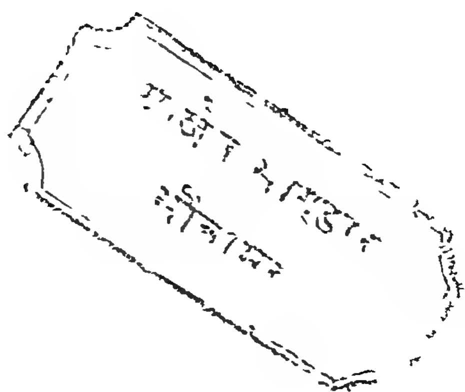
बालक हो समझ आये हो तकरार बढ़ाने?
लज्जा नहीं, लड़कोंसे चले डोला छिनाने!
अच्छा, अभी हो जायँगे सब होश ठिकाने।
मालूम नहीं तुमको हैं, वीरत्वके थाने॥
या करमें सिरोही नहीं, या तनमें नहीं सर।
अब बात अगर करना तो बस पीछे ही हटकर॥२९॥

मैं एक ही चौहानकी क्या बात बताऊँ।
योद्धा भी हों चौहान, तो कुछ दिलमें न लाऊँ॥
चौबीस हों योद्धा, तो अभी काट बहाऊँ?
ताहिर भी हो यदि तीस, तो तत्काल गिराऊँ॥
जीते ही असम्भव है, डोलेको छिनाना।
सीनाका है चढ़ाके लिये हाथ बढ़ाना॥३०॥

दिल्ली नहीं, यह ग्राम महोबाकी धरा है।
पलते हैं यहाँ जिनमें, कि वीरत्व भरा है॥
हर धूलके कणिकामें यहाँ जोश भरा है।
मरनेका यहाँ खौफ़ किसीको न ज़रा है॥

माताकी, बहिन-बेटीकी लज्जाको रखाना ।
समझे हैं यहाँवाले इसे वीरका बाना ॥३१॥
जननीका, जनम-भूमिका सम्मान बढ़ाना।
बेटी व बहिन, धेनुको सब भाँति रखाना॥
खुद आके भिड़े उसको भी करतूत दिखाना।
दीनोंको सतावै उसे यमधाम झुँकाना॥
विप्रोंका, बड़े-बूढ़ोंका सत्कार कराना ।
इसको ही समझते हैं यहाँ, वीरका बाना ॥३२॥
बस आपमें यदि बल है, तो तलवार निकालो।
दो-चार छः-दश वार प्रथम मुझपै चलालो॥
पहले तो मेरे हाथसे हथियार गिरालो।
या मेरी सिरोहीकी ज़रा धार फिरालो॥
तब शौक़से इस डोलेपै निज हाथ लगाना ।
आसान नहीं सिंहके शावकको सताना" ॥३३॥
यह कहके अभयसिंहने तलवार निकाली।
होने लगी दोनोंमें कटाछान* की पाली॥
अभईने जो घाली उसे चौंड़ाने बचाली।
चौंड़ाने चलाई उसे अभईने उछाली॥
बन पड़ता था लखते ही अभयसिंहका उत्साह ।
यह शक्ति नहीं, लेखनी लिख कर करे निर्वाह ॥३४॥

इस * निशानवाले शब्द तलवारके हाथो और तोडोके नाम हैं। जो लोग रीतिसे गदाफरीका अभ्यास करते है, वे बखूबी समझ सकते हैं।





वीर-बालक 'अभयसिंह' और 'रणजीतसिंह'।

थी हाथ तमाँचेका* तो रपटनसे* बचाते ।
थी हूल* तो इक पैतरा पीछेको हटाते ॥
भंडारेके* हाथोंको कसरकससे* बहाते ।
और चीरके* हाथोंमें उछल-कूद मचाते ॥
गिरवानके* हाथोंको गुलूबंदसे* रोका ।
सरतोड़के* वारोंमें दिया बालका झोंका ॥३५॥
लठबंधके* हाथोंको रपटवानसे* झेला ।
बगलीके* विकट वारमें था दूमका* रेला ॥
फिर हाथ करौंटीका* बहालीसे* ढकेला ।
हिरदौलके* वारोंको गड़पतानसे* ठेला ॥
रुस्तम भी अगर देखता अभईकी कटाछान ।
"शाबाश अभयसिंह !" य कह उठता उसी आन ॥३६॥
इस ओर अभयसिंहने चौंड़ाको छकाया ।
रंजीतने सूरजका उधर शीश उड़ाया ॥
टंकेशसे रणधीरको यम-धाम झँकाया ।
यह देखके ताहिरको पिथौराने पठाया ॥
ताहिरका भी होने लगा रण-खेतमें सत्कार ।
हर ओर विकट घूमके भरने लगी तलवार ॥३७॥
ताहिर था मुसलमान विकट वीर महा शूर ।
तलवारके फ़नमें था चतुर-चूड़ व मशहूर ॥
रंजित व अभय लड़के थके-माँदे थे भरपूर ।
बस फलके लिये जाना पड़ैगा न तुम्हें दूर ॥

तुम आप समझ सकते हो इस युद्धके फलको ।
अनुमानसे तौलो तो युगुल ओरके बलको ॥३८॥

ताहिरसे भिड़े वीर युगुल ज़ोरसे ललकार ।
ताहिर भी लगा करने सँभल-सोचके तलवार ॥
रंजीतने ताहिरपै किये घूमके कुछ वार ।
पर, सकता है कर कैसे थका वीर विकट मार ?

गिरवानसे रजीतका सर धड़से उड़ाया ।
और देके तमाँचा किया अभईका सफाया ॥३९॥

पृथ्वीपै पड़े मुंड युगुल कहते थे ललकार,—
"शाबाश! बड़ी तेज़ है, ताहिर! तेरी तलवार" ॥
और रुंड युगुल घूमसे करते थे विकट मार ।
जिस ओर झपट जाते उधर पड़ता हहाकार ॥

इन रुंडोंने विना मुंड किये दममें बहुत ज्वान ।
गिरते हुए पूरे किये अपने दिली अरमान ॥४०॥

हे वीर अभयसिंह! तुम्हें धन्य सहसवार ।
रंजीत ! तुम्हारे लिये शाबासकी बौछार ॥
भगिनीको बचानेमें बहाई जो रक्त-धार ।
कवि कौन है, जो पैरके कर जाय उसे पार ?

सब हिन्दकी बहिनोंको जो भाई मिलै ऐसे ।
फ़ौरन ही निकल जायें दिवस इसके अनैसे ॥४१॥

ब्रह्माने सुना हाल तो दौड़ा चला आया ।
उत्साह सहित आके विकट युद्ध मचाया ॥

सर्दनको व मर्दनको तुरत काट गिराया।
चौंड़ाको भी चकराया तो ताहिरको तपाया॥
इतनेहीमें ऊदल भी वहाँ आन पधारे।
आये तो, मगर रूप थे वैरागीका धारे ॥४२॥
थे साथमे ऊदलके कई वीर लड़ाके।
धनुआ* व लला† बाल-सखा साथ थे बाँके॥
लाखन भी थे मौजूद, जो थे वीर बलाके।
बस बाँध लिये दौड़के हर ओरसे नाके॥
और करके विकट मार सकल दलको भगाया।
त्यौहार सलोनोका भली भाँति कराया ॥४३॥



*धनुआ—यह वीर, जातिका तेली था।
(†)लला—यह वीर जातिका तमोली था।

तुम आप समझ सक्ते हो इस युद्धके फलको ।
अनुमानसे तौलो तो युगुल ओरके बलको ॥३८॥

ताहिरसे भिड़े वीर युगुल ज़ोरसे ललकार।
ताहिर भी लगा करने सँभल-सोचके तलवार॥
रंजीतने ताहिरपै किये घूमके कुछ वार।
पर, सकता है कर कैसे थका वीर विकट मार?

गिरवानसे रंजीतका सर धड़से उड़ाया ।
और देके तमाँचा किया अभईका सफाया ॥३९॥

पृथ्वीपै पड़े मुंड युगुल कहते थे ललकार,—
"शाबाश! बड़ी तेज़ है, ताहिर! तेरी तलवार"॥
और रुंड युगुल घूमसे करते थे विकट मार।
जिस ओर झपट जाते उधर पड़ता हहाकार॥

इन रुंडोंने विना मुंड किये दममें बहुत ज्वान ।
गिरते हुए पूरे किये अपने दिली अरमान ॥४०॥

हे वीर अभयसिंह! तुम्हैं धन्य सहसवार।
रंजीत! तुम्हारे लिये शाबासकी बौछार॥
भगिनीको बचानेमें बहाई जो रकत-धार।
कवि कौन है, जो पैरके कर जाय उसे पार?

सब हिन्दकी बहिनोंको जो भाई मिलै ऐसे ।
फौरन ही निकल जायें दिवस इसके अनैसे ॥४१॥

ब्रह्माने सुना हाल तो दौड़ा चला आया।
उत्साह सहित आके विकट युद्ध मचाया॥

सर्दनको व मर्दनको तुरत काट गिराया।
चौंड़ाको भी चकराया तो ताहिरको तपाया॥
इतनेहीमें ऊदल भी वहाँ आन पधारे।
आये तो, मगर रूप थे वैरागीका धारे ॥४२॥
थे साथमे ऊदलके कई वीर लड़ाके।
धनुआ* व लला† बाल-सखा साथ थे बाँके॥
लाखन भी थे मौजूद, जो थे वीर बलाके।
बस बाँध लिये दौड़के हर ओरसे नाके॥
और करके विकट मार सकल दलको भगाया।
त्यौहार सलोनोका भली भाँति कराया ॥४३॥



* धनुआ—यह वीर, जातिका तेली था।
(†) लला—यह वीर जातिका तमोली था।



तीसरा रत्न

वीर-क्षत्राणी

क्षत्रीका परम धर्म है रण-खेल मचाना।
रणभूमिमें मरना है तुरत स्वर्गमें जाना॥

भगवानदीन।

तारा

थी "चैत्रके चन्दा सी" मगर नाम था 'तारा'।
विदनौरके श्री 'सेन' सहित 'सूर'(१) की कन्या॥
बन्नाससे ले टोंकतलक राज्य था जिसका।
मङ्गल था चहूँ ओर, शनिश्चरका न डर था॥
ज्ञानी थे बृहस्पतिकी तरह राज्यके अमला।
कवियोंकी तरह युक्तिमें प्रख्यात था राजा ॥ १॥
क़िस्मतके उलट-फेरसे कुछ राज्यका हिस्सा।
दिल्लीके शहंशाह अलादीनने दावा॥
कुछ और भी हिस्सेको इक अफ़ग़ानने हड़पा।
और टोंकमें फहराने लगा अपनी पताका॥
लला (२) ने लिया टोंक तो मजनूंसे हुए 'सूर'।
दब जाता है ज्यों राहुसे चंदा कभी भरपूर ॥ २॥
लड़का जो था, ले सकता न था बापका बदला।
कन्या थी यही एक, जिसे कहते थे 'तारा'॥

---

(१) ताराके पिताका नाम 'श्री सूरसेन' था।

(२) लैला—उस मुसलमानका नाम था, जिसने सूरसेनसे टोंक छीन लिया था।

सब राज्य गया, बच रहा विदनौर अकेला।
इस हेतु दुखी और विमन रहता था राजा॥
ताराकी थी उस वक्त बरस दसकी अवस्था।
क्या सक्ती थी कर? उसका किया होताही क्या था?॥३
पर, बापका दुख देख य की उसने प्रतिज्ञा।
'वापस न लूँ यदि राज्य तो वस व्यर्थ है जीना'॥
उस दिनसे लगी सीखने हथियार चलाना।
घोड़ेकी सवारीहीमें मुग्दर भी हिलाना॥
और बाँक, पटा सीख, बनेठीके सिखे हाथ।
लड़केकी तरह बापके रहती थी सदा साथ॥४
कुछ रोज़में बढ़कर हुई जब षोड़शी बाला।
चेहरेपै चमक आई, हुआ हुस्न दुबाला॥
सब अङ्ग भरे, पूरे बने काम-अखाड़ा।
राजोंके कुँवर करने लगे ब्याहकी इच्छा॥
तब ठानो, कि "बस ब्याहूँगी उस राज-ललाको,
लैलाको बधै, राजा करै मेरे पिताको"॥५
जयमलने सुनी ऐसी ये ताराकी प्रतिज्ञा।
कहलाया, कि "मैं पूरी करूँगा तेरी इच्छा"॥
ताराने भरी हामी, तो जयमल चला आया।
रहने लगा विदनौरमे कर ब्याहकी आशा॥
करने लगा तैयारी, कि "लैलाको गिराऊँ।
मजनूँ हूँ मैं जिसका, उसे फिर कंठ लगाऊँ"॥६

इक रोज़, कि जब शर्त ये पूरी न हुई थी।
शादीकी भी कुछ रस्म ज़रूरी न हुई थी॥
तैयारी भी सेनाकी अधूरी न हुई थी।
जयमलसे व तारासे हुज़ूरी न हुई थी॥
जयमलने कहीं तारासे कुछ प्यारकी बातें।
और साथ ही करने लगा मनुहारकी घातें ॥ ७ ॥

ताराने कहा, "अबकी क्षमा करती हूँ तुझको।
हे राजकुँवर! 'प्यारी' न कहना अभी मुझको॥
जबतक, कि मेरी शर्तको तुम पूरी न कर लो।
और व्याहमे यह हाथ मेरा तुम न पकड़ लो॥
तबतक तुम्हे वाजिब नहीं यों प्यार जताना।
अब आगेसे इस शब्दसे मुझको न सताना" ॥ ८ ॥

ताराका कथन उसके न कुछ दिलमें समाया।
समझा, कि य है प्रेमका इक भाव जताया॥
फिर एक समय वैसेही कुछ प्रेम जनाया।
ताराने वहीं खड्गका इक हाथ जमाया॥
बस धड़से जुदा होके गिरा मुंड वहींपर।
और रुंड तड़पने लगा इक ओर जमींपर ॥ ९ ॥

जयमलका सगा भाई पृथ्वीराज य सुनकर।
भाईके लिये शोकसे निज शीशको धुनकर॥
ताराके किये कामको निज ध्यानसे गुनकर।
क्षत्रीकी तरह वीर-उचित क्रोधसे भुनकर॥

ताराको चला व्याहने कर शर्तको पूरी।
है मर्द वही शर्त जो छोड़े न अधूरी ॥१०॥

थी वीर पृथीराज उधर वातका सच्चा।
इस ओर भी ताराका कलेजा न था कच्चा॥
यह जानके बस बापने शुभ व्याह रचाया।
आनन्द-सहित शूरको शूरासे मिलाया॥

मण्डपहीके नीच हुई सौगन्द उसी छन।
लैलाको वधे विन न छुटे व्याहका कंकन ॥११॥

दूल्हाने सजी सेन तो दुलहिन भी बनी नर।
हथियार सजे आगई निज घोड़ेपै चढ़कर॥
थी मास मुहर्रमकी व तारीख़ मुक़र्रर।
जिस रोज़ शवेक़त्लकी होती है भराभर॥

बस ऐसे ही मौकेपै चढ़ी टोंकपै तारा।
जिस वक्त गनीमोंने(१) है हस्नैनको(२) मारा ॥१२॥

सब फ़ौजको दो कोसकी दूरीपै खड़ी कर।
तारा व पृथीराज चले घोड़ोंपै चढ़कर॥
कंधेपै पड़ी ढाल, कमरमे खुँसा ख़ंजर।
भाले थे रकावोंमें पड़े, जाँघपै जमधर॥

सीनेपै तवा हाथमें दोनोंके कड़ाबीन।
तलवारें सिरोहीकी लगीं जीनसे दो तीन ॥१३॥

---

(१) गनीमों—शत्रुओ।
(२) हस्नैन—मुहम्मद साहेबके नवासे—हसन और हुसैन।

इस शानसे जा पहुँचे जहाँ गोल जुड़ा था।
लैला भी सखा साथ लिये पास खड़ा था॥
हर ओरसे 'हा, हाय, हसन!' शोर पड़ा था।
इस मौक़ेपै इन दोनोंका साहस भी कड़ा था॥
इस ओरको पिछले, कभी उस ओरको धाये।
जा अन्तमें लैलाके निकट घोड़े डटाये॥१४॥

इन दोनो सवारोकी जो थी क्रोध-भरी शान।
बस देखके लैलाने किया जल्द ही अनुमान॥
'क्षत्री हैं बिगड़कर कहीं कर बैठें न घमसान।'
बुलवाके पुलिसवाले कड़े चार-छः अफ़ग़ान॥
उनसे कहा, "इन दोनों सवारोंको हटा दो।"
कुछ और बुला ज्वान मेरे पास डटा दो॥१५॥

बस शब्द 'हटादो' का पड़ा कानमें जिस दम।
मुखड़ा हुआ ताराका विकट क्रोधसे तमतम॥
आँखोसे झड़ी आग, फड़क उट्ठीं भुजा ख़म।
घोड़ेपै सँभल बैठो, कहा, "जाते हैं अब हम"॥
ली खैंच सिरोही व इधर एँड़ लगाई।
बिजलीसे भी कुछ बढ़के करामात दिखाई॥१६॥

लैलापै किया वार तो सिर धड़से उड़ाया।
घोड़ेको दपट ज़ोरसे शहवार भगाया॥
हुंकारसे खाविंदको "बस भागो" जताया।
जो सामने आया, किया बस उसका सफ़ाया॥

इस भाँति लपक शीघ्र शहर-द्वारपै आई ।
द्वारेपै अड़ा मस्त पड़ा पील दिखाई ॥१७॥
यह देख दशा ताराने जब पीछेको ताका ।
देखा, कि पृथीराज चला आता है दौड़ा ॥
है पीछे लगा उसके सवारोंका रिसाला ।
इस ओरसे हाथीने लिया रोक है रस्ता ॥
अरदबमें है खाविंद ये ताराने विचारा ।
रुख फेरके चट पायेसे भालेको निकाला ॥१८॥
सन्नाटेसे मस्तकपै दिया पीलके भाला ।
यह देख पृथीराजने भी खाँडा निकाला ॥
और दोनोंने इकदम जो किया पीलपै धावा ।
बस पीलने समझा, कि किया सिंहने हमला ॥
ताराने सिरोहीसे छपक सूँड़ उड़ाई ।
दाँतोंकी पृथीराजने कर डाली सफाई ॥१९॥
इस कष्टसे हाथी जो चमक चौंध चिघारा ।
निज प्राण बचानेके लिये ज़ोरसे भागा ॥
मस्तकसे महावत भी टपक भूमिपै आया ।
और दोनोंने इस भाँति खुला मार्ग जो पाया ॥
रपटाके बछेड़ोंको मिले फ़ौजमें जाकर ।
सब रह गये अफ़ग़ान वहीं कान दबाकर ॥२०॥
सब फ़ौज लिये फिरसे किया टोंकपै धावा ।
अफ़ग़ानोंने समझा, कि ये है कोई छलावा ॥



वीर-झलाणी "तारा"

"ललाटसे मस्तक पे दिया पीलके भाला & यह देख पृथीराजने भी खाँडा निकाला।"

सरदार मरा, पील कटा, और दल आया।
ताराकी विकट फुर्तीने यों सबको छकाया॥
हिम्मत न रही दिलमें, करै कौन लड़ाई ?
बस फिर गई ताराकी नगर-बीच दोहाई ॥२१॥

अफ़ग़ानोंका बल तोड़ नगर टोंक छिनाया।
आनन्द-सहित बापको नरनाह बनाया॥
संसारमें क्षत्रीत्वका सन्मान बढ़ाया।
हिम्मतसे जो होता है वह सब करके दिखाया॥
यह सत्य है सब हिन्दका इतिहास बताता।
समझै न कोई, मैं हूं निपट बात बनाता ॥२२॥

जिस हिन्दमें हो गुज़री हैं इस ओजकी कन्या।
उस हिन्दके बीरत्वका कहना है भला क्या?
पर अब तो नज़र आता है कुछ रङ्ग सा बदला।
हर मर्द बना जाता है भयभीत सी अबला॥
टीली सी बसैं लोग अजब मांग सँवारे !
फसै जो कहीं बिल्ली तो नौकरको पुकारे ॥२३॥





औरत हो रहे मर्दका नित रूप बनाये।
इस भाँति, कि कोई भी ज़रा जान न पाये॥
पुरुषोंके रहे साथ सदा शस्त्र चढ़ाये।
रण-भूमिमें जा-जाके भी कुछ हाथ दिखाये॥
दो-तीन बरसतक, य सुगम बात नहीं है।
कह सकता है यह कौन करामात नहीं है? ॥१॥

पर, एक सहस आठ सदी आठके सन्‌में*।
ऐसी ही हुई बात है भूपालके वनमें॥
लिक्खी हुई है बात ये इतिहासके तनमें।
आई न कभी थी जो उपन्यासके मनमें॥
जो शख्स न मानै वह ज़रा जाँच भी कर ले।
सच कहता हूं,या झूठ है, दिल अपना भी भर ले ॥२॥

भूपालके जङ्गलमें था इक गाँव ज़रा सा।
रजपूत वहाँ रहता था इक वीर कड़ा सा॥
लड़नेके लिये रहता था हर वक्त उपासा।
समझे था लड़ाईको फ़क़त वीर-तमाशा॥

---

* १८०८ ई०

भूपालके राजाका रहा था कभी चाकर।
बूढ़ा हो रहा करता था निज धाममें आकर ॥३॥

था पुत्र फ़क़त एक जिसे कहते जुरावर*।
कन्या थी यही जिसने किया वंश उजागर॥
माताने इसे पाला था छातीसे लगाकर।
रहता था सुखी बाप इसे गोद खिलाकर॥

थोड़में गुज़र करते थे ये चार जने मिल।
सब दुःख मिटा देता है सन्तोष-भरा दिल ॥४॥

सीधोंको सदा ढूँढ़के टेढ़ोंसे हराना।
सच्चोंका महा झूठोंसे अपमान कराना॥
अच्छोंका बुरे हाथोंसे सन्मान घटाना।
धर्मोंको अधर्मोंके भी आधीन बनाना॥

है चाल यही कालकी, धीरोंको सताना।
वीरोंकी भी औलादको यों दुःख दिखाना! ॥५॥

पर कालने निज चाल यहाँपर भी चलाई।
माताकी तथा बापकी कर डाली सफ़ाई॥
बाक़ी रहा सोला ही बरसका सगा भाई।
पन्नापै ये घनघोर घटा दुःखकी छाई॥

बलिहारी समयकी, कि ज़रा भी न तरस की।
आफ़त ये पड़ी, पन्ना थी जब ढाई बरसकी ॥६॥

---

*इनका असल नाम 'जोरावरसिंह' था, पर प्यारसे सब लोग 'जुरावर' या 'जुरौरा' ही कहते थे।

वह थोड़ा सा धन वापने जो कुछ था वचाया।
लड़केने मृतक-कर्ममें चुपचाप लगाया॥
हा! वाप मरा, माता गई, धन भी गँवाया।
इस धर्मने वस हिन्दका कर डाला सफ़ाया॥
भगिनी थी वहुत छोटी जुरावर भी था वालक।
इस हालमें ईश्वरके सिवा कौन था पालक? ॥७॥

निज धर्म समझ भाईने भगिनीको सँभाला।
मेहनतसे कमाई की, वड़े प्यारसे पाला॥
कुछ क़र्ज़ भी ले-लेके कभी काम निकाला।
पन्नाको नहीं होने दिया कष्ट-कसाला॥
ला देता खिलौने, कभी कपड़े, कभी गहने।
सुख-शान्तिसे खेले, वड़े आनन्दसे पहने ॥८॥

सह कष्ट, वड़े प्रेम सहित पाला वहिनको।
दस वर्षकी कर दी, नहीं छोड़ा कभी छिनको॥
वाहर कहीं जाता, कभी दो-चार-छः दिनको।
ले जाता उसे साथ सहमता न था किनको॥
पन्नाको समझता था सदा वन्धु वरावर।
सव धर्म सिखाये उसे क्षत्रीके सरासर ॥९॥

घोड़ेपै चढ़ाता, कभी हथियार सिखाता।
दौड़ाता कभी, साथमे कसरत भी कराता॥
रोटी भी कराता, कभी पानी भी भराता।
सव काम गृहस्थीके, सहित-प्रेम वताता॥

यों भाईकी शिक्षासे चतुर हो गई बाला ।
घर थाम, घटाने लगी भाईका कसाला ॥१०॥

भाई व बहिन दोनो बड़े प्रेमसे रहते ।
आती जो मुसीबत तो बड़े धीरसे सहते ॥
इक-एकसे सब बात बड़े नेहसे कहते ।
यो भूल-भुला कष्ट सदा मोदको लहते ॥
ईश्वरने दिया था उन्हें उस नेहका प्याला ।
जिस नेहसे संसारमें होता है उजाला ॥११॥

ऐसे ही बहिन-भाई जो सब हिन्दमे हो जायँ ।
भारतके सकल दुःख मिनट-मात्रमें खो जायँ ॥
सौभाग्य जगै हिन्दका, सब कष्ट भी सो जायँ ।
धन-शक्ति बढ़ै, हिन्दके सब पाप भी धो जायँ ॥
आनन्द उमड़ सिन्धु सा लहरावै सभी ओर ।
जय रामकी, जय धर्मकी सब ओर उठै शोर ॥१२॥

कुछ रोज़में जब और सयानी हुई पद्मा ।
हर बात समझने लगी, सुनने लगी चरचा ॥
भाईको बड़े क़र्ज़में डूबा हुआ पाया ।
हर रोज़ किया करते थे कुछ लोग तक़ाज़ा ॥
"मेरे लिये भाई मेरा क़र्ज़में फँसा है ।"
पद्माके यही ध्यान कलेजेमें धँसा है ॥१३॥

इस ध्यानसे पद्माको सदा रहती थी चिन्ता ।
इस हेतु सभी चित्तसे अकुलाती थी पद्मा ॥

"मैं कैसी करूँ, जिससे कि ऋण-मुक्त हो भ्राता"।
चेहरेपै झलकती कभी इस सोचकी आभा॥
पर भाईको अपने न कभी सोच जताती।
हो उसको उदासी तो जुगुत करके मिटाती ॥१४॥
ऐसा हुआ इक रोज़ कि इक साहु घर आया।
'ऋण मेरा पटा दो अभी' यह बोल सुनाया॥
दो-चार बुरे वाक्य कहे, क्रोध दिखाया।
पद्माने उसे मीठेसे वचनोंसे बुझाया॥
"काकाजी दिया जायगा ऋण आपका सारा।
क्यों करते हो इस भाँतिसे अपमान हमारा?" ॥१५॥
कुछ दिनसे उसी साहुने भूपालमें जाकर।
दरबारमें फ़रयाद की राजाको सुनाकर॥
मँगवाया जुरावरको पकड़ क़ैद कराकर!
डलवाया उसे जेलमें यों वन्दी बनाकर॥
इस साहुका, हा! कैसा था बेदर्द कलेजा!
था एक सहारा, उसे यों जेलमें भेजा! ॥१६॥
इस वक़्तकी हालतपै ज़रा ध्यान तो दीजै।
पद्माकी दशा कैसी है, अनुमान तो कीजै॥
ब्याही नहीं, परिवार नहीं, कौन पसीजै?
इस भाँतिकी आफ़तमें कहो कौन न छीजे?
अबलाने मगर धीरसे हिम्मत नहीं हारी।
'ऋण देके छुटा लूँगी' यही बात विचारी ॥१७॥

मर्दाना किया भेष, लिया हाथमें नेज़ा।
आरम्भ जवानी थी उछल उट्ठा कलेजा॥
काँधेपै पड़ी ढाल कमरमें कसा तेग़ा।
झालीमें बँधी साँग, लटकता था तमञ्चा॥
फिर नाम बदल अपना पद्‌मसिंह रखा था।
चल सेंधियाकी सैनमें निज नाम लिखाया ॥१८॥

नायकने क़वायदमें जो पन्नाको थहाया।
सब भाँतिसे पन्नाका हुनर ठीक ही पाया॥
बन्दूक़का गोलीसे निशाना भी उड़ाया।
घोड़ेपै चढ़ी, भालेसे खूँटा भी उखाड़ा॥
नायक भी हुआ दंग, कि यह कैसा युवा है?
इन्सान है, या देव है, या कोई बला है? ॥१९॥

उस वक़्त वहाँ सेंधिया* दौलतका था दौरा।
अङ्गरेज़ोंसे चलता ही रहा करता था झगड़ा॥
पन्नाको पड़ा तीन बरस युद्धमें रहना।
उस वक़्तके कर्तव्यकी क्या बात है कहना?
दस बार विकट युद्धमें हथियार चलाया।
जो सामने आया, उसे यमलोक दिखाया ॥२०॥

दो बार लगी रानमें बन्दूक़की गोली।
हाथोंसे कसी पट्टी, कभी उफ़् नहीं बोली!

---

* श्रीमान्दौलतरावजी सेंधिया उस समय राजा थे।

"मैं कैसी करूँ, जिससे कि ऋण-मुक्त हो भ्राता"।
चेहरेपै झलकती कभी इस सोचकी आभा॥
पर भाईको अपने न कभी सोच जताती।
हो उसको उदासी तो जुगुत करके मिटाती ॥१४॥

ऐसा हुआ इक रोज़ कि इक साहु घर आया।
'ऋण मेरा पटा दो अभी' यह बोल सुनाया॥
दो-चार बुरे वाक्य कहे, क्रोध दिखाया।
पद्माने उसे मीठेसे वचनोंसे बुझाया॥
"काकाजी दिया जायगा ऋण आपका सारा।
क्यों करते हो इस भाँतिसे अपमान हमारा ?" ॥१५॥

कुछ दिनमें उसी साहुने भूपालमें जाकर।
दरबारमें फ़रयाद की राजाको सुनाकर॥
मँगवाया जुरावरको पकड़ क़ैद कराकर!
डलवाया उसे जेलमें यों बन्दी बनाकर॥
इस साहुका, हा! कैसा था बेदर्द कलेजा!
था एक सहारा, उसे यों जेलमें भेजा! ॥१६॥

इस वक्तकी हालतपै ज़रा ध्यान तो दीजै।
पद्माकी दशा कैसी है, अनुमान तो कीजै॥
ब्याही नहीं, परिवार नहीं, कौन पसीजै?
इस भाँतिकी आफ़तमें कहो कौन न छीजै?
घबलाने मगर धीरसे हिम्मत नहीं हारी।
'ऋण देके छुटा लूँगी' यही बात विचारी ॥१७॥

मर्दाना किया भेष, लिया हाथमें नेज़ा ।
आरम्भ जवानी थी उछल उट्ठा कलेजा ॥
काँधेपै पड़ी ढाल कमरमें कसा तेग़ा ।
डालीमें बँधी साँग, लटकता था तमञ्चा ॥
फिर नाम बदल अपना पदुमसिंह रखा था ।
चल सेंधियाकी सैनमें निज नाम लिखाया ॥१८॥
नायकने क़वायदमें जो पद्माको थहाया ।
सब भाँतिसे पद्माका हुनर ठीक ही पाया ॥
बन्दूक़का गोलीसे निशाना भी उड़ाया ।
घोड़ेपै चढ़ी, भालेसे खूँटा भी उखाड़ा ॥
नायक भी हुआ दंग, कि यह कैसा युवा है ?
इन्सान है, या देव है, या कोई बला है ? ॥१९॥
उस वक़्त वहाँ सेंधिया* दौलतका था दौरा ।
अङ्गरेज़ोंसे चलता ही रहा करता था झगड़ा ॥
पद्माको पड़ा तीन बरस युद्धमें रहना ।
उस वक़्तके कर्तव्यकी क्या बात है कहना ?
दस बार विकट युद्धमें हथियार चलाया ।
जो सामने आया, उसे यमलोक दिखाया ॥२०॥
दो बार लगी रानमें बन्दूक़की गोली ।
हाथोंसे कसी पट्टी, कभी उफ़् नहीं बोली !

---

* श्रीमान् दौलतरावजी सेंधिया उस समय राजा थे ।

हिम्मतसे किया करती थी कायरकी ठठोली।
"साड़ीको पहन नारी बनो, बाँध लो चोली॥
"चूड़ी लो पहन हाथमें और नाकमें वेसर।
मिस्सी मलो दाँतोंमें लगा गालमें केसर" ॥२१॥

दो-तीन दफ़ा युद्धमें मौक़ा भला आया।
संकटके समय फ़ौजके नायकको बचाया॥
जी होमके घमसानमें हथियार चलाया।
ललकारके वीरोंको ग़ज़ब जोश दिलाया॥
हमलेको हटा शत्रुका दल मार भगाया।
इस भाँति हवलदारका पद शीघ्र ही पाया ॥२२॥

रहती थी जवानोंमें सदा मर्दकी नाईं।
पर भेद न पाता था कोई ऐसी थी चाईं॥
सब लोग समझते थे, कि मूँछें नहीं आईं।
मकुना* है पद्मसिंह हवलदार पछाईं॥
कुछ ऐसे भी थे, करते थे सन्देह निराला।
वे मूँछका यों ज्वान कभी देखा न भाला ॥२३॥

देखा न कभी उसको किसीने भी नहाते।
भोजन ही बनाते, न कभी भोग लगाते॥
पेशाव व पाखानेको मैदानमें जाते।
गर्मीमें कभी नंगे बदन नींदमें माते॥

* मकुना—विना मूँछोंका।

ये काम सभी होते सदा आड़में होकर।
कोई न फटक पाता कभी डोड़में होकर ॥२४॥
इन बातोंसे सब लोगोंको सन्देह था भारी।
क्यों सबसे इसी ज्वानकी सब रीति है न्यारी?
नीची ही नज़र रखता है क्या बात विचारी?
क्या मर्द नहीं, ख्वाजा है, या है कोई नारी?"
पर युद्धमें हैं काम किये वीर-वरोंके।
यों कान भी काटे हैं वड़े शूर नरोंके ॥२५॥
रज-युक्त वसन त्यागके बालूमें दबाते।
घोड़ेको भी नहलाके नदी-तीर फिराते॥
एकान्तमें भय त्यागके जल-केलि मचाते।
दिन एक कहीं दूर नदी-तीर नहाते॥
निज दलके किसी एक सिपाहीने लखा सब।
और कह दिया कप्तानसे यह भेद खुला तब ॥२६॥
कप्तानने सन्ध्याके समय पास बुलाकर।
सन्मानसे बैठाल बहुत प्यार जताकर॥
जो कुछ कि सुना था वही सब बात सुनाकर।
सच बात बतानेकी भी सौगन्द दिलाकर॥
पूछा जो सकल हाल तो पद्माने सुनाया।
"भाईकी मुसीबतने ये सब मुझसे कराया" ॥२७॥
"शाबाश! जियो बेटी! तुम्हे धन्य है सौ बार।
मैं जाके सुनाता हूँ ये सब कैसरे-दरबार॥

महराजसे दिलवाता हूं धन तुझको कई भार।
भाईकी रिहाईका भी करता हूँ कुछ उपचार॥
महाराजकी आज्ञाहीसे भूपालकी सरकार।
आशा है, कि दे छोड़ उसे, औ करे सत्कार" ॥२८॥

कप्तानने जा हाल ये दौलतको सुनाया।
उसने भी अधिक प्यारसे पन्नाको बुलाया॥
पन्नाने भी सब हाल यथातथ्य बताया।
भाईके महाप्रेमको सौ बार सुनाया॥
कर याद बड़े भाईकी निज नेह-कहानी।
भर आया गला, आँखोंसे झरने लगा पानी ॥२९॥

सुन सत्य-कथा राजाका हियरा उमग आया।
भूपालके दरबारको इक पत्र लिखाया॥
क़ैदीको छुड़ाकर उसे निज पास बुलाया।
आनन्द-सहित भाईको भगिनीसे मिलाया॥
यों नेहके नाते जो हों मजबूत जगतमें।
क्या शै है बला, कष्ट न हो लेश बिपतमें ॥३०॥

कप्तानने पन्नाको तो निज बेटी बनाया।
अच्छेसे युवा क्षत्रीसे शुभ व्याह रचाया॥
राजाने जुरावरको जमादार कराया।
'रनवासकी ड्योढ़ीपे रहो' हुक्म लगाया॥
और अच्छेसे इक वंशमें शादी भी करा दी।
घर देके, सभी वस्तु गृहस्थीकी भरा दी ॥३१॥

था भाईने भगिनीको बड़े प्रेमसे पाला।
फिर जेलसे भगिनीने भी भाईको निकाला॥
दोनोंका रुचिर प्रेम लगा रामको अच्छा।
दुख मेटके दोनोंको दिया प्रेमका बदला॥
संसारमें सच पूछो तो बस प्रेम अछर है।
जो प्रेमसे भीगा न हो, वह नर नहीं खर है ॥३२॥

इस प्रेमने संसारमें क्या क्या न कराया?
सीताके लिये रामको वन-वनमें फिराया॥
रीछोंसे, कपीशोंसे अगम सिन्धु बँधाया!
क्षत्रीके विकट क्रोधसे ब्राह्मणको जलाया॥
दुनियामें जो कुछ सार है, वह है यही सत्प्रेम।
निर्वाह भी होता है, जो कर जाने कोई नेम ॥३३॥

हे राम! दयाधाम! सदा दीनके दानी!
भारतकी दशा दीन है, सब आपकी जानी॥
मौक़ा नहीं, यह कौन लिखै राम-कहानी?
है 'दीन'की कर जोड़के यह अर्ज़ ज़बानी॥
पद्मा सी बहुत भेज दे इस हिन्दमें नारी।
सब काम बनै, जगमें रहै कीर्त्ति तुम्हारी ॥३४॥



कलावती

थी हिन्दकी यह भूमि अजस्र वीर-प्रसूती।
हो गुज़री हैं नारी भी जहाँ वीर अकूती॥
दुष्टोंने यहाँ खाई है अबलाओंकी जूती।
है आजतलक उनकी बनी कीर्ति अछूती॥
पर, अब तो अपुन्सत्वकी है बोलती तूती।
अबलाओंकी क्या, नर भी बने जाते हैं लूती ❀ ॥१॥

इस हिन्दमें हो गुज़री हैं कुछ ऐसी भी नारी।
मर्दोंकी तरह युद्ध किये हैं बड़े भारी॥
दुश्मनकी बड़ी फ़ौज है निज हाथसे मारी।
रणभूमिमें जाकर नहीं पिछली हैं पिछारी॥
ख़ाविन्दके गिरनेसे भी साहस नहीं छोड़ा।
निज देशके हित रणसे कभी मुँह नहीं मोड़ा ॥२॥

वीरत्वमें, धीरत्वमें, पति-प्रेममें आला।
इस हिन्दमें हो गुज़री हैं लाखों ही सुबाला॥
उनमेंसे है यह एकका कुछ हाल निराला।
सुननेमें जिसे होता है यों दिलमें उजाला॥

❀ लूती—हजरत लूत मुसलमानोके एक पैगम्बर हुए हैं। उनके समयमें प्रजाके बहुत बुरे थे। उन्हीं बुरे आचरणोंकी ओर यह इशारा है।

ज्यों रात अँधेरीमें निशा-नाथकी छाया।
भरपूर प्रकाशै, हरै तमतोमकी माया ॥ ३ ॥

ख़िलजी था अलादीन (१) जो दिल्लीका शहंशाह।
हो मस्त रजोगुणमें भुला दी थी सुगम राह ॥
था चाहता वह हिन्दकी सतियोंसे करे व्याह।
था रूपका वैरी, न था पति-प्रेमका निर्वाह ॥
चित्तौरकी पद्मावती-हित धूल उड़ाई।
जलताही रहा डाहसे, पर ख़ाक न पाई ॥ ४ ॥

रजथानमें (२) था एक करणसिंह महावीर।
सन्तोष सहित भोगता इक छोटी सी जागीर ॥
था न्यायमें गम्भीर, बड़ा युद्धमें रण-धीर।
रैयत भी उसे मानती थी जैसे गुरू-पीर ॥
सहधर्मिणी थी उसकी कलावती कहाती।
गुण-रूपका भंडार थी, वीरत्वमें माती ॥ ५ ॥

चित्तौरसे जब शाहको कुछ हाथ न आया।
मन मारके ख़ुद आप तो दिल्लीको सिधाया ॥
सेनाके महावीरोंको यह हुक्म लगाया।
"मन-माना करो हिन्दुओंके धनका सफ़ाया ॥
यदि लूटमें मिल जाय कोई नारि भली सी।
पहुंचाना मेरे पास छ्टती ही कली सी' ॥ ६ ॥

---

(१) अलादीन—अलाउद्दीन ख़िलजी।

(२) रजथान—राजपूताना।

वहुतोंने सुना था, कि करणसिंहकी नारी।
थी रूपमें पद्मासे तनक योंही पिछारी॥
जो फ़ौज थकी थी, सो तो दिल्लीको सिधारी।
इक फ़ौजके नायकने यही वात विचारी॥
"जाते तो हैं, कुछ चलते समय ज़ोर दिखा लें।
लड़ जाय अगर भाग्य, तो कुछ हाथ लगा लें" ॥ ७

यह सोच करणसिंहकी जागीरपै टूटा।
रैयतको सताया, किसी सरदारको कूटा॥
कुछ बाँधे, वहुत काटे, किसी वैश्यको लूटा।
तीतरके समूहोंमे हो, ज्यों वाज़सा छूटा॥
यों ज़ेर-ज़वर करते करणसिंहने सुनकर।
पठवाया सँदेशा यही निज न्यायसे गुनकर ॥ ८॥

"जो कहना हो, मुझसे कहो, रैयतसे न वोलो।
यह धर्म है वीरोंका, इसे ध्यानमे तोलो॥
जो गाँठ हो दिलमे, उसे वीरत्वसे खोलो।
मद-मस्त अँधेरेमे न यों राह टटोलो॥
जव मैं न करूं आपका सम्मान यथायोग।
तव मेरी प्रजा पावै मेरे कर्मका यों भोग" ॥९

यह सुनके संदेशा कहा, यवनेशने ललकार।
"जा कह दे करणसे, कि मुझे नारि है दरकार॥
या दै दे मुझे नारि, नहीं आके करै रार।
देखी नहीं चित्तौरकी क्या उसने विकट मार?

वस क्रोधसे मेरे न करणसिंह बचैगा।
खायेगा बड़ी मार जो परपञ्च रचैगा" ॥१०॥

यह बात सुने क्रोध करणका उमड़ आया।
'फ़ौरन ही सजै सैन' यही हुक्म लगाया॥
अधरातको सरदारोंको निज पास बुलाया।
'क्या चाहिये करना', यही बस प्रश्न सुनाया॥
रानी तो नहीं दूँगा, चाहैं राज्य हो बरबाद।
रैयतके सतानेका चखाऊँगा उसे स्वाद" ॥११॥

सरदार भी थे वीर, लगे कहने, कि "महाराज!
दम रहते तो हम होने नहीं देवैंगे यह काज॥
यह तुर्क तो क्या, आवैं अगर आपही यमराज।
हम टूट पड़ैं जैसे गिरै हाथीपै बनराज॥
क्षत्रीका परम धर्म है वह रणमें करै मार।
वैरीको न दे अश्व तथा नारि वा तलवार" ॥१२॥

होते ही सवेरा हुई सब फ़ौज भी तैयार।
रण-बानेसे सज आ गये जागीरके सरदार॥
वस वीर करणने भी सजे अङ्गपै हथियार।
उत्साहसे चेहरेपै दमक आई चमकदार॥
आँखोंसे विकट क्रोधकी ज्वाला थी लपकती।
यमराजकी भी आँख जिसे देख झपकती ॥१३॥

सब छोड़ अलङ्कार तजे वस्त्र ज़नाने।
सैनिकका किया भेस सजे युद्धके बाने॥

तलवार, कड़ाबीन कसे ठीक ठिकाने।
भाला व तबर, तीर लिये ज़हरके साने॥
घोड़ेपै चली संग करणसिंहके रानी।
रण-भूमिमें पति-सेवाकी थी दिलसे दिवानी ॥१४॥

दल दोनों जुड़े, होने लगी मार विकटकी।
वीरोंको हुआ हर्ष, कुमति क्रूरकी सटकी॥
पाई जो कहीं घात, वहीं उसपै झपटकी।
बौछार परी तीरोंकी, तलवार भी खटकी॥
भालोंकी सनासनमें तबर बोले छपाछप!
'ठाँ' बोली कराबीन, तो खजरने कहा 'गप' ॥१५॥

लोथोंपै गिरीं लोथैं, वही ख़ूनकी धारा।
तब वीर करणसिंहने तुर्कोंको प्रचारा॥
"क्यों हटते चले जाते हो? क्या दिलमें विचारा?
बढ़ि आगे करो युद्धमें परितोप हमारा॥
हो वीर पुरुष, पीछे क्यों हटते चले जाते?
हम जानते ऐसा, तो कभी रणमें न आते" ॥१६॥

ललकार सुने वीर यवन जोशमें आये।
बढ़-बढ़के करणसिंहपै हथियार चलाये॥
सब वार करणसिंहने भरपूर बचाये।
यवनोंके कई वीर भी रण-सेज सोवाये॥
इस तरहके घमसानमें क्या किसको खबर थी?
सेना कहाँ, सरदार कहाँ, नारि किधर थी? ॥१७॥

पर, वीर करणसिंहकी पत्नी भी अजब थी।
खाँड़ेकी लड़ाईमें चतुर, धीर ग़ज़ब थी॥
उसके ही सती-भावकी करतूत य सब थी।
हिम्मत य भला वर्ना करणसिंहमे कब थी?
दिलीशकी सेनासे भिड़े जोश दिखा कर।
कुछ करके दिखादे, उसे हथियार उठाकर ॥१८॥

दवसटमें(१) पड़े वीर करण घाव लगे चार।
घोड़ेसे गिरे भूमिमें, बस हो गये बेकार॥
पत्नीने जो निज आँखोसे देखा य समाचार।
बस क्रोधसे जल-भुनके वहीं हो गई अंगार॥
खाविन्दको(२) उठवाके तुरत दूर पठाया।
ललकारके निज सैनको यह बोल सुनाया ॥१९॥

"हाँ, वीरो! ख़बरदार न हिम्मतको हराना।
तज वीरके बानेको न बन जाना ज़नाना॥
क्षत्रीका परम धर्म है रण-खेल मचाना।
रणभूमिमे मरना है तुरत स्वर्गमे जाना॥
पीछे जो हटा उसको मैं दो खंड करूँगी।
आओ, बढ़ो संग मेरे, मैं रण-चंड करूँगी" ॥२०॥

यो कहके बढ़ी आगे, बड़े जोशमे भरकर।
रानीपै निछावर किये सब वीरोंने निज सर॥

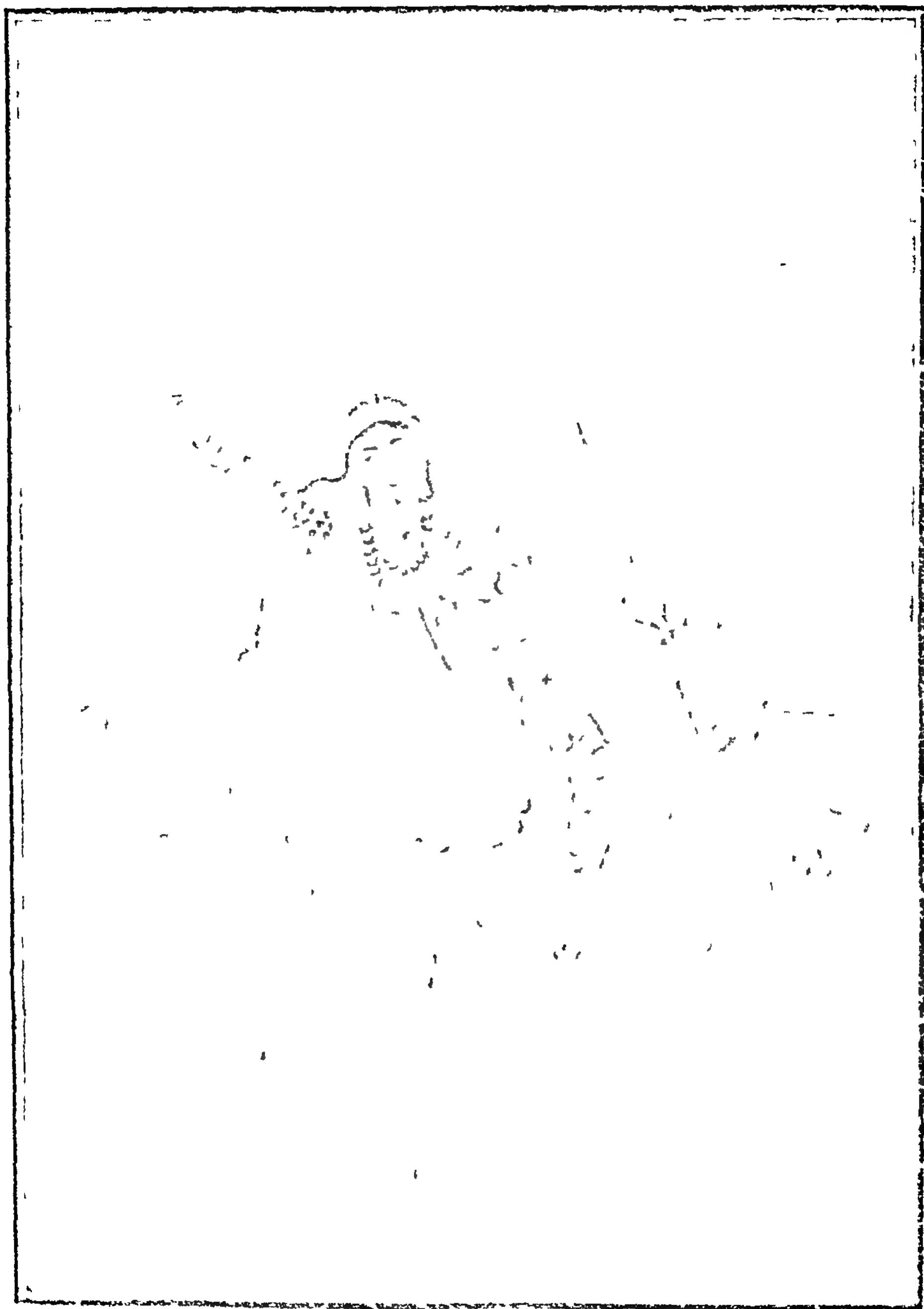
(१) दवसट—दो तरफकी दाव।
(२) खाविन्द—पति।

घोड़ेपै चढ़ी जाती जिधर झटसे चपरकर।
धर देती उधर सैकड़ोंके शीश कतरकर॥
चण्डी सी बनी फिरती थी रण-भूमिमें धाई।
फट जाती थीं यवनोंकी सफ़े, जैसे कि काई ॥२१॥

इक हाथ तबर एकसे तलवार घुमाती।
दाँतोंमें लिये बागको थी अश्व चलाती॥
जाती थी लपककर जहाँ सरदारको पाती।
बस एक झपाटेमें उसे मार गिराती॥
यों सात यवन-सेनके सरदार मिटाये।
तुर्कोंकी बड़ी फौजके यों होश उड़ाये ॥२२॥

सरदारोंके गिरतेही भगी फ़ौज भराभर।
रानीकी ग़ज़ब मारसे सब काँपे थराथर॥
उखड़े जो जमे पैर, तो दस जय है बराबर।
'महरानीकी जै' गूँज उठा शोर सरासर॥
रानीने झपट शाही पताका भी छिनाई।
फिरने लगी रण-भूमिमें रानीकी दोहाई ॥२३॥

यों वीर यवन-सेन सभी मार भगाई।
उठवाके करणसिंहको निज धाममें लाई॥
वैद्योंको बुला घावोंकी जब जाँच कराई।
वैद्योंने लखे घाव तो यह बात सुनाई॥
"जहरीले हो हथियारोंके सब घाव हैं माता !
मालिकपै समझ पड़ता है, रूठे हैं विधाता ॥२४॥



इन घावोंके भरनेकी फ़क़त एक दवा है।
कर सकता है वह कौन? य सन्देह बड़ा है॥
उस युक्तिके करनेमें करैयाकी क़ज़ा है।
है कौन जो निज प्राणकी रक्षाको न चाहे?
इन घावोंको चूसै कोई निज प्राण गँवावे।
तो राजाको यमराजके फंदेसे छोड़ावै" ॥२

"पति-क्षेमके हित नारि जो निज प्राण चढ़ावै।
संसारमें निज वंशकी मर्य्याद बढ़ावै॥
आनन्दसे वैकुण्ठमें सुख-चैन उड़ावै।
सन्मान सहित अन्तमें निज स्वामीको पावै॥
है बात य सब कहते धरम-शास्त्र हमारे।
इक रोज़ तो मरना ही है टरता नहीं टारे ॥२

मर जायेंगे राजा तो मैं ही राँड़ रहूँगी!
इस प्राण-पियारेका विरह कैसे सहूँगी?
मैं प्रेमसे 'प्राणेश' भला किसको कहूँगी?
वैधव्यसे संसारका सुख कौन लहूँगी?
मरनेसे मेरे हानि न कुछ राज्यकी होगी।
पति मेरे तो हो जायेंगे आनन्दके भोगी" ॥२

यों सोच, लिये चूस सभी घाव व्रणके!
उद्योग किये साँचेसे, पति-कष्ट-हरणके॥
दृढ़ ठान लिये ठाट सभी अपने मरणके।
सिरके लिये निज प्राण भी निज नाथ चरणके॥

हे नारि पति-प्राणा! तुझे धन्य सहस बार।
इस 'दीन'के स्वीकार करो कोटि नमस्कार ॥२८

"मेरे लिये रण करके वली शत्रु भगाये।
विष चूसके प्यारीने मेरे प्राण बचाये॥
मेरे ही लिये प्यारीने निज प्राण गँवाये"।
इक दाससे राजाने समाचार य पाये॥
"हा प्यारी!" य कह पेटमें ली हूल कटारी!
हे प्रेम! है महिमा तेरी संसारमें भारी ॥२९

यों प्रेम परस्परका जो हर दिलमे समावे।
सुर-लोकका आनन्द इसी लोकमें आवे॥
हरएक भवन इन्द्रके वैभवको लजावे।
इक झोपड़ी नन्दनका(१) सदा दृश्य दिखावे॥
दम्पतिहीके शुभ प्रेमसे संसारका सुख है।
विन प्रेमके सम्पत्ति-विभव दुःख ही दुख है ॥३०

जिस हिन्दमें हो गुज़री हैं इस भाँतिकी नारी।
दुश्मनसे करै युद्ध, दिली प्रेम हो भारी॥
उस हिन्दके पुरुषोंकी है किस हेतु य ख्वारी(२)?
दुश्मनके खखारेसे डरैं, फूटसे यारी!
इन बातोंको दिल देके ज़रा सोचो, विचारो।
तब देश-सुधारक बनो ऐ हिन्दके प्यारो ॥३१॥

---

(१) नन्दन—इन्द्रका बाग

(२) ख्वारी—हीनता।

वीराबाई

राना थे उदयसिंह जो चित्तौरके नामी ।
जब ईश-कृपासे हुए सब राज्यके स्वामी ॥
तब वंशके गौरवको भुला बन गये कामी ।
राजत्वको तज करने लगे काम-गुलामी ॥
सांगाके विमल वंशमें यह दाग लगाया ।
चित्तौरका सम्मान भी सब धोके बहाया ॥ १ ॥

रजपूत हो जो कोई बनै कामका चेरा ।
तज वंशकी मर्याद करे काम अनेरा ॥
रहता नहीं उस देहमें वीरत्वका डेरा ।
साहसका भी होता नहीं उस चित्तमें फेरा ॥
तन-सिंधुमें उठती हैं सदा काम तरंगें ।
उठ सकती हैं कैसे भला रण-रङ्ग उमंगें ? ॥ २ ॥

इक नारि नवेलीने, जिसे कहते थे 'वीरा' ।
था छीन लिया रानाके मन, बुद्धिका हीरा ॥
वीरत्वके दिखाके लिये बन गई कीरा ।
कर डाला उदयसिंहको ज्यों होता है खीरा ॥
फरमाती जो कुछ, करते उदयसिंह वही काम ।
कुछ ध्यान न था, डूबे हैं बस हो बदनाम ॥ ३ ॥

इस बातसे सब राज्यके सामन्त विमन थे।
मन्त्री भी दुखी, सैन शिथिल, सुस्त सुजन थे॥
परिवार सकल और प्रजागण न मगन थे।
बस राज्यके हित चिह्न ये असमयके सुमन थे॥
घनघोर विपति आनेके सब ओर थे लच्छन।
बस आ ही पड़ा कष्ट महा घोर भी तत्छन॥ ४॥

अकबरने जो चित्तौरका सब हाल य जाना।
चित्तौरके लेनेपै हुआ दिलसे दिवाना॥
'निज करसे करूँ क़ैद मैं चित्तौरका राना'।
सँग सैनके ठहराया स्वयं अपना ही जाना॥
मुग़लोंकी विकट फौजने चित्तौरको घेरा।
अकबरने भी जा डाला समर-भूमिमें डेरा॥ ५॥

अकबरने यह सोचा था, कि "रानाको हराऊँ।
'वीरा' को पकड़ प्रेमसे निज कण्ठ लगाऊँ॥
चित्तौरको निज राज्यका इक प्रान्त बनाऊँ।
इस भाँति सकल हिन्दमें निज हाँक जमाऊँ॥
बस फिर तो सभी राजा मेरे पैर पड़ेंगे।
चित्तौर-विजेतासे भला कैसे लड़ेंगे?" ॥ ६॥

चित्तौरमें मुग़लोने दिया युद्धका डङ्का।
कायर थे उदयसिंह, बढ़ी चित्तमें शङ्का॥
कामी भी कहीं सकते हैं सह वीरोंके हङ्का?
शृङ्गार सदा मानता है वीर अतङ्का॥

ा]

हराया उदयसिंहने गढ़ छोड़के भगना ।
निज वंशकी मर्यादको मुँह मोड़के ठगना ॥७॥

पर, राज्यके कुछ ऐसे नमकख्वार थे प्राचीन ।
चित्तौरको जो देख न सकते थे पराधीन ॥
समझाया उदयसिंहको हो-होके बहुत दीन ।
"घबराइये मत, हूजिये मत चित्तसे यों छीन ॥

सरदार बनो, साथ चलो, युद्ध करेंगे ।
दम रहते न हम आपकी रक्षासे टरेंगे ॥८॥

सांगाके विमल वंशका यों नाम धराना ।
इकलिङ्गजी भगवान्‌का परिहास कराना ॥
चित्तौरसे शुचि-दुर्गपै यवनोंको फिराना ।
सतियोंके निवासोंको कसवियोंसे भराना ॥

क्षत्रित्वको है मानो महा नीच बनाना ।
रघुवंशके वीरत्वको चुल्लूमें डुबाना" ॥९

यों सुनके उदयसिंहको कुछ जोश सा आया ।
अकबरसे उमग भिड़नेका सामान सजाया ॥
कुछ सोच-समझ युद्धसे कुछ बल भी दिखाया ।
पर अन्तमें दिल तोड़के निज कुलको लजाया ॥

अकबरसे चतुर वीरके बन्दी हुए राना ।
लज्जित हुआ सांगासे विकट वीरका बान

पर अन्य सुवीरोंने विकट मार मचाई ।
मुगलोंकी चली कोटपै चढ़ने नहीं पाई'

संध्या हुई, फिरने लगी रजनीकी दोहाई।
चित्तौरके महलोंमें घटा शोककी छाई॥
अब कैसा करें, जायें कहाँ, कौन बचावै ?
रानाको मुगल-कैदसे जा कौन छुड़ावै ? ॥११॥
चित्तौरमें वीरोंकी कमी? ऐसो न थी बात।
रजपूत करैं युद्धसे भय? ऐसी न थी बात॥
क्या मौतसे डरते थे? नहीं, यह भी न थी बात।
क्या युद्धकी सामग्री न थी? यह भी न थी बात॥
इस क्रूर उदयसिंहके हित प्राण गँवाना।
सब क्षत्री समझते थे स्वयं भाड़में जाना ॥१२॥
राना हो निरुत्साह थे, तब वीर करैं क्या?
राना ही नहीं लड़ते, तो सरदार लरैं क्या?
कायर हो जो मालिक, तो भला दास मरैं क्या?
रण-अग्निसे सरदार डरै, दास जरैं क्या?
रानाको निरुत्साह समझ वीर थे खामोश।
यह हाल निरख 'बीरा' का बस उड़ गया सब होश ॥१३॥
अकबरकी कुटिल नीतिसे भययुत हुई बीरा।
रानाके अचल प्रेमसे फिर बन गई धीरा॥
सुकुमार कलेजेको किया कूटके हीरा।
रानाके छुड़ानेका उठाया वहीं बीरा॥
प्रेमके आधारको बन्धनसे छोड़ाऊँ।
या उसके लिये प्राणका बलिदान चढ़ाऊँ ॥१४॥

जिन हाथोंसे रानाने मुझे पान दिये हैं।
पहनाये हैं भूषण, मेरे सिंगार किये हैं॥
बहु बार कुसुम्भेके पियाले भी पिये हैं।
गलहार हुए, प्रेमके रस-चीर सिये हैं॥
उन हाथोंको बन्धनसे छुटा हार बनाऊँ।
या उनके लिये प्राणका बलिदान चढ़ाऊँ ॥१५॥

जिस छातीसे मुझको है सहित प्रेम लगाया।
जिस दिलमे हैं रानाने मेरा नेह भराया॥
जिस मनमें है रानाने मेरा वास बनाया।
जिस चित्तमे हरदम है मेरा ध्यान समाया॥
उन सबके लिये मैं भी तो कुछ करके दिखाऊं!
या उनके लिये प्राणका बलिदान चढ़ाऊँ ॥१६॥

जिस प्रेमसे मेरे लिये बदनामी उठाई।
जिस नेहसे जगमे मेरी मर्याद बढ़ाई॥
जिस प्रीतिसे निज वंशको की लोक-हँसाई।
जिस छोहसे मेरे लिये सब लाज गँवाई॥
उस प्यारका बदला तो सकल जगको दिखा दूँ।
या उसके लिये प्राणका बलिदान चढ़ा दूँ ॥१७॥

जिस शाहने प्यारेको मेरे क़ैद कराया।
और चाहता है मुझको भी निज नारि बनाया॥
आया है उमड सैन सहित, देश दबाया।
मेवाड़को है चाहता अधिकारमें लाया॥

उस वीर यवन-जातको कुछ स्वाद चखा दूँ ।
कैसी हूँ मैं 'वीरा' उसे कुछ भी तो बतादूँ ॥१८॥

कैसी है य मेवाड़-धरा जगको दिखा दूँ ।
वीरत्वके इतिहासमे निज नाम लिखा दूँ ॥
नारीके विकट क्रोधका परसाद चिखा दूँ ।
इस दुष्ट मुग़लज़ादेको कुछ सीख सिखा दूँ ॥
चित्तौरमें अब भी है कोई नारि छवीरा ।
जो प्रेममें है फूल, तो वीरत्वमें हीरा" ॥१९॥

निज प्रेमके आवेशसे दिल उसका भर आया ।
वीरत्व भी निज देशका रग-रगमें समाया ॥
सुकुमारपना, भीरुपना धोय वहाया ।
रण-साजसे निज अङ्गको फ़ौरनही सजाया ॥
वीराका विकट भेस है, हिम्मतको पकड़ लो ।
यह चित्र है उसका, इसे फिर धीरसे पढ़लो ॥२०॥

कौशेय वसन स्वर्णके नग दूर बहाये ।
लोहेके कवच-कूँड़से निज अङ्ग सजाये ॥
जूड़ेको छोरा, ऐसी तरह वाल बँधाये ।
बिछुवा कसा, दो छोटेसे ख़ञ्जर भी खोसाये ॥
अ हुईं आँखें, तो मङ्गलसे हुए गाल ।
बिजलीसे दसन, भौंह कुटिल, लाल सा है भाल ॥२१॥

फर्राते अधर दोनों हैं भुजदण्ड फड़कते ।
उत्साहसे छातीके केवाड़े हैं धड़कते ॥

नथने हैं बने धौंकनी, हैं दाँत कड़कते।
पहनी हुई चोलीके है सब बन्द तड़कते॥
उत्साहसे फूली न समाती है बदनमें।
करकी सभी चूड़ी, तो कवच तङ्ग है तनमें ॥२२॥

काँधेपै पड़ी ढाल इधर, चाप उधर है।
भाथा व सिरोहीसे सजी पतली कमर है॥
हाथोंमें कड़ाबीन सहित साँक-तबर है।
बर्छी व कटारीका कमरबन्दमें घर है॥
इक हाथमें तेग़ा लिये इक हाथमें भाला।
दुर्गा सी बनी धामसे बाहर चली बाला ॥२३॥

दुर्गेशके ढिग जाके सकल वीर बुलाये।
जुड़ जानेपै ललकारके यों बैन सुनाये॥
"क्यों वीर-वरो! वीरोंके क्यों कर्म भुलाये?
किस हेतुसे क्षत्रित्वके सब धर्म बहाये?
मेवाड़पै रक्तकपै लगे नीलका टीका।
यह देखके चेहरा न पड़ा आपका फीका ? ॥२४॥

मेवाड़से वीरत्वने क्या डेरा उठाया?
क्षत्रित्वका क्या हो गया इस गढ़से सफ़ाया?
चित्तौरसे क्या आज सकल तेज गँवाया?
रजपूतिनी कोई नहीं सुत वीरसा जाया?
क्या वीर-प्रसू भूमि हुई वीर-रहित आज?
क्यों बनी हुई दुर्दशा, इस राज्यका सरताज? ॥२५॥

क्या वह गया रघुवंश-रकत नससे तुम्हारे ?
या सूख गया तनमें तुरुक-त्रासके मारे ?
रानाको करा बन्दी पड़े पाँव पसारे !
वे फ़ायदा क्षत्रित्वका बाना फिरो धारे !
रजपूतिनी माताओंकी औलाद नहीं तुम ?
क्या करते हो, क्यों हो गई है बुद्धि सकल गुम ? ॥२६॥

निश्चय है य, संसारमें इक रोज़ है मरना।
है मूढ़पना लोकमें निज नाम न करना॥
रजपूत हो वाजिब नहीं वैरीसे पछरना।
सर राखके, सरदारको यों क़ैदमें भरना॥
है किसने पढ़ाया तुम्हें यह पाठ अधूरा ?
क्या जानते हो इससे पड़ैगा कभी पूरा ? ॥२७॥

निज दासियाँ लै जाती हूँ रानाको छोड़ाने।
आई हूँ तुम्हैं लाभकी इक बात बताने॥
तलवारको रख, वस्त्र लो सब धार ज़नाने।
मुँह ढाँपके जा बैठ रहो मेरे ठिकाने॥
यों कालसे बच जाओगे, पाओगे बड़ा नाम।
कर जाओगे, संसारमें ब्रह्मासे बड़ा काम ॥२८॥

मरदाना कठिन कामसे श्रम हो गया भारी।
कुछ दिनके लिये शौक़से बन जाइये नारी॥
हम काम तुम्हारा करैं, तुम रीति हमारी।
प्यारेका तजौ नाम, बनो प्राण-पियारी॥

पर, देखना, जनना न कभी अपनी सी सन्तान ।
खो जायगा संसारसे मेवाड़का सम्मान" ॥२९॥

वीराने जो यह व्यङ्ग-वचन-धार बहाई ।
मेवाड़के वीरत्वमें फिर जानसी आई ॥
बाँके हुए वीरोंकी नई सैन सजाई ।
और रातहीको चढ़के मुग़ल-सैनपै धाई ॥

वीरा भी चढ़ी घोड़ेपै सब शस्त्र सँभारे ।
आगे ही दिखा पड़ती थी उत्साहके मारे ॥३०॥

उस ओर मुग़ल-सैन थी जय-रात मनाये ।
कुछ सोये थे, कुछ मस्त थे, जय-भङ्ग उड़ाये ॥
अकबर था उदयसिंहको निज पास रखाये ।
पहरा था विकट वीरोंका सब ओर लगाये ॥

पर ध्यान था, "है कौन जो रानाको छोड़ावे ?
मरनेके लिये बाघकी चलि मांदमें आवे ? ॥३१॥

वीराको भी कल भोर ही अब क़ैद कराऊँ ।
चित्तौर में मज़बूतसा थाना भी बिठाऊँ ॥
रानाको लिये चैनसे निज धामको जाऊँ ।
छत्रानीके सङ्ग शौक़से रस-केलि मचाऊँ ॥

फिर कौन है ऐसी जो करे सामना मेरा ?
हुङ्कारसे हो जायेंगे सब तीनके तेरा" ॥३२॥

इस मानसी मोदकका मज़ा लेता था अकबर ।
इतनेमें सुनी दूरसे कुछ युद्धकी खरभर ॥

भालोंकी चमक देखी, सुनी तीरोंकी सर-सर।
कर ग़ौर जो देखा, तो लखी फ़ौजकी भगदर॥
तेग़ोंकी खनाखन्न, सिरोहीकी छपाछप।
ठॉ-ठॉय कड़ाबीनकी, कत्तीकी गपागप॥
वीरोंको कतर वीराने रानाको छोड़ाया।
अच्छेसे चपल घोड़ेपै असवार कराया॥
दो ज्वान किये सङ्ग, उन्हें घरको भगाया।
तब शाहके डेरोंकी तरफ़ पैर बढ़ाया॥
डेरोंके निकट युद्ध हुआ घोर घमासान।
मुग़लोंने भी मालिकके लिये वार दिये प्रान॥
चित्तौरके वीरोंने ग़ज़ब मार मचाई।
वीराने भी हिम्मतसे करामात दिखाई॥
जिस तुर्कपै खर सूँतके तलवार चलाई।
कंधेसे गिरा शीश, वहीं भूमि चुमाई॥
चण्डी सी बनी मुण्ड थी मुग़लोंके कतरती।
जो सामने आता, उसे दिखलाती थी धरती॥
तम्बूके निकट जाके कहा ज़ोरसे ललकार।
"लो शाहजी! 'वीरा'का करो प्रेमसे सत्कार॥
मैं आई हूँ, लो, पहले मेरी चूम लो तलवार।
फिर शौक़से पर्यङ्कपै तुम करना मुझे प्यार॥
ाके अचल प्रेमके कुछ फूल तो सह लो।
हो वीर पुरुष, वीराके हकासे न दहलो।

जिस नारिसे रण-रङ्गमे लड़नेसे डरोगे।
उस नारिसे कैसे भला रति-रङ्ग करोगे?
किस तेजसे फिर सेज-पै निज पाँव धरोगे?
वीराका अचल प्रेमसे मन कैसे हरोगे?
मैं आई हूं दिल्लीशपै निज शीश चढ़ाने।
या मारके दिल्लीशको, प्राणेश छोड़ाने" ॥३७॥

यों कहके कड़ी हाँकसे वीरोंको पुकारा।
"क्षत्रानियोंकी पी हो जो कुछ दूधकी धारा॥
रजपूतोंके हो पूत, हो चित्तौर तुम्हारा।
बस जान लो, इस वक्त है क्या काम हमारा॥
बस इससे अधिक और मैं क्या तुमको सुनाऊं?
मैं नारि हूँ, तुम वीर हो, क्या तुमको सिखाऊं?"॥३८॥

'मैं नारि हूं, तुम वीर हो' इस बातको सुनकर।
वीरत्वकी मर्यादको निज ध्यानसे गुनकर॥
आवेशमें आ, वीर-उचित क्रोधसे भुनकर।
मुग़लोंके विकट वीरोंको बस धर दिया धुनकर॥
फिर आगे बढ़े ऐसे, कि अकबरको पकड़ लें।
चित्तौरके वीरत्वसे दुश्मनको जकड़ लें ॥३९॥

अकबर भी निकल डेरोंसे झट सामने आया।
निज वीरोंको ललकारके यों बोल सुनाया॥
"क्यों भागते हो जङ्गसे, या मर्दकी काया?
हिम्मत करो, बढ़ शत्रुका कर डालो सफ़ाया॥

संसार कहेगा, कि भगे नारिसे डरकर।
इससे तो भला है, कि गिरें युद्धमें मरकर" ॥४०॥

ललकार सुने, वीर मुग़ल लौटे सँभलकर।
लड़ने लगे हिम्मतसे, महा क्रोधसे जलकर॥
गिरने लगे वीरोंके वहीं मुंड मचलकर।
नद्दी वही इक लालसी रण-थलसे निकलकर॥

हर ओर पड़ा शोर, कि "मारो, धरो, धावो।
वैकुण्ठ खुला है न तनक देर लगाओ" ॥४१॥

अकबरके स्वयं लड़नेसे रजपूत सहमकर।
कुछ पीछे हटे जाते थे, लड़ते न थे थमकर॥
'वीरा'ने विनय की, कि "हरी! युद्ध सुगम कर"।
और आगे बढ़ी जोशसे निज घोड़ेपै जमकर॥

करने लगी तलवारसे मुग़लोंका सफाया।
वीरत्वसे निज नामको कर सत्य दिखाया ॥४२॥

चित्तौरके वीरोंने भी वीराको निरख टूम।
रण-खेतमें बढ़-बढ़के मचाने लगे सब धूम॥
वीराकी थी तलवार, कि हनुमानकी थी लूम।
जिस ओरको फिर जाती, मचाती थी वहीं धूम॥

वीराके विकट क्रोधकी ज्वालासे डराकर।
अकबरकी भगी फौज, मचा शोर भराभर ॥४३॥

अकबरको भी निज जान बचानेकी पड़ी सिर।
रण-खेतमें इक तुर्कका बच्चा न रहा थिर॥

भगते भी चले जाते थे, लखते भी थे फिर-फिर ।
वीराके विकट ख़ौफ़से कितने ही पड़े गिर ॥
यों भागके दिल्लीशने निज जान बचाई ।
चित्तौरपै मुग़लोंकी थी यह पहली चढ़ाई ॥४४॥

इक नारिसे यों हारके दिल्लीश भगा घर ।
माशूक़को पाया नहीं, नानीसी गई मर ॥
बदनाम मुग़ल-सैन हुई, पीठ दिखाकर ।
चित्तौरके वीरोंका कलेजेमें धँसा डर ॥
लेखक जो मुसलमान थे, ऐसा ही समझकर ।
इस युद्धकी चरचा नही लिक्खी है कहींपर ॥४५॥

क्षत्रानी थी या और किसी वंशकी जाई ?
यह बात किसी लेखमे लिक्खी नही पाई ॥
चित्तौरके रानाकी थी घर-डाली लुगाई ।
रणभूमिमे अकबरसे लड़ी कीर्ति कमाई ॥
इस हेतुसे हम इसको हैं क्षत्रानी ही कहते ।
वीरत्व इसने इसका है कुछ जोदला लहते ॥४६॥

'है प्रेम अजय तत्त्व' य दुनियाको दिखाया ।
'निज धर्मसे जय होती है', प्रत्यक्ष लखाया ॥
मेवाड़के रजपूतोंका सम्मान रखाया ।
इस रपली हुई नारिने क्या-क्या न सिखाया ?
गुण-ग्राम ग्रहण कीजिये गम्भीरसे होकर ।
वीराका बड़ा दोष बड़ा दीजिये धोकर ॥४७॥

कर्मा देवी

पाठकजी ! सँभल बैठिये निज होशमें आकर।
श्रोता भी सजग होके सुनैं कान लगाकर॥
किस भाँति यवन-वीरको कर्माने भगाकर।
रक्खा है सुयश हिन्दका निज तेज दिखाकर॥
पति-हीन निवल वेवाने क्या काम किया है।
इस हिन्दके वीरत्वको क्या मान दिया है॥१॥

रावल था समरसिंह, जो मेवाड़का स्वामी।
सामन्त पिथौराका, बड़ा युद्धमें नामी॥
वीरत्वमें जिसके न थी रत्तीको भी ख़ामी।
कायरको सदा क्रोधसे कहता था 'हरामी'॥
'कर्मा'* थी इसी वीर समरसिंहकी रानी।
रहती थी जनमभूमिपै निज दिलसे दिवानी॥२॥

'केगर'के महायुद्धमे दिल्लीश पिथौरा।
क़ैदी बना ग़ोरीका मचा हिन्दमें हौरा॥
सामन्त समरसिंह भी हो क्रोधसे बौरा।
रण-भूमिसे मालिकके लिये स्वर्गको दौरा॥

---

* इस वीर क्षत्राणीका नाम किसीने 'कर्म-देवी' किसीने 'कूर्मदेवी' और किसीने 'कर्मा-देवी' लिखा है, पर हमें इस भीम-कर्मा क्षत्राणीका नाम 'कर्मा-देवी' ही अच्छा और प्रामाणिक जँचा है।

फहराने लगी हिन्दमें यवनोंकी पताका।
वीरत्वने भारतमें लिया साध सनाका ॥ ३ ॥

मरनेपै समरसिंहके कर्मा हुई बेवा।
पर दिलमें समाई थी जनम-भूमिकी सेवा॥
निज पुत्र करनसीको (१) बना देशका राजा।
निज हाथसे करने लगी सब देशकी रक्षा॥
सेनाको दिया धीर, उधर कोष सँभाला।
रैयतको अभय करके, बड़ा काम निकाला ॥ ४ ॥

जिस राज्यमें रैयतका सदा होता है सम्मान।
आनन्द-सहित राजा भी हो जाता है बलवान॥
सेनामें भी आ जाती है वीरत्वकी इक शान।
भर जाता है धन कोशमें, घर-घरमें सुधन-धान॥
रहता है सदा देशमें सुख-शान्तिका डेरा।
खाता है अरी मुँहकी तनक टेढ़ा जो हेरा ॥ ५ ॥

जब पाके शहाबू (२) तो तुरत गोर सिधाया।
दिल्लीमें कुतुबदीनने (३) निज राज्य जमाया॥
उस वक्त जो यवनोंने था उत्पात मचाया।
लिखनेमें निबल लेखनीने शीश नवाया॥
६ ॥

(१) 'करणसिंह' को राजपूतानेमें 'करनसी' कहकर पुकारते हैं।
(२) शहाबू—शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी।
(३) कुतुबुद्दीन ऐबक—शहाबुद्दीन गोरीका गुलाम तथा
(४) ... हिन्दुस्तानका प्रथम बादशाह यही हुआ है।

इतनेसे समझ लीजिये, बस लाखों धुरन्धर।
डर-डरके मुसलमान हुए, या गये यम-घर ॥६॥

नित शाम-सुबह हिन्दुओंके शीश उड़ाना।
सुर-धाम मिला धूलमें, मूरत भी तोड़ाना॥
कन्यायें छिना, दासी बना, धाम भराना।
क्षत्रानियोंसे नीच टहल घरकी कराना॥
बस ऐसीही बातोंको समझता था यवन धर्म।
हिन्दूसे यवन करनेको माने था महा कर्म ॥७॥

यों लूटता सब देशको और ग्राम जलाता।
हिन्दुत्वको हठ-धर्मसे मिट्टीमें मिलाता॥
दिल्लीश कुतुबदीन महाक्रोध दिखाता।
सेवकसे हुआ शाह, अहङ्कारमें माता॥
सेना लिये चित्तौरको आ घेरा उमड़कर।
ज्यों इन्द्रने ब्रजधामको घेरा था घुमड़कर ॥८॥

कर्माने कहा, "शाहजी! कुछ धर्म विचारो।
दिल्लीश हो, अब आप तो मरतेको न मारो॥
बालकसे व बेवासे न तकरार उभारो।
·रोंका है यह धर्म, इसे ध्यानमें धारो॥
साम
वीर कभी यश नहीं पाते।
रण-भू।
इस हेतुसे नारीको नहीं वीर सताते" ॥९॥
सँदेसापै न ऐनकने दिया ध्यान।
कि "इस बातसे घटती है मेरी शान॥

क्ष इस वीर क्षत्रा
र्मा-देवी' लिखा है,
अधिक अच्छा और प्राम

या युद्ध करो या तो बनो आज मुसलमान ।
महलोमें मेरे चलके रहो बनके मेरी जान ॥
मेरा बनकर बने नव्वाब करनसी ।
तब नाम मेरा सत्य हो दिल्लीश कुतुबदी" ॥१०॥

इस बातको सुन क्रोध न कर्माका समाया ।
आरक्त हुए नेत्रके मिस शीशपै आया ॥
फर्राये अधर, कोपसे चेहरा दमक आया ।
भौंहैं तनीं ज्यों कालने कोदण्ड चढ़ाया ॥
लवाके गढ़ाधीशको सब हाल सुनाया ।
'फौरन ही सजे सैन' यही हुक्म लगाया ॥११॥

मर्दाना किया भेस, सजे युद्धके बाने ।
बुलवा लिये चित्तौरके सब वीर पुराने ॥
निज पुत्र करणसिंहको रख ठीक-ठिकाने ।
फाटकसे कढ़ी सेन लिये, होत भियाने ॥
घोड़ेपै चढ़ी आगे चली भाला उठाये ।
रणथलमें पहुँच तुर्कोंसे ये बैन सुनाये ॥१२॥

"ऐबकसे कहो, आई हूँ मैं गढ़से निकलकर ।
और आप भी आये हैं बड़ी दूरसे चलकर ॥
हटनेका नहीं काम है शस्त्रोंसे दहलकर ।
मैदानमें रण-खड्ग मचे खूब सँभलकर ॥
या हमको पकड़ रङ्गमहल अपना बनाओ ।
या आप मेरे हाथसे यमधामको जाओ

विधवाको सतानेसे अगर तुम नहीं डरते।
कन्याओंके संग करते हो सब कर्म अकरते॥
तुर्कानियोंके प्रेमसे मन-चित नहीं भरते।
क्षत्रानियोंसे प्रेमकी अभिलाष हो करते॥
तो आओ निकल, युद्धमें कुछ ज़ोर दिखाओ।
निज हाथसे लो मुझको पकड़ कंठ लगाओ ॥१४॥

चित्तौरकी रानीसे हो जो रङ्ग मचाना।
चित्तौरके रावलको हो जो पुत्र बनाना॥
रजथानमें करना हो जो निज ठीक-ठिकाना।
आ लीजे पकड़ हाथ मेरा, छोड़ बहाना॥
बस मैं भी खुशीसे बनूँ दिल्लीशकी बेगम।
हो जाय तुरुक-वंशका रघुवंशसे सगम" ॥१५॥

सुन बात य ऐबक भी ग़ज़ब जोशमें आया।
'रानीको पकड़ लूँ' यही बस दिलमें समाया॥
कुछ सेन लिये रानीकी दिशि ज़ोरसे धाया।
ज्यों चन्द्र लखे सिंधुने निज ज्वार बढ़ाया॥
यह देखके कर्माने दी निज वीरोंको ललकार।
आगे बढ़ी, घोड़पै चढ़ी, करने लगी मार ॥१६॥

बन्दूक़की बौछारसे चित्तौरके वर-वीर।
गिरने लगे रण-भूमिमें, भगने लगा सब धीर॥
इस ओरसे सब वीर चलाते थे विकट तीर।
यवनोंके वदन छेदके देते थे महा पीर॥

पर, तुर्क थे ज्यादा व इधर अल्प थे रजपूत ।
और दूरसे लड़नेसे, लगी थी मनो कुछ छूत ॥१७॥

निज वीरोंसे रानीने कहा, ज़ोरसे ललकार ।
"हे वीर-वरो ! पिलके सिरोहीकी करौ मार" ॥
यों कहके बढ़ी आगे, लिये हाथमें तलवार ।
बस गूँज उठी दममें वहाँ, खाँडेकी झनकार ॥

इस ओर हुआ छप, तो उधर टपसे गिरा सिर ।
कट हाथ गया इसका तो उसका गया दिल चिर ॥१८॥

इस भाँतिसे रजपूतोंने तलवार चलाई ।
कर डाली बड़ी दोकमें यवनोंकी सफ़ाई ॥
जिस ओर बढ़े बोलके रानीकी दुहाई ।
उस ओर फटी तुर्क-सफ़ैं, ज्यों फटै काई ॥

तलवारसे लड़नेमें चतुर हिन्दके रजपूत ।
बढ़-बढ़के दिखाने लगे रण-भूमिमें करतूत ॥१९॥

इस मारसे घबराके कुतुबदीन भी हटकर ।
गोली लगा बरसाने ज़रा दूरपै डटकर ॥
इस ओरसे तब तीर चले घातमें सटकर ।
गिरने लगे यवनेशके योधा वहीं कटकर ॥

बन्दूककी गोली थी, कि थीं स्वर्गकी नारी ।
सीनेसे लगीं, प्राण-सहित स्वर्ग सिधारीं ॥२०॥

इस ओरके थे तीर, कि थे सर्पके बच्चे ।
छू पाते तनक अङ्ग, तो थे कामके सच्चे ॥

यवनोंके विकट वीरोंको देकर महा दच्चे।
विष-बलसे उन्हें कर दिया यों चित्तके कच्चे॥
था एक पियासा तो उठी एकके ज्वाला।
इस ओर अँधेरा था तो उस ओर था काला॥२१॥

कर्माने अजब लक्ष्यसे कुछ तीर चलाये।
सर्राते हुए शाहके सब तनमें समाये॥
तब शाह कुतुबदीन बड़े क्रोधमें आये।
कर सकते थे क्या, चारों तरफ़ मेघसे छाये?
विष-बलसे कुतुबदीनके नैनोंकी गई जोत।
क्या सकता है तम-तोममें कर छोटा सा खद्योत? ॥२२॥

हाथी भी कुतुबदीनका तीरोंसे हुआ अन्ध।
बस क्रोधमें आ करने लगा दलमें अँधाधुन्ध॥
यह देखके कर्माने किया शीघ्र य परबन्ध॥
निज सेनको वचनोंसे दी उत्साहकी शुभ गन्ध॥
"हाँ, वीर-वरो! युद्धमें अब हाथ दिखाओ।
यवनेशको रण-भूमिमें कुछ सीख सिखाओ" ॥२३॥

उत्साहसे रजपूतोंने फिर सूँतली तलवार।
'महारानीकी जय' बोल लगे करने विकट मार॥
उस ओर यवन-सेनमें थी प्यासकी हुंकार।
इस ओरसे कुछ वीरोंने की तीरोंकी बौछार॥
दिल्लीशको बस पड़ गये यों जानके लाले।
डसते हों मनों चार तरफ़ चारठो काले ॥२४॥

बाणोंके विकट विषसे था आँखोंमे अँधेरा।
और प्यासले बस प्राणोका था ओठोंपै डेरा॥
इक ओरसे तलवार लिये कर्मानि घेरा।
इक ओरसे था भीलोंके तीरोंका दरेरा॥
चित्तौरकी रण-भूमि करवला(१) सी बनी थी।
दिल्लीशके सिर मौत हरइक ओर तनी थी॥२५॥
दिल्लीशको कर्मानि विकट क्रोधसे दावा।
ज्यों मरते हुए प्राणीको यमदूत-सहावा(२)॥
बस भूल गया क़िबला किधर, है कहाँ कावा?
चिल्ला उठा, बस "भागो यहाँ मौत है बावा!"
मैदानसे सब वीर यवन डरके भगे यों।
रखनेसे कड़ी धूपमें काफ़ूर उड़े ज्यों॥२६॥
भगते हुए यवनोंको किया देशसे बाहर।
मुर्देसे पड़े खेतमें दिखलाते यवन-सर॥
मेवाड़की इस नारिने ऐबकको हराकर।
इस हिन्दके वीरत्वका रक्खा बड़ा आदर॥
तब हिन्दकी क्षत्रानियां करती थी विकट काम।
अब हिन्दके हली भी बने बैठे हैं बेकाम॥२७॥
खाना व पड़े लोटना और तोंद बढ़ाना।
कुछ नीचसी कुल्टाओंके सङ्ग रङ्ग मचाना॥

(१) करवला—एक स्थान, जहाँ मुसलमानोंके पैगम्बर हसन-हुसैनकी मृत्यु हुई थी।
(२) यमदूत-सहावा—यमके दूतोंके सदृश।

विद्वान व बूढ़ोंके कभी पास न जाना।
आजायें अकस्मात तो मिलना न मिलाना॥
दिन-रात विषय-भोगका आनन्द उड़ाना।
अब क्षत्री इसे जानते हैं राज्यका बाना ॥२८



सरदार बा और रूपा दे

जिसने कि विपत-जालमें निज धर्म बचाया।
निज हाथोंसे दो दुष्टोंको यम-धाम झुँकाया॥
पतिका न किया मोह, न सुत-नेहकी माया।
निज वंशके गौरवके लिये प्राण गँवाया॥
कल्याणी कहे चित्तको होता नहीं संतोष।
प्रत्यक्ष महादेवी कहूँ, जो न लगै दोष॥१॥

मशहूर था इस हिन्दमें खिलजीका घराना।
था शाह मुबारकका महा क्रूर ज़माना॥
ऐसे ही समयकी है मुझे बात सुनाना।
गुजरातके इतिहासमें है इसका ठिकाना॥
इस बातपै पाठक जी! अगर हो तुम्हें शंका।
पाटनकी तवारीख़में लो देख निशङ्का॥२॥

कल्याण-कुली खेमसी, रजपूत था बङ्का।
था रानीपुरा ग्रामका नरपाल निशङ्का॥
रैयतमें अचल न्यायका बजवाता था डङ्का।
वीरत्वमें हर ओर पड़ा उसका था हङ्का॥
'सरदार बा इस वीरकी थी प्यारी कुमारी।
वीरत्वमें नरसिंह थी, थी रूपमें नारी॥३॥

---

१ असली—[illegible]।

उस वक़्में पाटनका था नव्वाब युवा सा।
था नाम तो रहमत, मगर था ख़ूनका प्यासा॥
बुलवाके वहीं खेमको और देके दिलासा।
सरदारके संग, ब्याहकी जतलाई निज आसा॥
पर, खेमने नव्वाबकी यह बात न मानी।
नव्वाबने तब युक्ति महा भेदकी ठानी ॥४
सरदारके भाईको निकट अपने बुलाया।
सन्मान सहित उसको सखा अपना बनाया॥
थोड़े ही दिनों बीच उसे ऐसा लुभाया।
'ब्याहूँगा बहिन तुमको' यही वैन हराया॥
बस, देके वचन 'मूलसी'(१) निज धामको आया।
कुछ रोज़में नव्वाबने यह पत्र पठाया ॥५।
"यदि 'मूलसी!' तुम वादेको पूरा न करोगे।
यदि 'खेमसी!' आगेहीकी हठ जीमें धरोगे॥
सरदारको सँग मेरे अगर अब न वरोगे(२)।
क्षत्रित्वके आवेशमें आ युद्ध करोगे॥
तो जान लो, दुनियामें बड़ा दुःख भरोगे।
पछताओगे और मौत भी कुत्तेकी मरोगे" ॥६।
'सरदार'की भावजने सुनी बात य सारी।
निज पतिको वहीं क्रोधसे दी डाँट य भारी॥

---

(१) मूलसी—'मूलसिंह' (सरदारवाका भाई)।
(२) वरोगे—ब्याहोगे।

"ख़ाविन्द हो तुम मेरे, मैं हूँ आपकी नारी ।
पर, जातिके अभिमानसे कहती हूँ पुकारी ॥
धिक्कार तुम्हें ! देते हो निज बहिन यवनको ।
चुल्लूमें डुबा डालिये इस ज़लीके तनको ॥ ७ ॥

मैं अपनी ननँद व्याहमें रहमतको न दूँगी ।
चढ़ आनेपै नव्वावसे मैं युद्ध करूँगी ॥
और आजसे अब आपकी शय्या न चढ़ूँगी ।
निज मुँहसे कभी आपको निज पी न कहूँगी ॥
हम जान लो. कितनी है तुम्हें जातिकी परवाह ।
अधिकार तुम्हें कब है, कि भगिनीका करो व्याह?" ॥ ८ ॥

'रूपा' का कथन 'मूल'ने रहमतको सुनाया ।
रहमत भी ग़ज़ब जोशसे दल सजाके आया ॥
रूपाने भी सब युद्धका सामान सजाया ।
नव्वावसे लड युद्धमें वीरत्व दिखाया ॥
पर, अन्तमें वीरोंकी तरह स्वर्ग सिधारी ।
शतबार नमस्कार तुझे राजकुमारी ! ॥ ९ ॥

भौजाई हों यदि ऐसी तो ननँदोंका है सौभाग ।
इस दीन दुखी हिन्दका सौभाग्य उठै जाग ॥
पर अब तो ननँद-भाभीमें हम देखते हैं लाग ।
अनबन न सही, ढूँढे नहीं मिलता है अनुराग ॥
भाभी व ननद होती हैं अब मूर्ति कलहकी ।
वह घर ही नहीं इनकी न ज्वाला जहाँ लहकी ॥१०॥

नव्वावने 'सरदार'को तब क़ैद कराया।
माँ-बाप थे बूढ़े, उन्हें भी बाँध मँगाया॥
आनन्द सहित वीर-यवन धाम सिधाया।
रख महलोंमें 'सरदार'को यों प्रेम जताया॥
"बन जाओ मेरी जान! नहीं जान न जानो।
माँ-बापको भाभीके निकट सोता ही मानो" ॥११॥

सरदार भी कुछ सोचके बोली, "कि यवन-वीर!
बेगम बनूँगी आपकी, पर कुछ तो धरो धीर॥
दिन तीन गुज़र जानेपै तुम आना मेरे तीर(१)।
इस वक्त मैं नापाक हूँ, पहने हूँ मलिन चीर" ॥
यह सुनके यवन-वीर न निज तनमें समाया।
मिलनेके लिये रङ्गमहल खूब सजाया ॥१२॥

दिन तीन गुज़र जानेपै सरदार बनी यों।
सिङ्गार किये आई हो सुरपतिकी परी(२) ज्यों॥
जिस ठाटसे सरदार थी, था रङ्गमहल त्यों।
दिलमें जो थी दोनोके व मैं बात कहूँ क्यों?
क्षत्रीकी कुमारीसे यवन-जातका सयोग!
निज बुद्धिके अनुसार समझ लेहींगे सब लोग ॥१३॥

रहमतके लिये रात थी वह मोदकी माता।
'सरदार'के हित मानो रहा रूठ विधाता॥

---

(१) तीर—निकट, पास।
(२) परी—अप्सरा।

पर, ईशका कर्त्तव्य समझमें नहीं आता।
करता है वही उसको जो है खूबही भाता॥
कितनाही चतुर होवै कोई और बली भी।
मतलबसे अधिक होवै खबरदार छली भी ॥१४॥

रहमत गया सरदारसे जब रङ्ग मचाने।
सरदारने आदर किया बैठाके ठिकाने॥
फिर प्रेम जता उसको लगी मदसे छकाने।
मुसकाके नज़ाकतसे किये कोटि बहाने॥
मदिरासे छका उसको तो बेहोश बनाया।
महलोंसे निकल वनकी तरफ पैर उठाया ॥१५॥

पाठक जी! ज़रा सोचिये, था खूब अँधेरा।
और आप अकेली थी, विकट वनका दरेरा॥
नारी थी, नवोढ़ा थी, अतुल रूपका डेरा।
थी राजकुमारी, न किया कोसका फेरा॥
पर, धर्म बचानेके लिये शक्ति बढ़ आई।
छः कोस निकल प्रात कुटी साधुकी पाई ॥१६॥

निज धर्मकी रक्षामें लगाता है जो तन-मन।
बन जाता है बस रङ्गमहल उसको विकट वन॥
रक्षाके लिये देता है जगदीश भी निज गन।
सौ मनका गरू भार भी हो जाता है इक कन॥
इस काम पर मद नहीं रह जाती उसे फिर।
निज धर्म समझ देता है [illegible] ॥१७॥

उस साधुसे सरदारने सब बात बताई।
उस साधुने 'शाबाश' कहा, शक्ति बढ़ाई॥
"है धन्य तुझे बेटी! है तू वीरकी जाई।
भय छोड़ दे, कल्याण करेगी महामाई॥
यहाँ तुझको यवन-जात कोई पा नहीं सकता।
हिन्दूके सिवा अन्य यहाँ आ नहीं सकता" ॥१८॥

चंदौतीके राजाका कुँवर रूपका भंडार।
बैरीके(१) लिये सिंह, बड़ा बातका सरदार॥
आखेटको आ, आया वहीं साधुके दरबार।
सरदारकी सब बातको सुन, होगया ग़मख्वार(२)॥
"इक पाखमें इमदाद करूँगा मैं तुम्हारी।
अम्बाके दिवालेमें(३) मिलूँ सेन सँभारी" ॥१९॥

दो चार छः दिन बाद वही राजकुमारी।
लै साधु-वचन, अम्बाके मंदिरको सिधारी॥
फिर राहमें सिर आई मुसीबत बड़ी भारी।
नव्वाबके वीरोंकी मिली मगमें सवारी॥
हचानके सरदारको वीरोंने लिया घर।
पञ्जेमें फँसी तुर्कोंके कुछ सकती न थी कर ॥२०॥

---

(१) चदौतीके राजकुमारका नाम 'बैरीसिंह' था। आगे इसका नाम केवल [बै]री' लिखा गया है।

(२) ग़मख्वार—सहानुभूतिकर्ता।

(३) अम्बा-देवीका आश्रम उस साधुकी कुटीसे दस-बारह कोसकी दूरीपर एक [illegible] वनमें था।

सरदारको पानेके लिये सारे यवन-जात ।
ललचाने लगे और लगे करने बड़ी बात ॥
"मैं लूँगा, महीं लूँगा' य कह घूसे चले लात ।
फिर क्रोधसे करने लगे तलवारके आघात ॥
[illegible]ड़-भिड़के वहीं चारों हुए ख़ूनमें लथपथ ।
सरदारने धीरसे लिया अपना नया पथ ॥२१॥

कुछ आगे चली, भील मिले राहमें छः-सात ।
सब दौड़े उसे लूटने और करने लगे घात ॥
सरदारने तब उनसे कही धीरसे यह बात ।
"मारो न मुझे, दूँगी मैं धन तुमको भले भ्रात!
[illegible]म्नाके शिवालेके पुजारीके निकट आज ।
पहुँचा दो मुझे, तुमको मैं दे डालूँगी यह साज" ॥२२॥

भीलोंने कहा, "हमको य सब पहले उतारो ।
दो हमको, चले धाम, इधर तुम भी सिधारो ॥
औरत न अगर होती तो हम दिलसे विचारो ।
बिन मारे न धन लेते, यह है धर्म हमारो ॥
इक साथी हमारा य तेरे साथमें जाकर ।
लौटेगा तुझे जम्नाके मन्दिरको दिखाकर" ॥

गहने दिये सब उनको, लिया साथमें एक भील ।
मन्दिरमें पहुँच पाया पुजारीको सुशील ।
रहने लगी छिपकर वहाँ, कर भेसको तब्दील ।
[illegible] पुजारीने न की देरीमें कुछ ढील ।

पन्द्रहवे दिवस सेन लिये आया वहाँपर ।
अम्बाके दिवालेमें थी सरदार जहाँपर ॥२४॥

सरदारने रण-खेलके हित साज सजाया ।
तलवार-तमंचा भी कमरकसमें लगाया ॥
कंधेपै पड़ा त्रोण धनुष हाथमे आया ।
इक हाथमें भाला भी लिया विपक्षा बुझाया ॥

कच्छीसे चपल घोड़ेपै जब रान जमाई ।
सब वीरोंने जाना, कि य है कालिका माई ॥२५॥

अपने लिये भौजाईका रण-भूमिमें सोना ।
भाईका विकट लोभसे निज गर्वको खोना ॥
माँ-बापका रहमतके यहाँ क़ैदमें होना ।
दुर्वाक्य यवन-जातके और प्रेम पिरोना ॥

इन यादोंने सरदारको यों कोप दिलाया ।
भुजदण्ड फड़कने लगे, चेहरा दमक आया ॥२६॥

बस बोल 'महामायाकी जय' फ़ौज रँगाई ।
बैरीको लिये, बैरीपै दी बोल चढ़ाई ॥
रहमतने भी सुध पाके सकल सेन सजाई ।
मैदानमें आ करने लगा ख़ूब लड़ाई ॥

दिन चारतलक दोनों तरफ़ वीर कटे ख़ूब ।
रहमत भी गया जान, कि मिलता नहीं महबूब ॥२७॥

दिन पाँचवें रहमतने विकट युद्ध मचाया ।
बैरीके महावीरोंको यमधाम पठाया ॥

सब ओरसे सरदारको यों घेरेमें लाया ।
ज्यों चार-छः कुत्तोंने हो बिल्लीको दबाया ॥
उस वक्त विकट क्रोधसे सरदार उठी जल ।
बैरी था बहुत दूर, था हर ओर यवन-दल ॥२८॥
प्राणोंका तजा मोह, लिया हाथमें भाला ।
घोड़ेको दपट सामने रहमतके उछाला ॥
इस ओर झपट एकके मस्तकको उड़ाया ।
उस ओर लपक एकको घोड़ेसे गिराया ॥
जिस ओरको फिर जाती, वहीं धूम मचाती ।
घोड़ेकी चपल चालसे औचटमें(१) न आती ॥२९॥
इस मारसे नव्वाबके भय दिलमें समाया ।
पर लाजसे घोड़ेको कुदा सामने आया ॥
इस ज़ोरसे सरदारने भालेको चलाया ।
लग पाता तो रहमतका वहीं होता सफ़ाया ॥
पर घोड़ेके हट जानेसे वह चूक गई वार ।
तब क्रोधसे ली सूँत वहीं म्यानसे तलवार ॥३०॥
जय बोल महाकालीकी इस ज़ोरसे घाली ।
कंधे हुए रहमतके वहीं शीशसे ख़ाली ॥
फिर क्रोध सहित पेटमें दी भोंक कुदाली(२) ।
यह देख यवन वीर भगे, सुध न सँभाली ॥

---

(१) औचट—[illegible]
(२) कुदाली—[illegible]

'जय कालिका माईकी' हर इक ओर उठा शोर ।
सरदारके जय-नादके बाजे बजे घनघोर ॥३१॥

भालेसे उठा शीशको घोड़ेको कुदाते ।
बैरीको लिये साथमें जयनाद बजाते ॥
कुछ और यवन-वीरोंको यमधाम पठाते ।
आनन्द सहित पहुँची यवन-कोटके हाते ॥

पाटनके सिंहासनपै तो बैरीको बिठाया ।
और कैदसे माँ-बापको फ़ौरन ही छुड़ाया ॥३२॥

माँ-बापने सरदारका बैरीसे किया ब्याह ।
आनन्द सहित करने लगे प्रेमका निर्वाह ॥
कुछ दिनमें हुआ पुत्र, बढ़ा और भी उत्साह ।
दो वर्ष गये, गुज़रे हों ज्यों डेढ़ ही सप्ताह ॥

आनन्दके दिन बीतते लगती नहीं कुछ देर ।
दो वर्ष गये भाग्यने फिर खाया उलटफेर ॥३३॥

दिल्लीमें ख़बर पहुँची जो पाटनके पतनकी ।
बस शाह मुबारकने वहीं ऐसी जतन की ॥
पैंतीस सहस फ़ौज सजी क्रोध मगनकी ।
आवेशसे थी सुध न जिन्हें अपने बदनकी ॥

निज मन्त्री जो खुसरो था, उसे मत बताया ।
पाटनके विजय करनेको गुजरात पठाया ॥३४॥

खुसरोने भी सुन पाई थी सरदारकी शोभा ।
निज हाथमें लानेके लिये चित्त था लोभा ॥

कुछ कामसे, कुछ क्रोधसे उस ओरको दौरा ।
दो भावोंके आवेशसे बस बन गया बौरा ॥
दो दिनका सफ़र एक ही दिन करता सिधाया ।
अति शीघ्र पहुँच मोरचा पाटनमें जमाया ॥३५॥

वैरीने भी उत्साह सहित सेन सजाई ।
दिन सात हुई खेतमें घनघोर लड़ाई ॥
पर अन्तमें लेता हुआ वैरीकी बधाई ।
रण-खेतमें गिर करही दी सुरपुरको चढ़ाई ॥
सरदारने पति-मृत्युको सुन धीर न छोड़ा ।
निज धर्मने उस वक्त भी निज मुँहको न मोड़ा ॥३६॥

थी आठ महीनेका फ़क़त गोदमें इक पूत ।
सौंपा उसे निज सासको, औ दिल किया मज़बूत ॥
निज साथमें ले, शेष बचे कोटके रजपूत ।
दुर्गा सी बनी, घोड़े चढ़ी, पहुंच [illegible] ॥
[illegible] बीच मतागयाकी रण भूमिको धाई ।
[illegible] ये जाना कि बला [illegible] ॥३७॥

जिस ओर लपक जाती थी सरदारकी तलवार ।
रुंडोंके डगर ढेर थे, मुंडोंके थे अंबार ॥
[illegible] दहल जाते थे फिर सुनते ही हुंकार ।
पर [illegible], करते थे रण-धर्मसे [illegible] ॥
[illegible] [illegible] मार [illegible] ।
[illegible] ॥३८॥

इक मासतक ऐसी ही विकट युद्ध मचाई।
छः-सात सहस शत्रु-अनी काट गिराई॥
दो-तीन सहस खेतमें निज सेन गवाँई।
पर अन्तमें, अफ़सोस! बनी कुछ न बनाई॥
घायल हो गिरी भूमिमें खुसरोने किया क़ैद।
निज डेरेमें रखवाके लगा करने कुछ उम्मैद॥३९॥

निज हाथोंसे खुसरोने कसी घावोंपै पट्टी।
हर भाँतिसे करने लगा उपचारकी सट्टी॥
उसको न था मालूम कि यह धर्मकी हट्टी।
धन-लोभसे पढ़नेको नहीं प्रेमकी पट्टी॥
अधरातको उसको जो तनक होश सा आया।
खुसरोने समय साधके निज प्रेम सुनाया॥४०॥

"हे प्राण-प्रिये! देखो इधर दास खड़ा है।
यह देख दशा दिलमे मेरे शोक बड़ा है॥
मैं कैसा करूँ प्रेमका यह पंथ कड़ा है।
और दिलमें तुम्हारे भी अजब ध्यान अड़ा है॥
तुम हठ न अगर करतीं तो यह हाल न होता।
निज प्यारी बनानेमें मिनट मात्र न खोता॥४१॥

पर ख़ैर, अभी कुछ भी नहीं करसे गया है।
लो बात मेरी मान जो कुछ मुझपै दया है॥
ऐसा ही चला आता है यह फ़न न नया है।
शाहोंसे भी सम्बन्धमें कुछ ऐसी हया है?

हर एक यवन शाहने जलानी विवाही ।
राजीसे हो या कैसी ही फैलाके तबाही ॥४२॥

तुम जानती हो, शाह मुबारक तो है कमज़ोर ।
मैं ही हूँ सकल राज्यमें धनवान व शहज़ोर ॥
दिल्लीमें पहुँच उसको कतर फेकूँगा इक ओर ।
'खुसरो है शहंशाह' पड़ेगा यही बस शोर ॥
तब तुमको भला होनेमें बेगम, मेरी प्यारी !
बतलाओ तो कुछ हानि है, कुछ लाज, कि ख्वारी ?" ॥४३॥

खुसरोकी ये बातें सुनीं सरदारने जिस दम ।
आँखें हुईं अङ्गार, हुआ मुँह भी तमातम ॥
घायल थी विकट घावोंसे, बल होगया था कम ।
छः घण्टेसे बेहोश थी, पर उठगई उसी दम ॥
इस दमसे ही खुसरोको पटक चित्त सुलाया ।
चढ छातीपै खञ्जरसे दिया उसनें डराया ॥४४॥

"रे दुष्ट ! तू क्षत्रानीको है लोभ दिखाता !
इस हिन्दकी क्षत्रियोंको है तू दोष लगाता ?
मैं नारि हूँ, पतिहीन हूँ, इक पुत्रकी माता ।
पर तेरे लिये अब भी मेरा धर्म है विधाता ।
[illegible] ही पूरे खोट हैं लोग बराबर ।
तौभी तुझे मैं अब भी [illegible] हूँ [illegible]" ॥४५॥

यों कहके दिया हूल [illegible] कटारा ।
पर मारते खुसरोकी [illegible] [illegible] ।

इक मासतक ऐसी ही विकट युद्ध मचाई।
छः-सात सहस शत्रु-अनी काट गिराई॥
दो-तीन सहस खेतमें निज सेन गवाँई।
पर अन्तमें, अफ़सोस! बनी कुछ न बनाई॥
घायल हो गिरी भूमिमें खुसरोने किया कैद।
निज डेरेमें रखवाके लगा करने कुछ उम्मैद॥३९॥
निज हाथोंसे खुसरोने कसी घावोंपै पट्टी।
हर भाँतिसे करने लगा उपचारकी सट्टी॥
उसको न था मालूम कि यह धर्मकी हट्टी।
धन-लोभसे पढ़नेको नहीं प्रेमकी पट्टी॥
अधरातको उसको जो तनक होश सा आया।
खुसरोने समय साधके निज प्रेम सुनाया॥४०॥
"हे प्राण-प्रिये! देखो इधर दास खड़ा है।
यह देख दशा दिलमें मेरे शोक बड़ा है॥
मैं कैसा करूँ प्रेमका यह पंथ कड़ा है।
और दिलमें तुम्हारे भी अजब ध्यान अड़ा है॥
तुम हठ न अगर करतीं तो यह हाल न होता।
निज प्यारी बनानेमें मिनट मात्र न खोता॥४
पर ख़ैर, अभी कुछ भी नहीं करसे गया है।
लो बात मेरी मान जो कुछ मुझपै दया है॥
ऐसा ही चला आता है यह फ़न न नया है।
शाहोंसे भी सम्बन्धमें कुछ ऐसी हया है?

हर एक यवन शाहने ललानी विवाही।
राजीसे हो या कैसी ही फैलाके तबाही ॥४२॥
तुम जानती हो, शाह मुबारक तो है कमज़ोर।
मैं ही हूँ सकल राज्यमे धनवान व शहज़ोर॥
दिल्लीमे पहुँच उसको कतर फेकूँगा इक ओर।
'खुसरो है शहंशाह' पड़ैगा यही बस शोर॥
तब तुमको भला होनेमें बेगम, मेरी प्यारी!
बतलाओ तो कुछ हानि है, कुछ लाज, कि ख्वारी?" ॥४३॥
खुसरोकी य बातें सुनीं सरदारने जिस दम।
आँखें हुईं अङ्गार, हुआ मुँह भी तमातम॥
घायल थी विकट घावोंसे, बल होगया था कम।
छः घण्टेसे बेहोश थी, पर उठके उसी दम॥
इक दममें ही खुसरोको पटक चित्त सुलाया।
चढ़ छातीपै खन्जरसे किया दममें सफ़ाया ॥४४॥
"रे दुष्ट! तू क्षत्रानीको है लोभ दिखाता!
इस हिन्दकी सतियोंको है तू दोष लगाता?
मै नारि हूँ, पतिहीन हूं, इक पुत्रकी माता।
पर तेरे लिये अब भी मेरा बल है विधाता॥
कितनी ही घुनै सोंठ, रहै लौंग बराबर।
त्योंही तुझे मैं अब भी दिखा सकती हूँ यमवर" ॥४५॥
यों कहके दिया हूल कलेजेमें कटारा।
पल मारते खुसरो वहीं यमधाम सिधारा॥

सरदारने फिर एक दफ़ा धीर सँभारा।
डेरेसे निकल, घरको भगी, ज्यों वहै नारा॥
चकराके गिरी भूमिपै, फिर घाव खुले सब।
लोहूके पनाले बहे, फिर कौन बचै तब? ॥४६॥

इस भाँतिसे सरदार विपति-भीर उठाकर।
दो दुष्टोंको निज हाथसे यमधाम पठाकर॥
क्षत्रित्वका, नारीत्वका सत्धर्म दिखाकर।
आनन्दसे वासा किया सुरधाममें जाकर॥
भारतमें हुआ करती थीं इस भाँतिकी नारी।
पर अब तो बड़े सिंह भी डरपोक हैं भारी॥४७॥



किरण देवी

अकबरसे महावीरको धरतीपै गिरावै।
नौरोज़के मेलेको भी मिट्टीमे मिलावै॥
बहुतोंके सती-धर्मको निज बलसे बचावै।
ख़ाविंदको भी शत्रुके फन्देसे छोड़ावै॥
उस ओजमयी नारिको वीरा न कहोगे।
उस वीरका अन्दाज भला कैसे लहोगे ? ॥ १ ॥

अकबर जो शहंशाह था इस हिन्दका नामी।
नृप-नीतिका भण्डार था, पर था बड़ा कामी॥
छल-बलसे किया करता था वह काम हरामी।
इस योग्य न था, उसको कहैं हिन्दका स्वामी॥
राजा हो, प्रजा-नारिपै जो मनको चलावै।
उस पापकी मूरतका भला कौन मनावै ? ॥ २ ॥

महलोंमे बड़े शानका बाज़ार लगाता।
नौरोज़का मेला उसे मशहूर कराता॥
उमरावकी बहिन, बेटियाँ मेलेमें बुलाता।
धोखेके लिये बेगमें अपनी भी पठाता॥
मर्दों को मनाही थी, वहां जाने न पावैं।
नारी ही फकत मेलेका सब साज सजावैं ॥ ३ ॥

पर आप सदा अपना पुरुष-भेष छिपाकर।
नारीसा वना फिरता था नित मेलेमे जाकर॥
अच्छी सी किसी नारिको फन्देमें फँसाकर।
ले जाता विकट भूल-भुलैयाँमें भुलाकर॥
और घातसे उस नारिका सत्धर्म नसाता।
निज नाममें यों पापका इक दाग़ लगाता॥ ४॥

थे राजा वीकानेरके भाई जो पृथीराज।
निज नारि 'किरणदेवी' सहित कीन्हें विकट साज॥
रहते थे नज़रवन्द वहीं भाईके हित काज।
अनहित न करै राजका जिससे कि मुग़ल-राज॥
पर शाहका यह पाप न दम्पतिको सोहाता।
'कैसा करै जो इससे बचै' मनमें न आता॥ ५॥

इक साल किरणदेवीने यह मनमें विचारा।
"इस बार तो वचनेका नहीं धर्म हमारा॥
निज धर्म तो मुझको है मगर प्राणसे प्यारा।
कुछ ऐसा करूँ जिससे मिटै कष्ट ये सारा॥
या शाहको बध मेलेका सब स्वाँग मिटा दूँ।
या प्राणको तज वंशको आफतसे छुटा दूँ" ॥ ६॥

आ पहुँचा समय मेलेका सब साज़ सजाया।
अकबरने किरणदेवीको मेलेमे बुलाया॥
जाते समय निज पतिको किरणने ये सुनाया।
"वस आज मेरा, या तो है अकबरका सफ़ाया॥

तुम मेरे लिये शोक न करना मेरे प्यारे !
नर-रक्तसे उज्ज्वल करूँगी यशको तुम्हारे" ॥ ७ ॥

बस वस्त्र-अलंकारोंसे निज अङ्ग सँवारा।
जूड़ेमें लिया खोस विकट एक कटारा॥
अकबरकी कुटिल नीतिने वह क्रोध उभारा।
गुस्सेसे 'किरण' होगई तन-मनसे अङ्गारा॥
मेलेको चली सङ्ग लिये एक ही दासी।
कुछ भय नहीं यदि नारि हो यों खूनकी प्यासी ॥ ८ ॥

जब वीर-उचित शानसे पहुँची वहाँ जाकर।
अकबरकी चतुर दूतियाँ उससे मिलीं आकर॥
धीरेसे मधुर वातोंमें बस उसको भुलाकर।
ग़ायब हुईं सब भूलभुलैयाँमें फँसाकर॥
फौरन ही किरणदेवीने सब जान लिया हाल।
इक दममें मिटा चाहता संसारका जंजाल ॥ ९ ॥

इक ओरसे इक नारि नवेली निकट आई।
आदरसे कहा, "आओ, सखी ! क्या हो भुलाई ?
मैं तुमको अभी देती हूँ वेगमसे मिलाई।
घबराओ नहीं, बोलो, हंसो, भयको भगाई।
ईश्वरकी कृपा जानके आनन्द मनाओ।
हँस-खेलके मुझको भी तनक रङ्ग दिखाओ" ॥१०॥

'वेगमसे मिला दूँगी' वचन सुनके किरणका,
मर्दाना सी आवाज़से, मत्था वहीं ठनका

अवसर न दिया उसको किसी और वचनका।
सब काम बिगड़ जायगा मौक़ा दिये क्षणका॥
यह सोच उसे भूमिपै यों धमसे गिराया!
मौक़ाही सँभलनेका उसे हाथ न आया॥११॥

"री दुष्ट मुग़लज़ादी! ये क्या बात सुनाई?
क्षत्रानी कहीं करती है तुर्कोंसे मिताई?
तू जानती है, मैं हूँ सकतसिंहकी जाई।
चित्तौरका राना(१) है मेरे बापका भाई॥
बेगमसे मिलानेका तुझे देती हूँ इनआम।
अब आगेसे करना न पड़ैगा तुझे कुछ काम" ॥१२॥

यों कहके गला उसका तो इक करसे दबाया।
इक हाथसे सीनेपै कटारा भी अड़ाया॥
"ले बोल हरामिन! कि तू है कौनकी जाया?
किसने है तुझे मुझसे ये कहनेको पठाया?
यदि सत्य कहैगी तो तेरा प्राण बचैगा।
बकनेसे बृथा खूनसे खञ्जर ये रचैगा" ॥१३॥

संकटमें पड़े प्राण, तो यों बोल सुनाया।
"शाबाश किरण देवी! तू है वीरकी जाया॥
सुनता था सदा जैसा, तुझे वैसा ही पाया।
पड़नेकी नहीं तुझपै मेरे छद्मकी(२) छाया॥

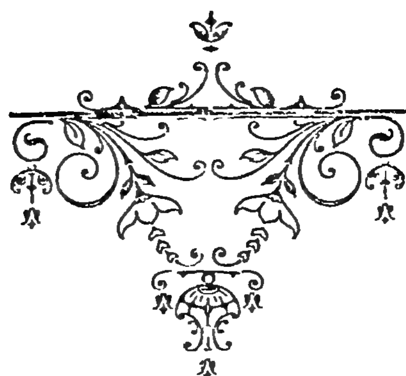
---

(१) राणा—महाराणा प्रतापसिंह। इनकी बहुत बड़ी सचित्र जीवनी हमारे ... है, दाम १॥) रुपया है। (२) छद्म—छल।

बस जान ले अकबर ही तेरे नीचे पड़ा है।
दिल्लीशके सीनेपै कटारा य अड़ा है" ॥१४॥
"रे दुष्ट! छली! तेरा तो मुख देखना है पाप।
राजा तो है रैयतके लिये धर्मका इक बाप॥
लगवाता है क्यों नामपै अपने तू बुरी छाप?
क्यों करता है यह पाप, ज़रा सोच तो कुछ आप?
बस कर लिया सब जो कि तेरे मनमें समाया।
अब आज मेरे हाथसे होता है सफ़ाया ॥१५॥
तुझको किसी वीरासे पड़ा ही नहीं पाला।
करता रहा डरपोकोंसे मुँह अपना तू काला॥
अब आज तू क्षत्रानीका बल देख ले आला।
दे प्राण, कि बन जा मेरे ख़ाविन्दका साला॥
बस अब तो तेरा प्राणपखेरू हूँ उड़ाती।
इक आनमें खन्जरको हूँ उसपार धँसाती" ॥१६॥
अकबरने विनय की, कि "मुझे मार न माई!
निज दास मुझे जान, तुझे राम-दोहाई॥
तू आजसे भगिनी है मेरी, मैं तेरा भाई।
जैसा तू कहै, वैसा करूँ चित्त लगाई॥
पर अब तो मेरे प्राण मुझे दानमें दे दे।
वीरामें क्षमा भी है, सुयश यह भी तो लै ले" ॥१७॥
"कर आज मेरे पतिको नज़र-क़ैदसे आज़ाद।
नौरोज़का मेला भी य कर आजसे बरबाद॥

रखना सदा हर नारिके सत्-धर्मकी मर्य्याद ।
अल्लाहकी सौगन्द सहित इसको रखो याद ॥
तो तुझको अभी छोड़ दूँ, कर चैनसे निज राज ।
यदि झूठ कहैगा तो मुझे जान ले यमराज" ॥१८॥

अकबरने सभी बातें किरणदेवीकी मानीं ।
'ऐसा ही करूँगा' ये किया वादा ज़बानी ॥
सौगन्दसे निज धर्म-सहित रहनेकी ठानी ।
वादे भी किये पूरे, चुकी पापकी बानी ॥
इस साहसी क्षत्रानीको करता हूँ नमस्कार ।
हो हिन्दमें ऐसी ही सुवीराओंकी भरमार ॥१६॥



वीरमतीका वीर

टोड़ाके महाराज नृपतिसिंहकी वेटी ।
थी रूपका भण्डार, तो वीरत्वकी पेटी ॥
था वीरमती नाम, न थी कामकी चेटी ।
निज धर्मकी माती थी, वहुत बुद्धि-लपेटी ॥
धाराके महाराज उदयभानुका वेटा ।
जगदेवने इस रत्नको था भाग्यसे व्याहा ॥ १ ॥

जगदेव प्रमर-वंशका इक रत्न था अनमोल ।
सहता था वहुत अपनी विमाताके विकट बोल ॥
पर एक दिवस क्रोधसे मन ऐसा हुआ लोल ।
अन्तरकी विकट आँचसे ज्यों लोल हो भूगोल ॥
निज भाग्य-परीक्षाके लिये देशको छोड़ा ।
पाटनको चला वीर उड़ाता, हुआ घोड़ा ॥ २ ॥

उस वक्त थी यह वीरमती वापके घरमें ।
इस हेतु समाया यही जगदेवके सरमें ॥
"अव रख तो दिया ही है क़दम आज सफ़रमें ।
देखूँगा, कि क्या शक्ति है क्षत्रीके हुनरमें ॥
बस एक नज़र प्यारीको भी देखते जायें ।
फिर जाके किसी राजाकी सेवामें दिकायें" ॥ ३ ॥

यों सोचके पहुँचा वहीं ससुरालमें आकर।
ससुरालको चिन्तित किया सब हाल सुनाकर॥
दिन तीनमें परदेश चला सबको रुलाकर।
तब वीरमती बोली य निज मातुसे जाकर॥
"आज्ञा हो तो प्राणेशके सँग मैं भी पधारूँ।
परदेशमें पति-सेवा करूँ, जन्म सुधारूँ" ॥ ४॥

माताने सुनी बात, तो आनन्द मनाया।
पुत्रीको बड़े प्रेमसे निज धर्म सिखाया॥
"है नारिका यह धर्म, कि हो जौनकी जाया।
हर वक्त रहै सङ्गमें ज्यों देहकी छाया"॥
यों कहके विदा हेतु तुरत साज सजाया।
जगदेवने इस हालको सुन खेद जताया ॥ ५॥

पर, सासके समझानेसे सब सोच बहाकर।
परदेश चला साथमें निज नारि लिवाकर॥
सामान जो पाया था, सो दीनोंको लुटाकर।
घोड़ोंपै चढ़े दोनोंही हथियार लगाकर॥
जय बोल महामायाकी पाटनको सिधारे।
छलीकी विकट बानिको निज ध्यानमें धारे॥ ६॥

हथियार हो कुछ हाथमें, तलवार हो या तीर।
निज नारि हो निज साथमें, हो चित्त भी गम्भीर॥
घोड़ा जो सवारीका हो, वह होवै ज़रा धीर।
शुभ गन्ध हो सोनेमें, जो हों ध्यानमें रघुवीर॥

इतनेहीसे सामानसे कुछ करके दिखावै ।
बली है वही साँचा, वही वीर कहावै ॥ ७ ॥

दो रास्ते पाटनको थे, इक फेरसे जाता ।
नज़दीकसे था दूसरा, पर शेरका भय था ॥
जगदेवने पूछा, कि "चलैं कौनसा रस्ता" ?
तब वीरमती बोली कि, "क्या शेर करैगा ?
भयभीत अगर आप हैं वन-राजके डरसे ।
अच्छा तो य होता, कि न कढ़ते कभी घरसे" ॥८॥

यो वीरमती-वाक्यसे जगदेव लजाया ।
मुस्काके ज़रा प्रेमसे लज्जाको छिपाया ॥
फिर वीर-उचित शानसे घोड़ेको फिराया ।
भययुक्त ही मारगसे वहीं अश्व चलाया ॥
जगदेवके संग वीरमती चलती बराबर ।
कुछ प्रेम-सहित वारता करती हुई हँसकर ॥ ९ ॥

चलते हुए वह घोर विपिन-भाग जब आया ।
जिस भागसे था शेरने आतङ्क जमाया ॥
जगदेवने तब वीरमतीको ये सुनाया ।
"हो जाओ सजग, करना है हिंस्रकका सफ़ाया ॥
पीछे मेरे घोड़के चलो, हेरते सब ओर ।
बू पाते ही ये घोड़े मचावैंगे महा शोर" ॥१०॥

होती ही थीं ये बातें, कि 'हय' वीरमतीका ।
यों हींस उठा जैसे, कि डर भारी हो जीका ॥

जगदेवका घोड़ा भी बड़े ज़ोरसे हींसा।
और सामने दिखलाई पड़ा शेर चलीसा॥
जगदेवने तलवारको झट करसे थहाया।
और धीर सहित घोड़ेको आगेको बढ़ाया ॥११॥

जगदेव तो इस शेर-तलक जाने न पाया।
वीराने वहीं तान धनुष तीर चढ़ाया॥
इस ज़ोरसे, इस लक्षसे वह तीर चलाया।
सर छेदके उस शेरके जा कण्ठ समाया॥
गर्राया महानादसे और कूद-उछलकर।
यम-धामको जा पहुंचा फकत फाल दो चलकर ॥१२॥

जगदेवने निज प्यारीकी करतूत निहारी।
लज्जा भी हुई, साथही आनन्द भी भारी॥
"क्यों प्यारी! अगर ऐसी है करतूत तुम्हारी।
प्यासी ही न रह जायगी तलवार हमारी?
कुछ भाग भला मुझको भी इस काममें देतीं।
वाजिब था तुम्हें, कीर्ति अकेले न य लेतीं" ॥१३॥

"प्राणेश! तुम्हारी ही दया मेरा सुबल है।
मैं सत्य ही कहती हूँ, तनक इसमें न छल है॥
सब तेज तुम्हारा ही है, जो मुझमें अमल है।
तुम जानते हो, रोना ही अबलाओंका बल है॥
[illegible] कष्ट में यों साथमें रहकर।
संसार बखानैगा भला क्या मुझे कहकर?" ॥१४॥



वीर-क्षत्राणी 'वीरमती दा वीरा'

"इस जोरसे इस लचसे वह तीर चलाया ॐ भर हदके उस शेरके जा कण्ठ समाया।"

Burman Press, C

यों प्रेम-भरे नम्र मधुर बैन सुनाकर।
पति-चित्तमे निज प्रेमका धन चार गुना कर॥
फिर शेरके नख-दाँत धरे झोलेमें लाकर।
पाटनको चले दोनो ही निज अश्व बढ़ाकर॥
टनमें पहुँच तालके तट डेरा लगाया।
विश्राम किया, घोड़ोंको भी घास खिलाया ॥१५॥

टिकनेके लिये अच्छी जगह खोज निकाले।
तब प्यारीको लै जाके वहाँ सुखसे बिठाले॥
और वीरमती रहके यहाँ श्रमको मिटाले।
आनन्द सहित घोड़ोंको कुछ दाना खिलाले॥
ह सोचके जगदेव तो बस्तीको सिधारे।
और वीरमती ठहरी रही ताल-किनारे ॥१६॥

पाटनमें रहा करती थी इक वेश्या धनवान।
छल-छद्ममे वह काटती शैतानके भी कान॥
नाम उसका था जामौती, नगर-भरके नयँ ज्वान।
फन्देमे पड़े उसके, सभी देते थे धन-प्रान॥
कोतवालका लड़का उसे धन खूब गहाता।
नित एक नई नारिका सत्-धर्म नसाता ॥१७॥

जामौती भी उसके लिये नित एक नवेली।
छल-छद्मसे बहलाके लिवा लाती अकेली॥
और रातको ठहराती उसे अपनी हवेली।
सत्-धर्मका उसके था बस अल्लाह ही बेली॥

बस रातको कुतवाल-सुवन ढालके आता ।
जिस तरहसे हो उसका वहाँ धर्म नसाता ॥१८॥

जामौतीकी इक दूती गई ताल-किनारे।
बैठी थी जहाँ वीरमती धीर सँभारे॥
सब भेद लै जामौतीसे जा बैन उचारे।
"बस आज तो खुल जायेंगे सौभाग्य हमारे॥

है तालके तट आई भली नारि नवेली ।
पति ग्रामको आया है, वह बैठी है अकेली" ॥१९॥

जामौतीने झट साजके सुखपाल सवारी।
और साथमें निज लैके भली चार-छः नारी॥
जगदेवकी फूफू बनी, और पास पधारी।
छल-प्रेमसे वीरासे यही बात उचारी॥

"जगदेवसे सुध पाके तुम्हें लेने हूँ आई ।
प्यारी बहू! घर चल करो आनन्द बधाई" ॥२०॥

वीरा यही समझी, कि फूफू-सास है मेरी।
पैरों पड़ी और लाजसे मुख-ओर न हेरी॥
प्रतिपालमें आज्ञाके भी कुछ की नही देरी।
उठ साथ चली, जैसे कि चरवाहेकी छेरी॥

जो सत्यमें वीरत्वमें कुछ छल नही धरते ।
वे अन्यके छल छद्मकी शका नही करते ॥२१॥

थी वीरमती वीरा व सत्‌धर्ममें पूरी।
कुछ चित्तमें सन्देह न शङ्का थी अधूरी॥

समझी, कि है सम्बन्धिनी स्वामीकी अदूरी।
किस भाँति मिटा डालूँ मैं कुल-कानिकी कूरी॥
यह सोचके जामौतीके सँग धाम सिधारी।
जामौतीने रहनेको दी इक ऊँची अटारी ॥२२॥

जामौती थी धनवान, विभव उसका अटल था।
घरमे थीं बहुत दासी, भवन राज-महल था॥
दरवान थे, पहरू थे, बड़ा दासोंका दल था।
इस हेतुसे बस वीराका विश्वास अचल था॥
सचमुच ही वो समझी, कि य है राज-दुलारी।
सम्बन्धमें फूफू है मेरे पतिकी पियारी ॥२३॥

बस शाम हुई और हुआ खाना भी तैयार।
जामौतीने वीरासे कहा खानेको दो बार॥
वीराने कहा, "पतिको जिमा करती हूँ आहार।
बुलवा दो उन्हें, यातो मेरा जान लो इनकार"॥
जामौतीने सिखलाके नई दासी पठाई!
वीराके निकट जाके उसे बात सुनाई ॥२४॥

"जगद्देवजी कहते हैं, कि तुम भोग लगाओ।
मैं फूफाके ढिग बैठा हूँ, मत लाज लजाओ॥
मैं खा चुका, तुम शौक़से निज भूख बुझाओ।
फूफूजी कहैं सोई करो, हठ न बढ़ाओ॥
दस-ग्यारह बजे आऊँगा मैं पास तुम्हारे।
बैठे हैं अभी सारे सुजन पास हमारे" ॥२५॥

दस बज गये, जगदेव नहीं आये अभीतक।
जामौती भी खानेके लिये करती है बक-झक॥
ग्यारह बजे, बारह बजे, सन्नाई निशा छक।
जगदेव नहीं आया तो वीराको हुआ शक॥
बिन खायेही जा एक तरफ़ खाटपे बैठी।
यों सोच रही थी, मनो थी सोचमें पैठी॥२६॥

जगदेव भी जब लौटके उस ताल-तट आया।
और वीरमतीको न किसी ठौरमें पाया॥
घबड़ाया बहुत शोकसे इस ओरको धाया।
उस ओर फिरा, पूछा, पता कुछ नहीं पाया॥
तब हारके उस ताल-किनारेही रहा बैठ।
पत्नीके विरह मानो रहा शोक-गुफा पैठ॥२७॥

बजतेही गजर बारहका, कोतवालका बेटा।
जामौतीसे जा पूछा, 'कोई माल है ताज़ा?'
जामौतीने 'जी हाँ' कहा, कोठेपै पठाया।
हज़रतने बड़ी शानसे जा कोठेपै देखा॥
औरत थी, छलावा थी, कि इन्दरकी परी थी!
शंकासे, अजब शानसे शय्यापै परी थी॥२८॥

कामीने कहा, "प्यारी! बहुत सोच न कीजै।
लो, लाया हूँ यह मोतीकी माला, इसे लीजै॥
मुद्दतसे रहा शौक़में, टुक ध्यान तो दीजै।
ऐसा करो, इस दिलका भी अरमान तो छीजै॥

जामौतीने है मेरा बहुत माल उड़ाया।
तब आज तुम्हें लाके मुझे तुमसे मिलाया" ॥२९॥

जामौती कोई दूती है, यह सुनके सहमकर।
उठ बैठी सँभल सेजपै, बैठी वहीं जमकर॥
बोली कि, "अजी, सत्य मैं कहती हूँ क़सम कर।
धोखा हुआ है तुमको, ज़रा सोचो तो थमकर॥
ऐसा न हो, पड़ जाय मनोरथ सभी सूना।
धोखेमें दहीके, कहीं खा लेना न चूना ॥३०॥

मैं रण्डी नहीं और न हूँ रण्डीकी जाई।
निज नाहको तजि, अन्य पुरुष हैं मेरे भाई॥
तुम और जगह जाके करो चित्तकी भाई।
पर यहाँसे चले जाओ, तुम्हें राम-दोहाई॥
इस दुःखिनी अबलाको सतानेपै न आओ।
ऐसा न हो, फल अपने कियेका अभी पाओ" ॥३१॥

कुतवालके बेटेने बहुत भाँति बुझाया।
धन देनेका वादा किया, फिर भय भी दिखाया॥
जामौतीसे बोला, "यही है तुमने सिखाया?
करनेको निरादर मेरा है मुझको बुलाया?
लो जीनेके कर नीचेसे अब बद किवारे।
कुछ कालमें सानेहीगी यह बैन हमारे" ॥३२॥

जब वीरमती समझी, कि यह जाल है सारा।
तब युक्ति सहित काम चलानाही विचारा॥

बोली कि, "अधिक तुमसे मुझे कौन है प्यारा ?
मैं चाहती थी आपके इस प्रेमकी धारा॥
सुन लीजै मेरा गान भी, मदिरा भी उड़ाओ ।
जम जाये नशा खूब तो फिर रंग मचाओ" ॥३३॥
यों कहके सँभल बैठी, लगी छेड़ने कुछ तान।
"क्या खूब मेरी जान !" लगा कहने व शैतान॥
भर-भरके पियाले भी लगा ढालने नादान।
थोड़ेही समय बाद वह बस होगया मस्तान॥
दम-पट्टीमें(१) ला छीन ली तलवार उसीकी ।
सिर भी था मियाँजीहीका, पैज़ार(२)उसीकी ॥३४॥
तलवार जो हाथ आई तो वीराका बढ़ा दिल।
ललकारके एकबारगी पापीपै पड़ी पिल॥
पंजेमें फँसा, छक्के छुटे, बोल उठा दिल।
"ले इसको भली भाँति लगा कण्ठसे हिलमिल"॥
यों बोल, सपाटेसे लपक शीश उड़ाया ।
और बाँधके गठरीमें तुरत नीचे गिराया ॥३५॥
उस ओरसे आता था चला एक पहरुवा।
गठरीको उठा प्रेम सहित थानेमें लाया॥
जब प्रात-समय खोलके कोतवालने देखा।
'हा राम !' यही कहके लगा पीटने मत्था॥

(१) दम-पट्टी—भुलावा।
(२) पैज़ार—जूती।

जामौतीका घर घेर लिया चारों दिशासे।
बँटने लगे कुतवालकी दायाके बताते ॥२६॥
जामौतीका घर झोंटा लगा बेंत लगाने।
तब डरसे लगी पापिनी सब हाल बताने॥
सुन हाल सकल, कोठेके ऊपर लगा जाने।
देखा, कि खड़ी नारि है इक खड्गको ताने॥
ललकारके बोला, कि "निकल द्वारपै आओ।
क्यों मारा है तुमने इसे, सब हाल बताओ?" ॥२७॥
वीराने कहा, "सामनेसे दूर हो हटकर।
वरना, इसी तलवारसे पठवाऊँगी यम-घर॥
इस वधका सभी पाप है जामौतीके सरपर।
निर्दोष हूँ मैं आपके बच्चेके बराबर॥
यदि जानके अबला मुझे, कुछ जोर करोगे।
बस जानलो, निज पापको तुम भोग मरोगे" ॥२८॥
कुतवालने निज ज्वानोंको यो हुक्म सुनाया।
"घुसजाओ, पकड़लाओ, य है कौनकी जाया (१)?
इसने मेरे फ़रज़ंदको (२) यम-धाम पठाया।
मैं भी करूँगा आज ही दुष्टाका सफ़ाया॥
इस वक्त इसे क़ैद करेगा जो समर-धीर।
उसकोही फक्त समझूँगा मैं ज्वान महावीर" ॥२६॥

---

(१) जाया—स्त्री।
(२) फरजन्द—लड़का।

यह सुनके वचन ज्वानोंको उत्साह समाया।
और एकने उनमेंसे क़दम आगे बढ़ाया॥
ज्यों उसने है दहलीज़पै(१) निज पैर चढ़ाया।
त्यों वीराने तलवारका इक हाथ जमाया॥
सर धड़से जुदा होके लगा चूमने धरती।
पापोंका यही फल है समझ लीजै कुदरती(२) ॥४०॥
फिर दूसरा आया, उसे भी काट गिराया।
फिर तीसरे-चौथेको भी यम-धाम पठाया॥
जो आता, वही होता था इक दममें सफ़ाया।
जैसे हों रकतबीजको खाती महामाया॥
इस भाँतिसे दस ज्वानोंका द्वारेपै किया नाश।
कुतवालके सब होश उड़े, मारी गई आश ॥४१॥
पाटनके महाराजने जब हाल य जाना।
पहुँचा वहीं मौक़ेपै, किये क्षत्रीका बाना॥
हल्ला पड़ा सब ग्राममें, लोगोंने बखाना।
जगदेव भी सुन हाल, वहीं आके तुलाना(३)॥
नर-नाहने(४) पूछा, कि "बता किसकी है नारी?
किस हेतु है तूने मेरी यह सैन सँहारी?" ॥४२॥
"है वीरमती नाम, मैं क्षत्रीकी हूँ कन्या।
पति मेरा है धाराके महाराजका बेटा॥

(१) दहलीज़—चौकठ। (२) कुदरती—स्वाभाविक।
(३) तुलाना—पहुँचा। (४) नरनाह—राजा।

जामौती मुझे लाई यहाँ दे बड़ा धोखा।
लुटवाना मेरा चाहती थी धर्म अनोखा॥
इस हेतु इन्हें मैने है यम-धाम पठाया।
आवेगा निकट उसका यहीं होगा सफ़ाया ॥४३॥
जबतक, कि मेरा स्वामी मुझे दृष्टि न आवै।
है कौन जो तलवार मेरे करसे(१) छोड़ावै?
यदि वीर हो कोई तो मेरे सामने आवै।
और आके मेरे अङ्गपै हथियार चलावै॥
दम रहते तो इस तनको कोई छू न सकेगा।
चाहेगा जो छूना, वही यमधाम तकैगा" ॥४४॥
जगदेव खड़ा भीड़में सब सुन ही रहा था।
जब सुन चुका, तब आके निकट प्रेमसे बोला॥
"मैं आही गया प्यारी! तुम्हें अब नहीं शङ्का।
फल पाया है सब दुष्टोंने, जिसने किया जैसा॥
बस क्रोध तजो, आओ, चलै डेरेपै अपने।
अब छोड़के तुमको न कहीं जाऊँगा सपने" ॥४५॥
पति-बैन सुने वीरमती झट निकल आई।
नर-नाहको परनाम किया नारि(२) नवाई॥
जगदेवने सिधराजसे सब बात बताई।
राजाने कहा, "बेटी! मैं देता हूँ बधाई॥

---

(१) कर—हाथ।
(२) नारि—गर्दन।

वस, आजसे तू बेटी है, जगदेव जमाई।
चलकर मेरे महलोंमें रहो मोद मनाई" ॥४६॥

सिधराजने सब सेनको फ़ौरन ही बुलाया।
'जगदेव है सेनापती' यह हुक्म सुनाया॥
जामौतीका सब माल-मता (१) दममें लुटाया।
दुत्कारके निज राज्यसे भी दूर भगाया॥
वीराको बड़े मानसे महलोंमें उतारा।
जगदेवके कर, सौंप दिया कोश भी सारा ॥४७॥

जगदेवने भी न्यायसे सब राज्य सँभारा।
जो राज्यके वैरी थे, उन्हें ढूँढ़के मारा॥
सब कामोंमें वीरा भी सदा देती सहारा।
इक युद्धमें थी साथ तो दुश्मनको पछारा॥
वीराके विकट क्रोधका आतंक था छाया।
सब वीर उसे कहते थे 'काली महामाया' ॥४८॥

इस हिन्दमें जब ऐसी ही क्षत्रानी हो पैदा।
तब देशके टल सकते हैं सब कष्ट व बाधा॥
हे राम! कृपाधाम! करो हिन्दपै दाया।
क्षत्रानियां पैदा हों, जो हों दर्पमें दुर्गा॥
अन्यायको महिषेश समझ शीश उड़ा दें।
सुख-शान्तिकी इस हिन्दमें धारा सी बहा दें ॥४९॥



(१) माल-मता—धन-सपत्ति।

दुर्गावती

कहते हैं सभी लोग जिसे आज महोबा।
सोलहवीं सदीमें जहाँ चन्देल थे राजा॥
चन्देलकी बेटी थी, विकट नाम था दुर्गा।
निज नामके अनुसार थी बलवान व वीरा॥
मँडलाके नराधीश छ्दलपतिको थी व्याही।
उस वक़्तमें इस हिन्दमें मुग़लोंकी थी शाही॥ १॥
काबुलसे लगा ढाका तलक पूर्वमें फैला।
कश्मीर था उत्तरमें, तो दक्षिणमे था बीजा॥
इस सीमामें बजता था मुग़लज़ादोंका डङ्का।
अकबर था शहंशाह महा राज्यका भूखा॥
दलपति था उसी वक़्तमें मँडलाका प्रजापाल।
स्वच्छन्द था राजा, व प्रजा भी न थी कंगाल॥ २॥
मँडलाके सकल राज्यमे उपजाऊ मही थी।
अधिकांशमे रेवा भी कृपा करके बही थी॥
अकबरको इसे लेनेकी धुन लग ही रही थी।
सरदारोंने यह बात कई बार कही थी॥
पर, गोंडकुली राजासे यों राज्य छिनाना।
मानों था विकट विन्ध्यके बाघोंको जगाना॥ ३॥

पर, काल-विवश छोड़के सुत तीन बरसका।
दलपति तो इधर चुपकेसे सुरलोकको खसका॥
उस ओरसे अकबरका चढ़ा और भी चसका।
पर, सात बरस राज्यका टाँका नहीं टसका॥

दुर्गावती निज पुत्रके हित राज्यका सब काम।
निज हाथसे करती थी, सुमिरती थी सदा राम॥४॥

आसफ़ जो था उस वक्तमें उज्जैनका नव्वाब।
अकबरसे कहा, "हुक्म हो, मँडलापै करूँ दाब"॥
अकबरने सहित हुक्म दिया, युद्धका असबाब।
मँडलापै चढ़ा वीर, हो उत्साहमें ग़रक़ाब॥

दुर्गापै य आसफ़की हुई ऐसी चढ़ाई।
ज्यों शुम्भकी दुर्गापै विकट सैन थी धाई॥५॥

नव्वाबसे दुर्गाने यही बात सुनाई।
"ऐसा करो, जिसमें कि हो दोनोंकी भलाई॥
पतिहीन दुखी बेवापै यों करना चढ़ाई।
बालकका छिना राज्य, न पाओगे बड़ाई॥

शाहोंको मुनासिब नहीं यों मनको चलाना।
बलहीनपै चहिये न कभी हाथ उठाना॥६॥

क्षत्रानी हूँ, बिन मारे-मरे भूमि न दूँगी।
दम रहते न रण-भूमिसे पग पीछे धरूँगी॥
मानोगे मेरी बात तो कुछ मैं भी करूँगी।
अन्याय करोगे, तो विकट रूप धरूँगी॥

चन्देलकी बेटी नहीं ललकारसे डरती ।
मँड़लाकी महारानी नहीं रणसे पछरती ॥ ७ ॥
पर एक दफ़े आपसे यह अर्ज़ है मेरी ।
आशा है, कि मंज़ूरीमें करियेगा न देरी ॥
जय पाके न कुछ आपकी प्रगटेगी दिलेरी ।
हारोगे तो सिर लादोगे बदनामीकी ढेरी ॥
बस, खूब समझ-सोचके हथियार उठाना ।
चातुर्य नहीं सोतेसे बाघिनको जगाना ॥ ८ ॥
अकबरको मेरी ओरसे यह बात सुनाना ।
शाहोंको मुनासिब नहीं बेवाको सताना ॥
हो पुत्र मेरा ज्वान तो फिर राज्य छिनाना ।
ज्वानोहीसे भिड़नेका है बस वीरोंका बाना ॥
बालकपै तथा बेवापै है हाथ उठाता ।
संसारमें वह वीर, सुयश ही नहीं पाता" ॥ ९ ॥
आसफ़ने य वीरत्व-भरी नीति सुनी जब ।
निज फ़ौजके गर्रसे(१) ठठा करके हँसा तब ॥
रानीसे कहो जाके, "भला सुन तो लिया सब ।
हल्ला(२) करूँ कब कोट पै ? यह बात कहो अब ॥
दिन तीनकी मुहलत है तुम्हे, सेन सजाओ ।
इतनी ही दया करता हूँ, कुछ लाभ उठाओ" ॥१०॥

---

(१) गर्रा—घमण्ड ।
(२) हल्ला— चढ़ाई ।

दुर्गाने सुनी बात तो यों क्रोधमें आई।
ज्यों दर्पमें मंजारी हो कुत्तोंकी सताई॥
"दाया करै मुझपर य यवन, भाई रे भाई!
मैं व्यर्थ ही संसारमें क्षत्रानी कहाई॥
रण करनेमें क्षत्रानी दया चाहै यवनकी।
इस हिन्दमें यह बात कहैगा कोई सनकी" ॥११॥

यों कहके उसी रोज़ सजी सेन गोंड़ानी।
जिस सेनको लखि शत्रुका पित्ता बने पानी॥
हथियार लिये घोड़ेपै चढ़ गोंड़ोंकी रानी।
आसफ़की वड़ी फ़ौजके ढिग आय तुलानी॥
निज दर्पसे दुर्गाहीने आरम्भ किया युद्ध।
यह देखके आसफ़ भी हुआ मनमें महा क्रुद्ध ॥१२॥

चलने लगा हथियार विकट वेगसे रणमें।
खन्नाये सभी खाँड़े, चकाचौंध नयनमें॥
रुण्डोंसे पटी भूमि वहाँ थोड़े ही छनमें।
मुण्डोंसे महानादकी धुनि भर गई वन में॥
उस ओरसे यवनोंने विकट वेगसे दाबा।
इस ओर थे ये गोंड़, कि भूतोंका शहाबा? ॥१३॥

पर्वतकी अगम घाटियाँ रुण्डोंसे गईं पट।
नर-रक्तसे खोहोंकी शिला मिलके गईं सट॥
वैताल कहीं पीते थे नर-रक्त घटाघट।
लोथोंपै कहीं स्यार मचाते थे कटाकट॥

दो रोज़ युगुल दलने विकट काट मचाई ।
आधीसे अधिक हो गई सेनाकी सफ़ाई ॥ १४ ॥

दिन तीसरे दुर्गाने महा क्रोध जनाया ।
निज सेनको ललकारके यह हुक्म सुनाया ॥
"बस, आज जो रण-खेतसे घर लौटके आया ।
निज हाथसे कर डालूँगी मैं उसका सफ़ाया ॥
या आज यवन-सेनाको मँडलासे भगाओ ।
या अन्त करो आज ही सुरलोक सिधाओ" ॥१५

रानीके सुने वैन, हुए गोंड़ अँगारा ।
बहने लगी चेहरोंपै विकट क्रोधकी धारा ॥
"यदि आज न रण-खेतमें यवनोंको पछारा ।
सब सेन सहित देशसे उनको न निकारा ॥
तो लौटके धामोंमें न निज पैर धरेंगे ।
सुख-सेजपै रण-खेतहीमें सैन करेंगे" ॥१६

दुर्गाने सुनी गोड़ोंकी यह वीर-प्रतिज्ञा ।
शङ्करको सुमिर हो गई निज दर्पसे दुर्गा ॥
घोड़ेपै चली वीरा लिये हाथमे भाला ॥
सब वीरोंके दिल हो गये हिम्मतसे दुवाला ॥
'जय बोल महामायाकी' संग्रामको धाये ।
आसफ़ भी खड़ाही था उधर ताक लगाये ॥१७

इस ओरसे गोड़ोंने किया वेगसे धावा ।
उस ओरसे यवनोंने विकट वेगसे दावा ॥

होने लगा हर ओरसे हुङ्कारके हमला।
सन्नाये कहीं तीर, कहीं भाला भी चमका॥
गुर्दाने कहा 'थप', तो कटाराने कहा 'घप'।
छप बोली सिरोही, तो कहा खाँडोंने खप-खप ॥१८॥

दुर्गाने, भी, दुर्गाको सुमिर हाथ उठाया।
वीरत्वके भण्डारसे लङ्गरसा लुटाया॥
इस वीरको भालेका जो फलहार कराया।
उस वीरको खाँडेका विमल नीर पिलाया॥
रण-गङ्गके तट रानीने यह ढङ्ग दिखाया!
जो सामने आया, उसे भरपेट छकाया ॥१९॥

गोंड़ोंने भी जी-जानसे की डटके लड़ाई।
और मारके यवनेशकी सब फ़ौज भगाई॥
रण-भूमिमें दुर्गाकी विजयकी थी दोहाई।
आसफ़से बड़े वीरने जय-श्री नहीं पाई॥
तब हिन्दकी ललानियाँ यों होती थीं वीरा।
अब हिन्दके क्षत्री हैं फकत कोटके कीरा! ॥२०॥

उज्जैनमें जा फिरसे नई सेन सजाई।
दो वर्षमें आसफ़ने की इक और चढ़ाई॥
इस बार भी दुर्गाने वही शान दिखाई।
निज शक्तिसे यवनोंकी अनी मार भगाई॥
यों दो दफा उज्जैनके आसफको हराया।
वीरत्वका यश लोकमें भरपूर भराया ॥२१॥

दो वर्ष गये बीत तो आसफ़ने विचारा ।
"अब फिरसे चढ़ाई करूँ दुर्गापै तिबारा ॥
इस बार तो चल जायगा जादू भी हमारा ।
दुर्गाके सिपाहोंको है धन-बाणसे मारा ॥
दो-चार, छः-दस-बीस मेरा सकते हैं क्या कर ?
वल्लभ* है सो बालक है, नहीं उसका है कुछ डर" ॥२२॥

ले बीस सहस फ़ौज चढ़ा मण्डला-गढ़पर ।
दुर्गाने भी तैयार की निज सैन सँभलकर ॥
वल्लभ भी चला लड़नेको निज घोड़ेपै चढ़कर ।
दुर्गा भी चली हाथीपै ले साथमे परिकर ॥
'जय कालिका' 'अल्लाह व अकबर' का पड़ा शोर ।
होने लगा हर ओरसे संग्राम महा घोर ॥२३॥

वल्लभ था अवस्थामे फ़क़त चौदा बरसका ।
पर, शत्रुका दल देख, लगा ख़ूनका चसका ॥
तलवारसे काटा, किसीको साँगसे मसका ।
जिस ज्वानपै टूटा, किया यमराजके वसका ॥
जिस ओर झपट जाता, उसी ओर था घमसान ।
दम भरमें कतर डाले कई झुड मुसलमान ॥२४॥

दुर्गा भी धनुष-बाण लिये करती थी बौछार ।
जिस ओरको धर तानती, करती थी विकट मार ॥

---

* दुर्गावतीके पुत्रका नाम "वीर वल्लभ" था, परन्तु कवितामें इतना बड़ा शब्द न समानेके कारण केवल वल्लभ लिखा गया है ।

दुर्गाके निशित तीर थे या यमकी विकट धार।
लगते ही यवन गिरते थे बस मारके चिक्कार॥

दुर्गाकी विकट मारने यवनोंको छकाया।
पर, घरकी महा फूटने दुर्गाको हराया ॥२५॥

वल्लभके कई घाव लगे, हो गया कमज़ोर।
घोड़ेसे गिरा, मच गया बस रणमें महा शोर॥
उठवाके उसे दुर्गाने पठवा दिया इक ओर।
गड़बड़ पड़ी सेनामें भगे रणसे लुकुमचोर* ॥

धन देके मिला रक्खे थे आसफ़ने कई गोंड़।
वे सेन सहित भाग उठे युद्धसे मुँह मोड़! ॥२६॥

यह देखके दुर्गा नहीं घबराई तनक भी।
लड़ती रही, मन आई नहीं भयकी भनक भी॥
इस वक्तमें द्रष्टव्य थी वीराकी सनक भी।
विश्राम नहीं लेती थी लड़नेसे छनक भी॥

बस तीन सौ गोंड़ोंको लिये रणमें डटी थी।
हर ओर यवन-वीरोंकी सेना हो पटी थी ॥२७॥

संयोगसे दुर्गाके लगा आँखमें इक तीर!
निज हाथसे खींचा उसे, पीड़ा सही गम्भीर!!
फिर दूसरे इक बानने गर्दनको दिया चीर!
उसको भी तुरत खींचके फेंका, न तजा धीर!!

---

* जान-बूझकर मुँह छिपानेवाले।

ण-भूमिमें करती रही बौछार सरोंकी।
अब जैसी नहीं देखते हम ताब नरोंकी ॥२८॥

हाथीकी अमारीमें जो सरदार था इक साथ।
भयभीत हो दुर्गासे कहा जोड़के निज हाथ॥
"महरानीजी! यवनोंसे न कटवाइये निज माथ।
अब छोड़के हठ, मान लो यवनेशको निज नाथ॥
दो फेक धनुष-बाण; कहो, 'मान ली अब हार'।
यह सुनके यवन-वीर नहीं घालेगे हथियार" ॥२६॥

दुर्गाने कहा, "ऐसा नहीं मुझको है मंज़ूर।
इस वक्त मेरे सामनेसे तुम भी हटो दूर॥
यों दीन वचन कहना, न क्या मरना है भरपूर?
इससे तो यही अच्छा है, रण-खेतमें हूँ चूर॥
कह दीन वचन शत्रुसे निज प्राण बचावे।
उस क्षत्रीको धिक्कार, उसे कालिका खावे" ॥३०॥

यों कहके लिया खींच विकट एक कटारा।
हरनाम सुमिर ज़ोरसे निज पेटमें मारा॥
बस प्राण-पखेरू वहीं सुरलोक सिधारा।
बहने लगी संसारमें शुभ-नामकी धारा॥
निज देशके निज नामके हित प्राण गँवाया।
दुर्गाका सुयश 'दीन' ने इस हेतु है गाया ॥३१॥



कर्मदेवी, कर्णवती, कमलावती

जिस वक़् कि अकबरने था चित्तौरको घेरा।
हर ओरसे तोपोंका था घनघोर दरेरा॥
जयमलने किया जिस समय सुरलोकमें डेरा।
चित्तौरकी रक्षाका पड़ा 'फ़त्ता' पै फेरा॥
उस वक़्की हूँ बात तुम्हें आज सुनाता।
संवत हूँ सही सोला सौ चौबीस बताता॥ १॥

माताकी तरह जन्म धरा* पूज्य व प्यारी।
पीड़ित थी महा जिस समय यवनेशकी मारी॥
फ़त्तासे विकट वीरने सब बात सँभारी।
होने न दी चित्तौरके वीरत्वकी ख़्वारी॥
महतारी, बहिन, पत्नी सहित युद्ध मचाकर।
दिन तीन तलक रक्खा है चित्तौर बचाकर॥ २॥

कर्मा थीं फ़तेहसिंहकी जननी महा वीरा।
थी कर्णवती जेठी बहिन युद्धमें धीरा॥
कमलावती पत्नी थी फ़तेहसिंहकी वीरा।
इन तीनोंका फ़त्ता ही था अनमोल सा हीरा॥
अकबरसे महावीरसे जब जाके भिड़ा ज्वान।
तब तीनोंने ऐसा किया निज चित्तमें अनुमान॥ ३॥

---

*धरा—जन्म-भूमि।

"बेटा है मेरा सिर्फ़ अभी सोला वरसका।
चक्खा नहीं कुछ स्वाद भी संसारके रसका" ॥
"भाईको मेरे यों लगै रण-खेतका चसका।
मैं जेठी हो घरमें रहूँ, है काम अकसका(१)" ॥
"प्राणेशका चल युद्धमें मैं हाथ बटाऊँ।
अर्द्धाङ्गिनी होनेका सही तत्त्व दिखाऊँ" ॥ ४ ॥

इस भाँतिके अनुमानसे ये तीनों सुवीरा।
बाने सजे रण-खेतके, थीं चित्तमें धीरा ॥
बक्तरको पहन, बाँध लिया फेंटसे चीरा।
सिर कूँड धरा, कटिसे कसा भाथ सतीरा(२) ॥
कंधेपै धनुष, करकी अँगुलियोंमें अँगुस्तान।
घोड़ेपै चढ़ी तीनों चलीं युद्धके मैदान ॥ ५ ॥

इक ओर था फ़त्ता तो महा युद्ध मचाता।
जो सामने आता, उसे बस भूमि चुमाता ॥
अकबर सा महावीर न था सामने आता।
छल-छद्मसे निज सेनको हर ओर घुमाता ॥
इस भाँतिसे फ़त्ताको विचारा था थकाना।
पर चल न सका कर्मासे यह छद्म पुराना ॥ ६ ॥

इक ओर बहू, बेटी सहित घोड़ेपै असवार।
कर्मा भी पहाड़ीपै डटी तकने लगी वार ॥

---

(१) अकसका—अनुचित।

(२) भाथ सतीरा—तीरोंसे भरा तर्कश।

अकबर था किया चाहता फ़त्ताको गिरफ्तार।
यह देखके इन तीनोने की तीरोंकी बौछार॥

और जोरसे इन तीनोंने की ऐसी विकट मार।
अकबरके बहुत वीर हुए युद्धसे बेकार॥७॥

अकबरने य चाहा कि, "इन्हें जीता पकड़ लूँ।
करके क्षमा फिर प्रेमके बंधनसे जकड़ लूँ॥
फ़त्ताको भी रण-भूमिमें निज हाथसे धर लूँ।
चित्तौरको इस भाँतिसे अधिकारमें कर लूँ"॥

निज सेनमें सब वीरोंको यह बात सुनाई।
"जीता जो पकड़ ले इन्हें वह है मेरा भाई"॥८॥

इस हेतु बहुत वीरोंने निज शक्ति दिखाई।
पर एक भी वीरा न किसी हाथमें आई॥
जो वीर निकट जाता, वही करके लड़ाई।
पड़ता वहीं इक आनमे यमघरमे दिखाई॥

इस भाँति हुए सैकड़ों यमधामके वासी।
तब छा गई यवनेशके चेहरेपै उदासी॥९॥

क्षत्रानी अगर क्रोधसे निज जोशमे आजाय।
कुल-धर्म अगर उसके ज़रा दिलमे समा जाय॥
वीरत्वका मद उसके तनक आँखमें छा जाय।
हथियार हो कुछ हाथमें, रण-भूमि भी पा जाय॥

फिर कौन है ससारमें जो उसको मनावे?
बिन प्राण दिये उसका नशा शांत करावे॥१०॥

अवलाका विकट क्रोध है तलवारकी धारा।
तिसपर भी जो क्षत्रानी हो और वंश करारा॥
इतनेपै भी हो राज्यसे सम्बन्ध अन्यारा।
हो एक ही सुत, भाई, ख़सम प्राणसे प्यारा॥
फिर उसके लिये नारि जो हथियार उठावै।
है कौन सुभट उसको जो फिर हाथमें लावै ? ॥११॥

अकबर ही स्वयं साथ लिये सौक विकट वीर।
तीनोंको पकड़ने चला मन धारे महा धीर॥
चढ़ते ही पहाड़ीपै लगे झड़ने विकट तीर।
और ज्वान पचासी गिरे तब छोड़ दिया धीर॥
झंडेसे इशारा किया निज सैनको ललकार।
"अब काम अवराका है करौ गोलियोंकी मार" ॥१२॥

गोली चली हर ओरसे अवलाओंके दिस ज़ोर।
घोड़ेसे गिरी कर्णवती, घाव लगा घोर॥
यह देख किया कर्माने रण और भी घनघोर।
बरसाने लगी तीर मघा-मेघसे हर ओर॥
कमलावती भी सासके दहने ही डटी थी।
हरओर पहाड़ीके, यवन-सेन पटी थी ॥१३॥

कमलावतीके तीन लगीं गोलियाँ इक साथ।
भुजदण्ड हुए चूर तो बस झूल पड़े हाथ॥
घोड़ेसे गिरी कहके, "मेरे प्यारे! मेरे नाथ!
जाती हूँ मैं सुरधामको गाती हुई गुण-गाथ॥

सम्भव हो तो हे प्यारे! मेरे पीछे ही आना ।

इस युद्धमें यवनोंको न तुम पीठ दिखाना" ॥१४॥

बेटी व बहू होगईं रण-भूमिमें बेकाम ।
यह देखके कर्माने लिया ज़ोरसे हरिनाम ॥
और करने लगी दोनोंके आरामका कुछ काम ।
इतनेहीमें आ एक लगी गोली हृदय-धाम ॥

बस गोलीके लगते ही गिरी घूमके वृद्धा ।

छूटा न धनुष हाथसे, यों रणकी थी श्रद्धा ॥१५॥

फ़त्ताको ख़बर पहुँची तो उस ओर पधारा ।
महतारी, बहिन, पत्नीका यह हाल निहारा ॥
हरइकको उठाया, दिया निज करका सहारा ।
मरही चुकी थी कर्णवती चोटके द्वारा ॥

कमलाने तनक हेरके बस मूँद लिये नैन ।

कर्माने कहे अन्त समय पुत्रसे ये बैन ॥१६॥

"हे पुत्र! रहै देहमें जबतक कि तनक प्रान ।
निज देशके हित करना महाघोर घमासान ॥
क्षत्रीका यही धर्म है, कर लेना भले ध्यान ।
निज धर्मके पालनमें सहायक हो धनुष-बान ॥

मैं चलती हूँ कुछ मेरे लिये शोक न करना ।

इस वक्त तेरा धर्म है तुर्कोंको कतरना ॥१७॥

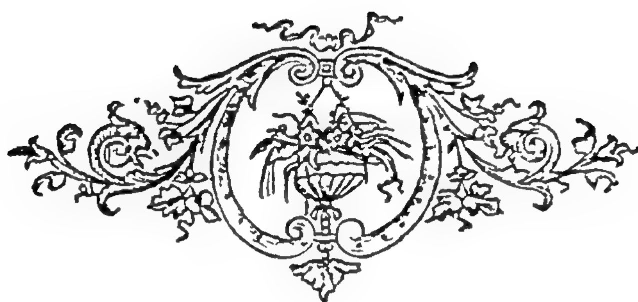
निज देशके हित युद्धमें उत्साह दिखाना ।
मौक़ा पड़ै निज रक्तसे रण-भूमि सिंचाना ॥

निज शत्रुका सिर काटके चंडीको चढ़ाना।
क्षत्रीके विकट बानेको हर्गिज़ न लजाना॥
धनु-बान्से, तन-प्रानसे निज देश बचाना।
हे पुत्र! मेरे दूधका यों मोल चुकाना" ॥१८॥

यों कहके तजे प्राण बसी स्वर्गमें जाकर।
फ़त्ता भी फ़राग़त हुआ लाशोंको जलाकर॥
इन तीनो सुवीराओंने निज धर्म दिखाकर।
इस हिन्दके इतिहासमें निज नाम लिखाकर॥
उज्ज्वल किया मुख हिंदका संसारके आगे।
यश होता है निज देशके हित प्राणको त्यागे ॥१९॥

हे राम! दयाधाम! विनय मेरी पै दो कान।
इस हिन्दके दुर्भाग्यपै दो कुछ तो भला ध्यान॥
इस हिन्दमें हो क्षत्रियोकी फ़त्ता सी सन्तान।
महतारी, बहिन, पत्नी हों इन तीनोके अनुमान॥
हर नारिके शुभ चित्तमें उत्साह भरा हो।
वीरत्व-सहित चित्तमें सतधर्म खरा हो ॥२०॥



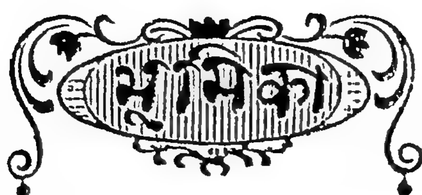


चौथा रत्न

वीर-माता

यश-पुष्प हैं दुनियामें अभी इनके महकते।
हैं नाम अमर इनके सितारोंसे चमकते॥
पुत्रोंको न होने दें कभी धर्मसे अनजान।
बस ऐसीही माताओंको यश देता है भगवान॥

भगवानदीन।



हे राम! कृपाधाम! कृपा-कोर इधर हो।
बस ध्यान मेरा जाय तेरा रूप जिधर हो॥
आकाश हो, पाताल हो, जङ्गल हो, कि घर हो।
बस प्रेममे छाका रहूँ, जग-जनसे निडर हो॥
पाठकके हृदयको भी सुगम प्रेमसे भर दो।
रस-वीरसे नित प्रेम बढ़ै बस यही वर दो॥ १॥

वीरोहीमें लखता हूँ अधिक आपका कुछ भाग।
इस हेतु मेरे दिलको है रस-वीरसे अनुराग॥
यदि सत्य हो यह बात, तो दो बुद्धि भी बेदाग़।
गाया करूँ रस-वीरके उत्साह-जनक राग॥
उत्साह ही ससारमें शुभ कामोंका है मूल।
पैदा हों सुफल कैसे, लगै पहले न यदि फूल?॥ २॥



सुमित्रा

"वैदेहीको लंकेशने दंडकसे उड़ाया।
गृद्धेशने रोका तो उसे मार गिराया॥
फिर बागमें लेजाके उन्हें अपने बसाया।
रघुवीरको इस भाँति विरह-दुःख दिखाया॥
रावणने तो निज नामको यों सत्य बनाया।
आनन्द-भवन रामको भी खूब रोलाया॥

आगे चले सुग्रीवको निज मित्र बनाया।
बलधाम विकट वालिको सुरधाम पठाया॥
फिर मैथिलीकी खोजमें कुछ काल बिताया।
पाते ही पता सिन्धुको तत्काल बँधाया॥
ले मित्रका दल बोल दी लंकापै चढ़ाई।
संक्षेपसे यह राम-खबर तुमको सुनाई॥

रण-खेतमें अरि-पुत्रने है युद्ध मचाया।
वीरत्वसे हम लोगोंका है होश उड़ाया॥
वरदान विकट शक्तिसे है उसने जो पाया।
उस बलसे किये डालता है दलका सफ़ाया॥
वर-वीर लखनलालको इक साँग हनी है।
प्राणोंपै समझ लीजिये बस आके बनी है॥

लङ्काके चतुर वैद्य सुखेनाकी वताई।
मैं लेने गया था य उन्हीं हेत दवाई॥
अब जाता हूँ मैं, आप हैं उनके सगे भाई।
कर लीजै जो कुछ आपसे बन आवै भलाई॥
बस सूर्य उदय होते लखन फिर न बचैगे।
ब्रह्मा भी अगर आके उन्हें आप रचैगे ॥४॥

हा! रामके सङ्कटकी भला कौन कहूँ बात!
निज राज्य तजा, वनके सहे दुःख भी दिनरात॥
पत्नीका विरह, युद्धमे मरता है पड़ा भ्रात!
अब इससे अधिक कौन कहूँ रामकी कुशलात?"
यों कहके महावीर तो लङ्काको पधारे।
उमड़ाये अवध-धाममें बस शोकके नारे ॥५॥

हर ओर यही शोर था, "हा शोक! लखनलाल!!
हा ईश! दयाधीश! य क्या सुनते हैं सब हाल!!
क्या फूट गया उर्मिलाका भाग्य-भरा भाल?
दशरथके महापुण्यका क्या लुट गया सब माल?
कौशल्याके शुभकर्मोंका हा ईश! यही फल?
यों रामपै क्यों छाया विपति घोरका बादल? ॥६॥

क्या राज्यके विप्रोने तजा होमका करना?
क्या छोड दिया क्षत्रियोंने न्याय वितरना?
क्या वैश्योंके मन भाया है गोरक्षा न करना?
क्या दासोंके मन आया है स्वच्छन्द विचरना?

गुरुदेवके जप-यज्ञका, हा ईश ! यही फल ?
यों रामपै क्यों छाया, विपति घोरका बादल ? ॥७॥

क्या दिलमें भरतलालके कुछ लोभ है आया ?
शत्रुघ्नके क्या मनको मदनने है सताया ?
रघुकुलके किसी नरके हृदय पाप समाया ?
या मनमें किसी नारिके छल-छद्म है छाया ?

ऐसा नहीं तो कैसे विपत रामपै आई ?
रावणने हरी नारि, पड़ा मरता है भाई" ॥८॥

इस भाँति अवध-भरमें मचा ज़ोरसे हल्ला।
था शोकसे ख़ाली न कोई घर, न महल्ला॥
मुखमें न दिया लोगोंने इक दाना भी ग़ल्ला।
थे बैठे बने चित्र, धरे शोकका पल्ला॥

यह हाल अवध-भरका सुमित्राने निहारा।
थी वीरकी माता तो तुरत यत्न विचारा ॥९॥

"यों शोकके करनेसे नहीं कोई बचा है।
होता है वही, जो कि विधाताने रचा है॥
रामूका* मृदुल चित्त विरह-रविसे तचा है।
वैदेहीके हित शत्रुसे रण घोर मचा है॥

लक्ष्मण है अनुज, युद्धमें रामू है अकेला।
भाईसे मदद पानेकी इस वक्त है वेला' ॥१०॥

---

*रामू—सुमित्राजी वात्सल्यभावसे 'राम'को 'रामू' कहती थीं।

यह सोचके शत्रुघ्नको निज पास बोलाया।
सिर सूँघ बड़े प्रेमसे कर सिरपै फिराया॥
माताका मनोभाव उन्हें स्वच्छ दिखाया।
क्षत्रानीका क्या अर्थ है, यह साफ़ बताया॥
भाईके लिये भाईका कर्तव्य लखाया।
क्या तत्व है कुल उच्चका सब सत्य सुझाया ॥११॥

"विप्रानी सदा धारती है गर्भ इसी हेत।
पैदा करै संसारमें इक व्यक्ति महाचेत॥
संसारके उपकारसे यश पावै महाश्वेत।
खुद बोवै, बोवावै भी सुभग धर्मके कुछ खेत॥
जो विप्र नहीं करता है तप-हेत कमाई!
माताने उसे जनके वृथा बैस गँवाई ॥१२॥

क्षत्रानी सदा धारती है गर्भमें बालक।
पैदा करै संसारमें नर-धर्मका पालक॥
दीनोंका बनै त्राण, हो दुष्टोंका भी घालक।
अन्याय-निवारक भी हो, शुभ न्यायका चालक॥
ऐसा न हो छत्री तो उसे कीट ही जानौ।
जननेमें वृथा कष्ट सहा मातुने मानौ ॥१३॥

वैश्यानी इसी हेत करै गर्भको धारण।
सुत उसका बनै देशकी संपत्तिका कारण॥
रक्षा करै गो-वंशकी, दुर्भिक्ष-निवारण।
विद्याका करै मान, जो है देश-उबारण॥

ऐसा न हो यदि वैश्य तो निश्चय ही अधम है ।
निन्दा करें उस माताकी जितनीही सो कम है ॥१४॥

शूद्रानीके अवधानका बस एक सुफल है ।
पैदा करै सुत ऐसा जो सेवामें अचल है ॥
स्वामीहीकी आशा, जिसे स्वामीहीका बल है ।
सेवामें निपुण, धर्ममें रत, मनका निछल है ॥
जो दास न तन-मनसे करै स्वामीकी सेवा ।
अच्छा हो जो यमराज करैं उसका कलेवा ॥१५॥

क्षत्रानी हूँ बेटा! तुझे इस हेतु है पाला ।
संसारमें भर जाय तेरे यशका उजाला ॥
क्षत्रानियोंमें होने न दे मुँह मेरा काला ।
संसारमें रघुवंशका कुछ बोल हो बाला ॥
इस वक्त जो कहती हूँ उसे चित्तमें धर ले ।
मौका है भला नाम अमर अपना तू कर ले ॥१६॥

आया है जो संसारमे इक रोज़ है जाना ।
भोंदू* है जो ह्याँ रह न करै यशका ठिकाना ॥
क्षत्रीके लिये न्याय सहित धर्म कमाना ।
बस एक यही है कि धरै वीरका बाना ॥
अन्याय-निवारण करै, शुभ न्याय प्रचारै ।
सद्धर्मकी बाधा भी भली भाँति निवारै ॥१७॥

---

*भोंदू—बेसमझ, मूर्ख ।

क्षत्रानी तभी पुत्रवती अपनेको मानै।
'रण-खेतमें जूझा है तनय', लोक बखानै॥
जूझा है लखनलाल बड़े ठौर-ठिकाने।
सँग भाईके जाता था बड़ी भाभीको लाने॥
मै अर्द्ध हुई पुत्रवती, अर्द्ध हूँ बाकी।
हे पुत्र! तुझे मेरी कमी जायगी ताकी? ॥१८॥

वश होके युवा-वैसके यदि मोह करैगा।
पत्नीके मधुर प्रेमका कुछ ध्यान धरैगा॥
इस वक्त अभी जाके न रावणसे लड़ैगा।
तो जान ले बस, पापके कुण्डेमे पड़ैगा॥
भाई भी तुझे जानेंगे पत्नीके वशीभूत।
जो पाके खबर कुछ न दिखावैगा तू करतूत ॥१९॥

रामूकी दशा देख, कि पत्नीसे छुटा है।
पत्नीको तजे वीर-भरत तपमे जुटा है॥
पत्नीसे पृथक वीर-लखन रणमें कुटा है।
इन तीनो ही भ्राताओंका यो मोद लुटा है॥
तुझको नही वाजिब कि रहै घरमें सपत्नीक।
इस हेतु तुझे युद्धके हित जाना ही है ठीक ॥२०॥

भाईके लिये भाईका है धर्म महाना।
आनन्द-समय उसके महा मोद मनाना॥
निज बाहुके बल, बुद्धिके बल, भीर हटाना।
सम्पत्तिमे साझी हो, तो संकट भी बँटाना॥

इस हेतु उचित है तुझे लङ्का अभी जाना ।
माता ही समझ भाभीके हित युद्ध मचाना ॥२१॥

भावजको भी माताके सरिस चित्तमें धरना ।
मर्याद रहे उसकी, वही काम भी करना ॥
जो चाहे कोई उसके अचल धर्मको हरना ।
बस मारनेमे उसके कभी देर न करना ॥
लङ्काको तेरा जाना इसी हेतु उचित है ।
बिन जाँचे ही कुछ देना मदद, सत्य छहित है ॥२२॥

निज वंशकी सतियोंका सती-धर्म रखाना ।
निज बन्धुका संकष्टमे कुछ हाथ बँटाना ॥
छोटोंको सहित नेह कुलाचार सिखाना ।
गुरु लोगोका भय मानके सम्मान बढ़ाना ॥
दासोंका भली दृष्टिसे सम्मान भी करना ।
यह उच्च-कुली धर्म है, निज ध्यानमें धरना ॥२

तू रामके इस कामसे यदि पीछे हटैगा ।
हे वत्स ! अभी जाके न रण-थलमे डटैगा ॥
तो जान ले बस तुझसे मेरा चित्त फटैगा ।
यह पाप अवज्ञाका न काटेसे कटैगा ॥
रामू है विकट वीर अकेला ही लड़ैगा ।
पर तुझको तो संसारमें शरमाना पड़ैगा ? ॥२

रामूकी य आपत्ति बहुत दिन न रहैगी ।
लंकेशके शोणितकी नदी शीघ्र बहैगी ॥

पर सोच ले, दुनिया तुझे क्या वात कहैगी ?
यह पुत्रकी अपकीर्ति सुमित्रा न सहैगी ॥
जिस माताका हो वीर लखन-लाल सा बेटा ।
वाजिब नही सम्मान करे उसका तू हेटा ॥२५॥
जिस गर्भमें वर-वीर लखन-लालको धारा ।
तेरा भी उसी पेटमे है भार सँभारा ॥
दी जैसी लखन-लालको है दूधकी धारा ।
मुखमे भी तेरे वत्स ! वही दूध है ढारा ॥
जिन हाथोंसे, जिस गोदमें है उसको सोलाया ।
तुझको भी उन्हीं हाथों, उसी ठौर खेलाया ॥२६॥
मैंने तो नहीं दोनोंमे माना कभी कुछ भेद ।
समतुल्यहो पोषणमें बहाया है सदा स्वेद ॥
सद्भावमें मेरे जो निकालैगा तनक छेद ।
सुत-मातुका सम्बन्ध अभी करती हूँ विच्छेद ॥
अपनेको विवश 'अर्द्ध-सपुत्रा' ही कहूँगी ।
कापुतकी माताका न अपमान सहूँगी' ॥२७॥
जननीके सुने वैन तो चेहरा दमक आया ।
रघुवंशके वीरत्वका तारा चमक आया ॥
भैयोके कठिन कष्टकी दिलमें पड़ी छाया ।
भावजके महा दुःखने आ दिलको दबाया ॥
माताके चरण छूके सुभग वैन उचारा ।
उमड़ाके चला मानो सरस वीरका नारा ॥२८॥

"आज्ञा हो तो इस ठौरसे रावणको पछारूँ ।
आज्ञा हो तो घननादको इक बाणसे मारूँ ॥
लङ्काको कहो खोदके सागरमें बहा दूँ ।
वारीशको यों दावूँ कि लङ्काको नहा दूँ ॥
झट बोल, कि क्या करके अभी तुझको दिखा दूँ ?
किस दुष्टको, किस भाँतिकी, क्या सीख सिखा दूँ ? ॥२९॥
आज्ञा हो तो भावजको पलक मारते लाऊँ ।
लङ्काको उलट दूँ अभी सागरमे डुबाऊँ ॥
आज्ञा हो तो सिर शत्रुके लोटनसे लोटाऊँ ।
आज्ञा हो तो रावणको यहाँ बाँध मँगाऊँ ॥
तूने जो पिलाई है मुझे दूधकी धारा ।
बल उसके ही घर बैठे करूँ काम य सारा" ॥३०॥
माताने कहा, "व्यर्थ है क्यों बात बनाता ?
बच्चोंकी तरह मायामें है मुझको भोराता(१) ?
डरसे तुझे उस ओर तो जाया नहीं जाता ।
बस आजसे तू मुझको न कहना कभी माता ॥
दल साजके इस वक्त जो लंकाको सिधारा ।
तब जानूँगी तू सत्य मेरा पुत्र है प्यारा" ॥३१॥
सुन ऐसे वचन पीट दिया युद्ध-नगारा ।
सब सैन्यको फ़ौरनही दिया रणका बकारा(२) ॥

---

(१) भोराता—भुलावा देता ।
(२) बकारा—रणके हेतु तैयार होनेकी आज्ञा ।

सुनते ही ललकारेको जुड़े सैन्य अपारा।
शस्त्रोंको सँभारा, भले अस्त्रोंको सुधारा॥
नज-धजके सकल शूर महल-द्वारपै आये।
इतनेमें समाचार ये गुरुराजने पाये ॥३२॥

घबराये हुए दौड़े महल-द्वारपै आये।
पूँछा कि "कहो तुम गये किस हेतु जुटाये?
लङ्केशके क्या वीर हैं कुछ युद्धको आये?
इस वक्तमें रण-घोष गये कैसे बजाये?
शत्रुघ्न कहाँ हैं, मुझे अति शीघ्र दिखाओ।
रण-नादकी सब सत्य कथा मुझको सुनाओ" ॥३३॥

इतनेहीमें बस आगये शत्रुघ्न वहींपर।
पद छूके सकल हाल कहा उनसे सरासर॥
सुन हाल, समझ तत्व, सुमित्राके गये घर।
समझाया कि "दया करती हो यों मोहमे आकर?
तेरे वहाँ जानेसे न कुछ काज सरैगा।
इस राज्यकी रक्षा कहो फिर कौन करैगा? ॥३४॥

वर-पुत्र लखनलाल तेरा है भला-चङ्गा।
मिट जायगा अति शीघ्र ही लङ्केशका दङ्गा॥
अतिशीघ्र लखन पावैंगे यश-नाम उतङ्गा।
जय पावैंगे रघुवीर, य है बात अभङ्गा॥
निर्दोष सती सीताको निज सग लिये राम।
अतिशीघ्र सुशोभित करैंगे आके अवध धाम' ॥३५॥

गुरुदेवके कहनेसे सुमित्राको हुआ धीर।
शत्रुघ्नसे बोली किये कुछ भाव सा गम्भीर॥
"हाँ, जान लिया तू भी है सुत मेरा बड़ा वीर।
गुरु-राजके कहनेसे धरो छोर धनुष-तीर॥
सब सैन्यसे कह दो, सभी निज धामको जावैं।
अत्यन्त सजग रहके अवध-राज्य रखावैं" ॥३६॥

हे राम! दयाधाम! दया 'दीन'पै करना।
है तेरी कृपा-कोर कठिन काल-कतरना॥
अपकृत्योंपै मेरे कभी कुछ ध्यान न धरना।
इस काव्यके सब प्रेमियोंको मोद वितरना॥
भारतके लिये 'दीन' है यह नित्य मनाता।
शत्रुघ्नसे हों पुत्र, सुमित्रासी सुमाता ॥३७॥





वीरोंकी सुमाताओंका यश जो नहीं गाता।
वह व्यर्थ सुकवि होनेका अभिमान जनाता॥
जो वीर-सुयश गानेमें है ढील दिखाता।
वह देशके वीरत्वका है मान घटाता॥
दुनियामें सुकवि नाम सदा उसका रहैगा।
जो काव्यमें वीरोंकी सुभग कीर्ति कहैगा॥ १॥

वाल्मीकने जब वीर-चरित रामका गाया।
सम्मान सहित नाम अमर अपना बनाया॥
श्रीव्यासने तब नाम सुकवियोंमें है पाया।
भारतके महायुद्धका जब गीत सुनाया॥
कब चंद भी हिन्दीका सुकवि आदि कहाता?
यदि वीर पिथौराका सुयश-गान न गाता? ॥ २॥

'होमर' जो है यूनानका कवि आदि कहाया।
उसने भी सुयश वीरोंका है जोशसे गाया॥
'फ़िरदौसी'ने भी नाम अमर अपना बनाया।
जब फ़ारसी वीरोंका सुयश गाके सुनाया॥
रण वीर किया करते हैं सम्मान कलमका।
वीरोंका सुयश-गान है अभिमान कलमका॥ ३॥

इस वक्त हैं हिन्दीके बहुत काव्य-धुरन्धर।
आचार्य कोई, इन्दु कोई, कोई प्रभाकर॥
काव्याद्रि कोई, कोई हैं साहित्यके सागर।
हैं काव्यके काननके कोई सिंह भयङ्कर॥
मैं काव्य-सुकुल-कामिनीका बाल हूँ अज्ञान।
इस हेतु मुझे भाता है माताओंका यश-गान॥४॥

कुन्ती सी अतुल वीर-सुमाताको नमस्कार।
सौवार, सहसवार, अयुतवार नमस्कार॥
वैधव्य हो, सुत छोटे हों, आपत्तिका हो भार।
उस वक्त भी सुत देके करै दीनका उपकार॥
यश ऐसी सुमाताका सहित हर्ष न गाना।
है हिन्दकी माताओंका सम्मान घटाना॥५॥

जब भाग गये पाण्डु-तनय लाख-भवनसे।
माताको लिये साथ, चले जाते थे वनसे॥
थे दीन बहुत मनसे, बहुत छीन थे तनसे।
तब व्यास मिले आके, दिया धीर वचनसे॥
ले जाके बसाया उन्हें 'इकचक्र'❀ नगरमें।
वे रहने लगे दीनसे इक विप्रके घरमें॥६॥

दुनियामें बहुत बार है यह हाल निहारा।
बहती नहीं है एकसी नित कालकी धारा!

❀ इकचक्र—(एकचक्रनगर) बिहारका 'आरा' नगर ही उस समयका ..है।

कुन्ती जो थी कल एक बड़े भूपकी दारा।
हा! आज वही करती है भिक्षासे गुज़ारा!
नृप पांडुके सुत पाँच जो कल राजकुँवर थे।
भिक्षासे गुजर करते, बसे विप्रके घर थे! ॥ ७ ॥

'वक' नाम असुर एक था उस ग्रामका रखवार।
निज भोग लिया करता था वह पारीसे प्रतिबार॥
सह अन्न मनुज एक था उस दुष्टका आहार।
देते थे सभी, बस यही था ग्रामका आचार॥
इक रोज़ जो आ पहुँची उसी विप्रकी पारी।
रहती थी सहित पुत्र जहाँ पांडुकी नारी ॥ ८ ॥

उस विप्रका घर बन गया इक शोकका आगार।
निज पुत्रके हित रोने लगा छोंड़के डिंड़कार॥
"बस एक यही पुत्र है, कुछ हैं नहीं दो-चार।
पुरखोंके लिये है यही जल-पिंडका आधार॥
हा! कैसे इसे आज असुरपतिसे बचाऊँ?
किस भाँतिका, मिस कौनसा, इस हेतु बनाऊँ"? ॥ ९ ॥

ये शोक-भरे शब्द जो कुन्तीके पड़े कान।
ब्राह्मणके प्रबल शोकका ज्योंही किया अनुमान॥
रोके न रुका कुन्तीसे क्षत्रित्वका अभिमान।
आपत्तिमें भी तजते नहीं धर्म सुधीमान॥
दायाने द्रवित होके मधुर बैन सुनाया।
उस विप्रका सब शोक वचन-नदमें बहाया ॥१०॥

"हे विप्र-प्रवर! शोक तजो, चित्त सँभारो।
धीरजको गहो, चित्तसे सब खेद निकारो॥
हे विप्र-वधू! तुम भी न कुछ सोच पसारो।
इस शोकसे बेफ़ायदा तुम मनको न मारो॥
कहनेसे मेरे चित्तका सब शोक हटा दो।
निज पुत्रके बदले मेरा इक पुत्र पठा दो॥११॥
तुम मेरे विपद्-कालमें आये हो बड़े काम।
मुझको मिला है घरमें तुम्हारे बड़ा विश्राम॥
उपकारका बदला भी तो देना है मेरा काम।
क्षत्रानी कृतघ्नोंमें लिखाती नहीं निज नाम॥
हैं पाँच सुवन मेरे, तुम्हें देती हूँ इक पूत।
भेजो उसे 'बक' पास लखो उसकी तो करतूत'॥१२॥
यों कहके तुरत भीमको निज पास बुलाया।
उस विप्रकी आपत्तिका सब हाल सुनाया॥
क्षत्रानी-सुवन होनेका सब तत्व लखाया।
उपकारके बदलेका भी सब मर्म बताया॥
"सर्वत्र सदा धर्मके हित कष्ट उठाना।
संसारमें देखा गया है वीरका बाना॥१३॥
हे पुत्र! अगर रखता है कुछ वंशका अभिमान।
क्षत्रित्वके शुभ तत्वका कुछ चित्तमें हो ध्यान॥
संसारमें करवाना न हो बापका अपमान।
जननीका भी मंज़ूर हो कुछ चित्तसे सम्मान॥

तो आज मेरे कहनेसे सुत इसका बचा ले।
इस विप्रकी आपत्तिको निज शीश चढ़ा ले ॥१४॥
धिक्कार है उस विप्रको, जो वेद न जानै।
संसारके उपकारको जप-यज्ञ न ठानै॥
उस क्षत्रीको धिक्कार, जो विप्रोंको न मानै।
सब लोगोंकी रक्षाके लिये दुष्ट न भानै॥
उस वैश्यको धिक्कार है जो गाय न पालै।
धन, अन्न रखा देशका दारिद्र न टालै ॥१५॥
उस शूद्रको धिक्कार, जो सेवामे करै चूक।
मालिकका सुविश्वास करै चूकसे दो टूक॥
उस नारिको धिक्कार, जो लै बैनकी बन्दूक़।
पति-चित्त-हिरन मारनेको प्रेमकी दे डूक॥
धिक्कार है, उस नरको जो निज बैन न पालै।
बिन समझे ही बूझे जो वचन मुँहसे निकाले ॥१६॥
धिक्कार बटुकको है, जो गुरु-बैन न मानै।
शिक्षामे करै ढील, सदाचार न ठानै॥
धिक्कार गृही कर्म तजै मर्म न जानै।
धिग ऐसा यमी तपको तजै गप्प बखानै॥
सन्यासीको धिक्कार, जो मायामें रहै लीन।
दुनियाके प्रपचोंमें रहै रामसे रतिहीन ॥१७॥
धिक्कार है भूपालको, जो नीति न जानै।
आधीन प्रजा-जालको निज पुत्र न मानै॥

धिक्कार प्रजा भूपकी निन्दा जो बखाने।
राजासे कपट करके वृथा वाद ही ठाने॥
सब भाँतिसे उस व्यक्तिपै धिक्कारका है भार।
नर हो न भजै ईश, करै कुछ भी न उपकार ॥१८॥
धिक्कार है भाईको, जो भाईको सतावै।
आपत्तिमें स्नेह प्रेम न कुछ हाथ बँटावै॥
धिक्कार है उस सुतको जो पितु-नाम धरावै।
निज कृत्यसे पुरुषोंको नरक-द्वार झँकावै॥
धिक्कार युवकको है, जो कुल-धर्म न पाले।
युवतीको है धिक्कार जो कुल-लाजको घाले ॥१९॥
उस पुत्रको धिक्कार, जो माताको लजावै।
जननीकी अवज्ञाका महापाप कमावै॥
उस मातुको धिक्कार, जो सुत क्रूर बनावै।
कुल-धर्म-सहित उसको न शुभ कृत्य सिखावै॥
उपकारका शुभ तत्व कभी कुछ न सुझावै।
दुखियोंकी मदद करनेका मतलब न बुझावै ॥२०॥
सब भाँतिसे धिक्कार उसे वेद बतावै।
इस जगमे किसीके भी कभी काम न आवै॥
सामर्थ्यके होते भी न करतूत दिखावै।
निज शक्तिसे दीनोंका न दुख-दर्द हटावै॥
नि[illegible] देहके पोषणहीमें सब शक्ति लगा दे।
आलस्यको धारे रहै कुल-धर्म भगा दे ॥२१॥

इस जगकी प्रजा-मात्रको विधि-बद्ध चलाना।
अन्यायकी जानिब न कभी चित्त डोलाना॥
दुष्टोंको दबाना सदा, दीनोंको बचाना।
विप्रोंके सुहित हेत सदा युद्ध मचाना॥
क्षत्रीका तनय होके जो ऐसा नहीं करता।
वह जानलो, पुरखाओंको है अपने निदरता ॥२२॥

यह नीति परखनेको लखो रामका आचार।
दण्डकमे किया सूपनखा सङ्ग जो व्यवहार॥
पत्नी भी तजी, भाईको छोड़वा दिया घरबार।
अन्याय परख, कर दिया लंकेशका संहार॥
सुग्रीवकी रक्षाके लिये बालिको मारा।
दलि-दुष्ट सुभुज विप्रका मख-साज संभारा* ॥२३॥

इस विप्रने कैसा बड़ा उपकार किया है।
हम सबको भवन अपनेमें विश्राम दिया है॥
अत्यन्त सदयतासे भरा इसका हिया है।
आपत्तिने इस वक्त़ इसे घेर लिया है॥
इस वक्त अगर इसकी मदद तू न करेगा।
क्षत्रित्वका अभिमान भला कैसे धरेगा? ॥२४॥

मेरे तो हो तुम पाँच, सुवन इसके फ़क़त एक।
यह विप्र दयावान है, विप्रानी बड़ी नेक॥

---

* श्रीरामकी आदर्श कार्यावलीसे परिचित होनेके लिये आप हमारे यहाँसे "श्रीराम-चरित्र" नामक बृहत् सचित्र ग्रन्थ मँगाकर देखें। दाम लगभग ४) है।

इस हेतु मेरे चित्तमें आ बैठी है यह टेक।
करतूतसे इस विप्रकी आपत्तिको दूँ छेंक॥
यदि तेरे चले जानेसे सुत इसका बचे आज।
तो जानूँ कि मैंने भी किया लोकमें कुछ काज ॥२५

मैंने जो पिलाई है तुझे दूधकी धारा।
आपत्ति टले विप्रकी, पा उसका सहारा॥
हो जायगा दुनियामें सफल जन्म हमारा।
क्षत्रित्वके निज तत्वका बज जाय नगारा॥
क्षत्रानियोंके चित्त महामोदसे भर जायँ।
दुर्भाग्य घटै, वंश-पितर आज ही तर जायँ ॥२६

क्षणभंगु मनुज-देहका है कौन ठिकाना?
पानीके बबूलेका है उपमान बखाना॥
उपकारमें इक विप्रके यों जानका जाना।
दुनियाके दुखी लोगोंको दुष्टोंसे बचाना॥
मौका है बड़े भाग्यसे ऐसा कभी आता।
मिल जाय जिसे, धन्य है उसकीही सुमाता ॥२७

इस हेतु मेरे हुक्मसे 'बक' पास तू जा आज।
इस विप्रका यह पुत्र बचा करले महाकाज॥
नाहीं जो करेगा, तो मुझे होगी बड़ी लाज।
वह 'नाहीं' तेरी होगी मेरे नाशका इक साज॥
हो तेरे अगर सिरपै मेरे प्रेमका कुछ भार।
हो जा अभी इस विप्रके इस कार्य्यको तय्यार" ॥२८

मात‍ाके सुने बैन ये उपकारके साने।
द्विजराजकी आपत्ति लगी ध्यानमें आने॥
विप्रानीके देखे जो युगुल ओंठ झुराने।
करुणाके महानदमें लगे भीम नहाने॥
असुरेशकी करतूतका जब पूर्ण सुना हाल।
भुजदण्ड फड़क उट्ठे हुए नेत्र भी कुछ लाल ॥२९॥

"हे मातु! भली भाँति मुझे तूने लखाई।
नर-देह सफल करनेकी तदबीर बताई॥
संसारमें क्षत्रीको मिले ऐसी ही माई।
तो क्षत्री भी इस लोकमें कर जाय कमाई॥
...योंकी कमाई हूँ सदा भोग लगाता।
घरमें ही पड़ा रहता हूँ आलस्यमें माता ॥३०॥

आलस्यमें भुज-दण्ड शिथिल जाते हैं होते।
बहते हैं बहुत मन्द मेरे खूनके सोते॥
दिन-रात गुज़रते हैं बहुत सोते ही सोते।
हो सकता है यह कैसे भली मातुके होते?
... सत्य सुझाता है, सुभग धर्म लखाया?
कर्तव्य मनुज देहका यह मुझको सिखाया" ॥३१॥

यों कहके असुर पास तुरत भीम सिधारे।
पकवानका इक टोकरा निज शीशपै धारे॥
चिल्लाके कहा जाके असुर-राजके द्वारे।
"मैं लाया हूँ यह भोग सकल हेत तुम्हारे॥

लो खाओ इसे और मुझे भोग लगाओ।
खा-पीके बड़ी मौजसे आनन्द मनाओ" ॥३२॥

यों कहके लगे आप हो पकवान उड़ाने।
यह देखके राक्षसका रहा दिल न ठिकाने॥
बोला कि "अरे दुष्ट! लगा भोग लगाने?
क्यों क्रोध दिलाता है मुझे तू विना जाने?

ले आता हूँ अब, तुझको उड़ा जाता हूँ कच्चा।
फल ऐसी ढिठाईका तुझे देता हूँ बच्चा" ॥३

यों कहके लपक भीमकी दिशि हाथ बढ़ाया।
झट हाथ पकड़ भीमने पृथ्वीपै गिराया॥
औंधाके उसे पीठपै टिहुनेसे दबाया।
पद-शीश पकड़ हाथसे ऊपरको उठाया॥

यों रीढ़की गुरियोंके तड़ाकेसे उड़ाये।
यम-धाम उसे भेजके निज धामको आये ॥३

विप्रानीको कुन्तीने सकल हाल सुनाया।
उस विप्रने आ भीमको छातीसे लगाया॥
"जीते रहो, भैयाजी! मेरा शोक मिटाया।
सब ग्रामके लोगोंका विपति-भार हटाया"॥

यह 'दीन' रहेगा सदा यह बात मनाता।
भारतमें हों सुत भीमसे, कुन्ती सी सुमाता ॥३५



अलूपी

भारतमें सदाहीसे चली आती है यह रीति ।
आश्चर्य्यभरी मिलती है क्षत्रानियोंकी नीति ॥
निज मानकी रक्षामें दिखाई न कभी भीति ।
रखती ही चली आई हैं वीरत्वसे निज प्रीति ॥
मर्य्यादको रक्षामें स्वपतिको भी लँहारें ।
संसारके सुख-भोग सकल भाड़में डारें ॥ १ ॥

वस नाम जो 'अवला' इन्हें मुनियोंने दिया है ।
महिलाओंके सङ्ग भारीसा अन्याय किया है ॥
जाँचा नहीं किस धातुका नारीका हिया है ।
अमृतकी मधुर धार है, या विषका किया है ॥
जानो नहीं जाती कि है गति नारिकी कैसी ।
अच्छीसे अधिक अच्छी, अनैसीसे अनैसी ॥ २ ॥

इक नारिको सौतिनके सदाचारका अभिमान ।
रक्षामें सवति-मानकी निज स्वामीका अपमान ॥
लेना भी सवति-पुत्रको निज पुत्र-सरिस मान ।
समझो तो भला कैसा था इस नारिका विज्ञान ?
ऐसी ही कथा आज हूँ मैं तुमको सुनाता ।
नारीके सबल चित्तकी हूँ बात बताता ॥ ३ ॥

वनवास-समय पार्थने, गुण-रूपकी भारी।
व्याही थी मनीपूरमें इक राजकुमारी॥
चित्रांगदा नाम था, थी प्रेम-पिटारी।
इक पुत्र हुआ इसके बड़े तेजका धारी॥
था 'बभ्रु' सहित नाममें 'वाहन' का समावेश।
वीरत्वमें था मानो विजय* हीका अपर वेश॥४॥

मणिपूरमें रहते हुए इक नाग-कुमारी।
जो प्रेमकी सरिता ही थी और रूपकी क्यारी॥
आसक्त हुई पार्थके गुण-रूप निहारी।
अर्जुनने किया उसको सहित नेह स्वनारी॥
था नाम अलूपी, न भरी उसकी मगर गोद।
ये दोनों रहा करतीं मनीपूरमें सह-मोद॥५॥

चित्राङ्गदाके पुत्रको अपना ही सुवन जान।
बभ्रूका किया करती थी अति नेहसे सम्मान॥
अर्जुनने उसे धायका पद देके किया मान।
फिर अन्य किसी देशको बस कर गये प्रस्थान॥
बभ्रु भी समझता था इसे अपनीही माता।
इसके ही निकट रहता सदा खेल मचाता॥६॥

बचपनहीमें बभ्रू हुआ मणिपूरका महराज।
करने लगा अति न्यायसहित राज्यका सब काज॥

---

* विजय—अर्जुन।

जब राय युधिष्ठिरने रचा यज्ञका सब साज।
हय छोड़ किया पार्थको सब फ़ौजका सिरताज॥

फिरता हुआ जब अश्व मनीपूरमें आया।
बभ्रु भी पिता जानके सम्मानको धाया॥ ७॥

कुछ भेट लिये पार्थके दर्शनको जब आया।
यह देखके अर्जुनके हृदय क्रोध समाया॥
ललकारके बभ्रूको यही बैन सुनाया।
"तू पुत्र नही मेरा, मेरा नाम धराया॥

रे दुष्ट! मेरे ध्यानमें ऐसा ही है आता।
है पुत्र किसी औरका, कुलटा तेरी माता॥ ८॥

कुछ-सूझता है तुझको कि है, दिन कि अँधेरा?
सम्बन्ध मेरे साथमे क्या आज है तेरा?
मै आज विपक्षी हूँ, तुझे देके दरेरा।
ले जाऊँगा सब कोश तेरा लूट घनेरा॥

म बनके तेरा बाप नही आया हूँ इस ठौर।
मै तेरा विपक्षी हूँ, जरा बातपै कर गौर॥ ९॥

हट जा तू मेरे सामनेसे, मुँह न दिखाना।
'अर्जुनका सुवन हूँ' न कभी जीभपै लाना॥
माताने तेरी मुझको छला आज य जाना।
नारीका युवाकालमें क्या ठीक-ठिकाना?

यदि पुत्र मेरा होता तो रण-साज सजाता।
घोड़ेको पकड़ क्रोध-सहित युद्ध मचाता॥ १०॥

रे क्रूर! अगर रखता है कुछ वंशका अभिमान।
और चाहता है मुझसे बचैं तेरे अधम प्रान॥
तो अस्त्र पकड़, साजके वीरत्वका सामान।
उत्साह-सहित युद्धमें कर मुझसे घमासान॥
तब जानूँगा माता तेरी है मेरी छनारी।
नाहीं तो पिता कहके मुझे देना न गारी" ॥११॥

सुन बात अलूपीने, जो थी साथमें आई।
ललकारके बभ्रूको यही बात सुनाई॥
"हमपर जो महाबाहुने है जीभ चलाई।
यह दोष मिटानेके लिये कर तू लड़ाई॥
चित्रांगदाने तुझको जना, मैंने है पाला।
करवाता है क्यों बापसे यों मुँह मेरा काला? ॥१२॥

निज बाहुके बल दोष हमारा य छुटा दे।
पांडवको गिरा भूमिमें, या प्राण लुटा दे॥
निज हाथसे या मेरा गला धड़से हटा दे।
जननीहीको निज मारके अपमान मिटा दे॥
इन बातोंमें जो भावे वही करके दिखा वीर।
पांडवके हैं ये बैन, कि अपमानके हैं तीर? ॥१

क्षत्रानी कोई ऐसे वचन सुन नहीं सकती।
ये बैन सुने आग है सीनेमें धधकती॥
पत्नी न अगर होती तो खुद मैं ही धमकती।
यों लड़ती कि बस बुद्धि न यो इनकी सनकती॥

निज पुत्रका अपमान, सदाचारमें शङ्का।
क्षत्रानी नहीं सहती यह है बात अशङ्का ॥१४॥

सुर पूजके कुन्तीने इन्हें वीर किया है।
निज दूधका बस पाँचवाँ हिस्सा ही दिया है॥
तूने तो युगुल मातुका सब दूध पिया है।
क्या इनसे भी शङ्का है तुझे, कैसा हिया है?

तेरे तो दशम अंशके सम इनमें है कस-बल।
ललकारके बस युद्धके हित खेतमें अब चल ॥१५॥

हमको भी समझ रक्खा है ज्यों पञ्चभतारी*।
कीचकने सभा-बीच जिसे लात थी मारी॥
या वीर दुशासनने पकड़ खींची थी सारी।
करता था जयद्रथ भी जिसे अपनी ही नारी॥

पंचाली-खसम होके अहंकार है भारी।
क्षत्रानी सभी सूझती हैं पचभतारी ॥१६॥

क्या हो गया तू वीरके बानेसे पतित आज?
क्या डर गया तू देखके अर्जुनका विकट साज?
कहलायेगा तू कैसे मनीपूरका महराज?
जब करता है तू जानके यह क्रूर सरिस काज॥

वह क्षत्री ही नहीं, जिसमें न वीरत्व न बल हो।
वह आग नहीं, जिसमें न गर्मी न कहल हो ॥१७॥

---

* पचभतारी—द्रौपदी।

वह पुत्र नहीं, माताको अपवाद चढ़ावै।
माताकी भी सुन गारी न कुछ जोशमें आवै॥
निज शक्तिको दिखलाके न अपवाद मिटावै।
उस दोष-लगैयाको न कुछ सीख सिखावै॥
उस पुत्रसे संसार हो अति शीघ्र ही खाली।
माताके सदाचारकी रक्खे न जो लाली॥१८

ललकार सुने क्षत्री तो यमको नहीं डरते।
रण-खेतके हित नित्य विनय रामसे करते॥
देखा नहीं तुझको कभी अभिमानसे जरते।
इस भाँति किसी खेलसे भय करके पछरते॥
बस आज मुझे अपना तू रण-खेल दिखा दे।
इस वीरको अपवादके हित सीख सिखा दे" ॥१९

माताके सुने वैन तो उत्साह भर आया।
अर्जुनको सजग करके यही वैन सुनाया॥
"निज पूज्य पिता जानके दर्शनको था आया।
तुमने तो मेरी माँको बुरा दोष लगाया॥
रण-खेतमें चलिये तो तुम्हें आज दिखा दूँ।
क्षत्रीका असल पुत्र हूँ, जारज हूँ, कि क्या हूँ ॥२०

जारजकी हूँ पहचान तुम्हें ठीक बताता।
वह अपने अहङ्कारमें नित रहता है माता॥
वह अपने पिताको भी नहीं शीश नवाता।
वचनोंमें विनय-भाव नहीं भूलके लाता॥

सारके सब व्यक्तियोंमें दोष लगाना।

जारजका बताते हैं सुबुध लोग ग्र वाना ॥२१॥

निज नारिका भी उसको नहीं होता है विश्वास।
चिढ़ता है विकट भावसे करनेहीसे परिहास॥
नित खोजताही रहता है पर-छिद्रका आभास।
दुनियाको न है लाज, न ईश्वरका उसे त्रास॥

छुप-छिपके किसी आड़में निज काम चलाना।

जारजका बताते हैं सुबुध लोग य बाना ॥२२॥

अत्यन्त मलिन सूझता है स्वच्छ सरोवर।
सब मूर्ख नज़र आते हैं विद्वान चतुर नर॥
अपनेहीको है मानता गुण-बुद्धिका सागर।
सुरपतिको नहीं मानता वह अपनी बराबर॥

आपत्तिमें धर बैठता है भेष जनाना।

जारजका बताते हैं सुबुध लोग य बाना ॥२३॥

बदलेमे सदा करता है उपकारके अपकार।
निज गुरुहीपै कर बैठता है छलका विकट वार॥
शुभ कर्मके उद्योगमे बनता तो है कर्तार।
पर अंत निबहता नहीं, रह जाता है झख मार॥

सतियोंके सदाचारमें सन्देह जताना।

जारजका बताते हैं सुबुध लोग य बाना ॥२४॥

कहता तो है कुछ और, पै करता है सदा और।
सर्वत्र सदा रखता नहीं एकसा निज तौर॥

बस छलही-कपटतक है सदा उसकी बड़ी दौर।
ईश्वरकी महाशक्तिपै करता नहीं कुछ ग़ौर॥
निज भूलको औरोंके सदा शीश चढ़ाना।
जारजका बताते हैं सुबुध लोग य बाना ॥२५

निर्दोष असल क्षत्रीकी सुन लीजिये पहचान।
बल-बुद्धिको तज रखता है बस वंशका अभिमान॥
गुरु-जनका सदा करता है निज चित्तसे सम्मान।
वचनोंसे विनय-भावका होजाता है अनुमान॥
बेसमझे किसीपर न कभी क्रोध जताना।
बुध लोग बताते हैं असल क्षत्रीका बाना ॥२६

सम्मान-सहित करता है हर व्यक्तिका विश्वास।
गंभीर बना रहता है करनेपै भी परिहास॥
वह खोजता हरगिज़ नहीं परछिद्रका आभास।
संकोच है दुनियाका, तो ईश्वरका बड़ा त्रास॥
माता नहीं हीलेसे कभी काम चलाना।
बुध लोग बताते हैं असल क्षत्रीका बाना ॥२७

अपनी ही तरह स्वच्छ-हृदय जानता सबको।
अपनेसे अधिक विज्ञ चतुर मानता सबको॥
भरपूर सुगुण बुद्धिसे अनुमानता सबको।
सर्वत्र उचित रीतिसे सम्मानता सबको॥
ापत्तिमें भी करता नहीं छल न बहाना।
बुध लोग बताते हैं असल क्षत्रीका ाना ॥२८॥

उपकारका बदला भी है उपकारसे देता।
शिक्षकको वो रक्षकको है सम्मानसे सेता (१) ॥
वह बनता है जिस वक़्तमें जिस कार्यका नेता।
तब पूर्ण किये बिन कभी हारी नहीं खेता (२) ॥
सतियोंके सदाचारमें शङ्का न जताना।
बुध लोग बताते हैं असल क्षत्रीका बाना ॥२९॥

जो बात है कहता, उसे है करके दिखाता।
रखता है वचन-कर्ममे बस एकसा नाता ॥
छल उसके निकट भूलके आने नहीं पाता।
बस ईशकी इच्छासे है नित नेह लगाता ॥
हो जाय कभी भूल तो निज भूल मनाना।
बुध लोग बताते हैं असल क्षत्रीका बाना ॥३०॥

सबसे खरी पहचान असल क्षत्री-सुवनकी।
बतलाता हूँ, सौगन्द है ऋषियोंके वचनकी ॥
परवाह उसे रहती नहीं तनकी न धनकी।
परवाह उसे रहती है क्षत्रित्वके पनकी ॥
जननीकी जनम-भूमिकी इज्जतको बचाना।
बुध लोग बताते हैं असल क्षत्रीका बाना ॥३१॥

जननीके जनम-भूमिके हित जनको लगा दे।
जनसे न चले काम तो फिर धनको लगा दे ॥

---

(१) सेता—सेवा करता।
(२) हारी खेता—हार मानना।

धनसे न सरै काज तो फिर तनको लगा दे।
तनसे भी न हो काज तो प्राणन को लगा दे॥

माताका वचन-कर्मसे सम्मान बचाना।
बुध लोग बताते हैं असल क्षत्रीका बाना ॥३२॥

वह क्षत्री हो क्या, माताकी इज़्ज़त न रखावै?
निज जन्म-धरा हेत न निज तनको लगावै॥
प्राणोंका करै मोह कुयश शीश चढ़ावै।
अपवाद लगैयाको न कुछ सीख सिखावै॥

मुझसे न सहा जायगा यह माताका अपवाद।
मर जाऊँगा या बलसे करूँ आपको बर्बाद" ॥३३॥

यों कहके विकट युद्धमें अर्जुनको पछारा।
निज बलसे स्वमाताका कुयश-भार उतारा॥
अर्जुनने कहा, "सत्य है तू पुत्र हमारा।
वीरत्वके आकाशका अति शुभ्र सितारा"॥

रबुवीरसे रहता है सदा 'दीन' मानता।
बभ्रु सा सुवन हो, तो अलूपी सी सुमाता ॥३४॥



ईशुको

संसारमे यदि कोई है यश मानने लायक़ ।
संसारमें यदि कोई है गुरु जानने लायक़ ॥
संसारमें यदि कोई है कर चूमने लायक़ ।
संसारमे यदि कोई है पद पूजने लायक़ ॥
तो सत्य शपथ खाके है दिल मेरा बताता ।
है व्यक्ति फ़क़त एक, जिसे कहते हैं 'माता' ॥ १ ॥

दुनियामें अगर कोई है उपकार करैया ।
तनम-नसे, वचन-धनसे कठिन कष्ट हरैया ॥
निज प्रेमके पनसे न क़दम एक टरैया ।
हों दोष हज़ारों तो न चित एक धरैया ॥
अनुमानसे अनुभवसे है दिल मेरा बताता ।
है व्यक्ति वही एक जिसे कहते हैं 'माता' ॥ २ ॥

जगमें है अगर कोई करामात करैया ।
ईसाकी करामातको भी मात करैया ॥
बस एक नज़र-मात्रसे मन मोद भरैया ।
बस एक वचन-मात्रसे सब दुःख हरैया ॥
तो सत्य शपथ खाके बता देता हूँ भैया !
है एक वही व्यक्ति, जिसे कहते हैं 'मैया' ॥३॥

निज प्रेमसे चाहै तो सुधा-धार बहा दे।
संतप्त-हृदय जगको सुधा-सरमें नहा दे॥
आकाशसे ला चाँदको सुत-करमें गहा दे।
निज पुत्रको अमरेशसे धनि-धन्य कहा दे॥
संसारमें यदि कोई है यों रोब जमैया।
बस एक वही है, जिसे सब कहते हैं 'मैया' ॥४॥

निज क्रोधसे चाहै तो प्रलय-काल मचा दे!
संसारको आपत्तिकी भट्ठीमें तचा दे॥
अभिमान भी अमरेशका इकदममें लचा दे।
हर, विष्णु, विधाताको अँगुलियोंमें नचा दे॥
संसारमे यदि कोई है यह शक्ति रखैया।
बस एक वही है, जिसे सब कहते हैं 'मैया' ॥५॥

ध्रुवने जो महा उच्च अचल थान है पाया।
बस जानलो है माताके वचनोंका दिलाया॥
यूरुपमें बुनापार्टने है नाम कमाया।
समझो उसे माताकी कृपा-दृष्टिकी छाया॥
दुनियामें सिकन्दरने जो सुख्याति है पाई।
यदि ग़ौरसे समझो तो है माताकी दिलाई ॥६॥

अब आज सुनता हूँ तुम्हें एक कथा और।
समझो तो भला इसका ज़रा चित्तमें कर ग़ौर॥
माताके वचन-बाणकी देखो तो ज़रा दौर।
इक आनमें संसारका पलटा ही दिया तौर॥

निज क्रोधसे ससारमें इक आग जला दी।
'हय हय'से विकट वंशकी सब शेखी भुला दी ॥ ७॥
यमदग्नि ऋषीश्वर जो थे तप-तेजके धारी।
थी 'रेणुका' रेणुककी सुता उनकी ही नारी॥
जङ्गलमें रहा करते थे फल-मूल-अहारी।
थी उनको सहज भावसे बस शान्ति ही प्यारी॥
वर-वीर परशुराम सहित पाँच थे बेटे।
आश्रममें रहा करते थे निज वंश समेटे ॥ ८॥
उस वक्त था इक क्षत्रियोंका वंश विकट वीर।
कृतवीर्य था उस वंशका महिपाल समर-धीर॥
उस वंशका 'हय हय' था बड़ा नाम भी गम्भीर॥
हर व्यक्ति था उस वंशका संग्राममें दलवीर॥
उस वंशके आतङ्कसे मृगराज थे डरते।
उस वंशके पशुओंपै कभी घात न करते ॥ ९॥
कुछ द्वेषसे यमदग्निको राजाने सताया।
गोवंश सकल छीनके आश्रमको लुटाया॥
विनतीपै भी कुछ रेणुकाके ध्यान न लाया।
निर्दोष ही ऋषिराजको भी मार गिराया॥
उस वक्त परशुरामजी आश्रममें नहीं थे।
फल-मूलके हित वनमें गये दूर कहीं थे ॥१०॥
जब आये परशुराम तो यह हाल निहारा।
बहती है पिता-कण्ठसे इक रक्तकी धारा॥

मताके युगुल नेत्र हैं, ज्यों अश्रु-पनारा।
आश्रमका तपोभाव भी छिन्न-भिन्न है सारा॥
भग्न हवन-कुण्ड, कमण्डल भी हैं सब नष्ट।
आसन भी हैं छितराये हुए रक्तसे हो भ्रष्ट ॥११॥

कुछ शिष्य जो गुरु हेत लपक रणमें लड़े हैं।
कुछ मारे गये, थोड़ेसे घायल ही पड़े हैं॥
कुछ भाग गये वनमें, जो कुछ मनके कड़े हैं।
वे अब भी स्वगुरु-पत्नीकी सेवामें खड़े हैं॥
समझानेसे भी शान्त नहीं रेणुका होती।
व्याकुल है, परशुरामका ले नाम है रोती ॥१२॥

लखि आये परशुरामको निज धीर सँभारा।
बस रोकली फ़ौरनही प्रबल अश्रुकी धारा॥
समझाके कहा, "पुत्र! लखो हाल हमारा।
राजाके प्रबल वीरोंने है इनको सँहारा॥
मैं अब तो जलाती हूँ सती-धर्मसे काया।
तुम सोचो, कि राजाने तुम्हें कैसा बनाया ॥१३॥

मारा है पिता, माताको है राँड़ बनाया।
इस शांति-भवन ठौरको श्रोणित से सिँचाया॥
बटुकोंको सताया, तुम्हें पितु-हीन बनाया।
सुख-शान्तिका दाता सभी गोवंश छिनाया॥
क्या ऐसे अधम भूपसे डर जाओगे प्यारे?
तब कैसे कहाओगे भला मेरे दुलारे? ॥१४॥

निज राज्यका मद साधुजनोंको है दिखाता।
लघु बालकोंको जो है जनक-हीन बनाता॥
अबलाओंकी विनती नहीं कुछ ध्यानमें लाता।
है वस्तु पराई जो ज़बरदस्ती छिनाता॥
जो ऐसे अधम भूपके आतंकसे डर जाय।
वह रेणुकाका पुत्र, हरे! आज ही मर जाय॥१५॥

हे राम! अगर तुममें पिता-भक्तिका हो लेश।
माताका वचन मानना समझे हो अगर वेश॥
गोवंशके छिन जानेका हो तुमको अगर क्लेश।
स्वीकार हो कुछ मानना निज धर्मका उपदेश॥
तो ऐसे अधम वीरको कुछ सीख सिखा दो।
संसारको वीरत्वका आदर्श दिखा दो॥१६॥

हे राम! अगर चाहते हो मुझको रिझाना।
परलोकमें प्राणोंको मेरे तोष दिलाना॥
ऋण मेरा अगर चाहते हो जल्द चुकाना।
संसारमें यदि चाहते हो नाम कमाना॥
तो ऐसे अधम वीरको कुछ सीख सिखादो।
संसारको वीरत्वका आदर्श दिखादो॥१७॥

क्षत्राणीको रण-खेतमें पति-मृत्युका क्या शोक?
हथियारसे कट मरनेसे मिलता है अमर-लोक॥
स्वामीने तो एकत्र किया ही था सुयश-थोक।
उनके लिये सुरलोकमें जानेकी नहीं रोक॥

पर मेरे तो चितको है यही शोक सताता ।
कह ले न कोई रेणुका थी क्रूरकी माता ॥१८

तर्पण मुझे दरकार नहीं तीर्थके जलका ।
पिण्डा नहीं दरकार गया-धामसे थलका ॥
करना न कभी ध्यान मेरी ओर टहलका ।
आतङ्क सुना चाहती हूँ मैं तेरे बलका ॥

मंज़ूर अगर हो मेरे प्राणोंको रिझाना ।
तो मेरी चिता रक्तकी धारासे बुझाना ॥१९॥

तर्पण हो मेरे नामसे यदि तुमको कराना ।
'हय हय'से विकट वंशके श्रोणितको बहाना ॥
श्रद्धासे अगर श्राद्धमें हो पिण्ड चढ़ाना ।
रण-खेतमें उस वंशके मुण्डोंको लुढ़ाना ॥

मंज़ूर मेरे नामपै हो विप्र जिमाना ।
उस वंशकी कर बोटियाँ गिद्धोंको खिलाना ॥२०॥

निज रक्तके आधारसे है तुमको रचाया ।
निज दूधके आधारसे है तुमको जिलाया ॥
निज गोदके आधारसे है तुमको बढ़ाया ।
निज सीखके आधारसे है वीर बनाया ॥

इन बातोंके बदले हो अगर मुझको रिझाना ।
रिपु-रक्तसे यह जलती चिता मेरी बुझाना" ॥२१॥

इक्कीस दफ़ा पीटके निज हाथसे छाती ।
निज पुत्र परशुरामको यों बैन सुनाती ॥

होती है सती रेणुका पति-प्रेममें माती।
संसारकी आँखोंको है यह दृश्य दिखाती॥
पति-शोकमें वीरा नहीं निज तनको जलाती।
जल-जलके है रिपु-वशमें इक आग लगाती॥२२॥

इस वीर सुमाताके वचन मान परशुराम।
संसारको है ज्ञात, किया कैसा विकट काम॥
उस वंशका इक्कीस दफ़ा मेट दिया नाम।
माताकी वचन-शक्तिका बस देख लो परिणाम॥
माता ही अगर चाहें तो संसार सँभल जाय।
डरपोकका डर एक झपाटेमें मसल जाय॥२३॥

हे राम! दया धाम! कृपा-कोर इधर हो।
ऐसी ही सुमातासे भरा सबहीका घर हो॥
हर पुत्र परशुराम सरिस वीर प्रवर हो।
दुष्टोंके दबानेमें जिसे नेक न डर हो॥
दिन हिन्दके फिर जायें बजै मोद-बधाई।
बस 'दीन'के मनमें है यही बात समाई॥२४॥



विंदुला

आलस्य भरे चित्तको उत्साह दिलाना।
कायरको निमिष-मात्रमें वर वीर बनाना॥
अत्यन्त विलासीसे महत्कार्य कराना।
क्रूरोंसे भी निज वंशकी मर्य्याद रखाना॥
यह शक्ति अगर है कहीं इस मृत्यु-भवनमें॥
तो मित्र-प्रवर! पाओगे माताके वचनमें॥१

जननीके वचन क्रूरको हैं शूर बनाते।
भोगीको, विलासीको हैं वैराग सिखाते॥
कायरसे पलकमें हैं घमासान कराते।
आलसको हटा मनमें हैं उत्साह बढ़ाते॥
जादू हैं, छलावा हैं, महामायाके कन हैं।
हैं मन्त्र महा सावरी या मातु-वचन हैं॥२॥

सौवीर सहित सिंधुका(१) इक राज्य था प्राचीन।
था छोटा, मगर आदिसे वह राज्य था स्वाधीन॥
बिँदुला थी उसी राज्यकी महरानी स्वपति-हीन।
सञ्जय था सुवन एक, महा क्रूर(२) विषय-लीन॥

---

(१) सौवीर सहित सिन्धु अर्थात सिन्धु सौवीर।
(२) क्रूर—नामर्द, डरपोक।

विदुला ही किया करतीथी सब राज्यकी सभार ।
सजयके महलमें थी विलासोंहीकी भरमार ॥ ३ ॥

जिस शीशपे हो राज-मुकुट शान दिखाता ।
जिस शीशपे हो छत्र सदा रोब बढ़ाता ॥
ढुर-ढुरके चँवर जिसकी बलायें हो हटाता ।
बहुतोंके जिगर-जान हो जिस शीशके त्राता ॥
उस सिरमें विषय-वासनाका वास अजब है ।
कुल, देश प्रजावर्गके हित घोर गजब है ॥ ४ ॥

जिस हाथमें इक देशके संभारकी हो वाग ।
जन, धनकी, प्रजा-प्राणकी जिस हाथमें हो लाग ॥
शोभित हो रजोदण्डसे जो हाथ महाभाग ।
लिपि जिसकी विधाताहीकी लिपि होती है बेदाग़ ॥
उस हाथमें आलस्यका बसना ही अजब है ।
कुल, देश, प्रजावर्गके हित घोर गजब है ॥ ५ ॥

हाँ ! राजमुकुट देखके यह ख़्याल न करना ।
आनन्दसे भरना है, इसे शीशपै धरना ॥
नग-ज्योति सहित स्वर्णकी आभाका उभरना ।
धारकके महाप्राणकी है ज्योतिका जरना ॥
स्थतहीको सुख देती है रत्नोंकी चमाचम ।
राजाके लिये है वही आपत्ति धमाधम ॥ ६ ॥

संजयकी विषय-वासना, आलस्य ढिलाई ।
हर ओर निकट दूर लगी पडने सुनाई ॥

इक भूप पड़ोसीने नई सैन सजाई।
चम चोलके चस ठान दी संजयपै चढ़ाई॥
अन्याय पड़ोसीका, न दुर्भाग्य, न संयोग।
वस इसको समझ लीजिये कर्मोंका अटल भोग ॥७॥

जिस व्यक्तिके मत्थे हो अमित जीवोंका सब भार।
जिस व्यक्तिकी इच्छा हो अमित लोगोंको दरकार॥
कहते हों अमित लोग जिसे मानसे सरकार।
जो होवै प्रजावर्गके धन-प्राणका रखवार॥
उस व्यक्तिका आलस्य, अनुत्साह, अनाचार।
उन सबके लिये होता है आपत्तिका भंडार ॥८॥

क्षत्री था, युवा वैस थी, था खून भी तनमें।
पर, भोग-विलासोंने किया वास था मनमें॥
भाता था उसे रहना सदा रंग-भवनमें।
इस हेतु न जा सकता था उत्साहसे रनमें॥
संसारमें फल भोग-विलासोंका निहारा।
कर देते हैं भोगीको महा नीच नकारा ॥९॥

हर ओरसे जब शत्रुने गढ़ आनके घेरा।
विदुलाको लगा सूझने हर ओर अँधेरा॥
देखा, कि प्रजापर है महा कष्टका फेरा।
इस वंशकी मर्य्यादमें लगता है दरेरा॥
निज पुत्रको समझानेके हित पास बोलाया।
अज्ञान-तिमिर बन-प्रभाकरसे हटाया ॥१०॥

"हे पुत्र! युवाकाल विलासोंमे बिताना।
घर आये हुए शत्रुसे यों आँख छिपाना॥
दिन-रात सखा सङ्ग लिये रङ्ग मचाना।
ललकारके सुननेपै न हथियार उठाना॥
ऐसा तो नहीं मैंने सुना क्षत्रीका बाना।
यों करना तो है वंशकी मर्य्याद मिटाना॥११॥

घर रहनेसे कोई भी अमर-पद नहीं पाता।
रण करनेसे हर व्यक्ति भी मारा नहीं जाता॥
यश और कुयश, हानि तथा लाभका दाता।
जीवनका तथा मृत्युका कर्ता है विधाता॥
यह सोचके क्षत्री नहीं निज धर्मसे डगते।
यमराज भी आजायें तो रणसे नहीं भगते॥१२॥

निश्चय है, कि हर व्यक्ति किसी रोज़ मरैगा।
है काल अटल, तेरे न टारेसे टरैगा॥
संसारके भोगोंसे कभी जी न भरैगा।
कर्तव्यका अवसर भी सदा ही न परैगा॥
बस सोच-समझ ले, कि तेरा धर्म है क्या आज?
कर्तव्यको कर, रख ले मेरे दूधकी तू लाज॥१३॥

क्षत्रित्व तो इस कोटके कलसोंपै धरा है।
वीरत्वका अभिमान मेरे पयमें भरा है॥
उत्साहसे भरपूर मेरा रक्त खरा है।
कर्तव्यके पालनमें न आलस्य ज़रा है॥

फिर पुत्र मेरा होके न रण-साज सजैगा।
जननियोंमें मेरा बहुत दूध लजैगा॥१

बस राज्य गया जान, जो आलस्य करैगा।
सुख-भोग मिटा जान, जो बैरीसे डरैगा॥
मर्य्याद मिटी जान, जो अरि-करमें पड़ैगा।
क़ैदी सा बना जेलमें दिन-रात सड़ैगा॥
उत्साहसे रण-भूमिमें यदि युद्ध करैगा।
विलसैगा धराधाम, कि सुरधाम भरैगा॥१

उत्साह किया रामने कपि-दलको जुटाया।
उत्साहसे वारीशको इक दममें बँधाया॥
लङ्कासे विकट कोटको इक दममें ढहाया।
रावणसे प्रबल शत्रुको यम-धाम पठाया॥
वीरोंका तो उत्साह महामन्त्र ही जानो।
उत्साहकी दासी हैं सकल सिद्धियाँ मानो॥१

ऋषिराज-सुवन वीर परशुरामकी गाथा।
पढ़-सुनके ठनकता भी नहीं तेरा सुमाथा?
सामान, सखा, सैन्य, बता साथमें क्या था?
बस चित्तमें इक युद्धका उत्साह भरा था॥
उत्साहके बल देख तो क्या नाम कमाया!
इक्कीस दफा वैरियोंको मार गिराया॥१

उत्साह ही इस जगमें सफलताका पिता है।
उत्साह ही वैरीके लिये जलती चिता है॥

उत्साह ही माधुर्यमें स्वादिष्ट सिता(१) है।
उत्साहका इस जगमे अजब ढंग किता(२) है॥
उत्साहपै रहती है सदा ईशकी छाया।
वीरोंके सुकृत्योंने है यह जोग लखाया ॥१८॥
कर्तव्यका पालन ही है बस धर्म कहाता।
कर्तव्यका पालन ही है सब पुण्यका दाता॥
कर्तव्यका पालन ही है सुरलोक दिलाता।
कर्तव्यका पालन ही है संसारका त्राता॥
कर्तव्यके पालनमें जो है ढील दिखाता।
वह मानो है संसारकी बुनियाद ढहाता ॥१९॥
संसारमे हर व्यक्ति अकेला ही है आता।
फिर अन्त समय जगसे अकेला ही है जाता॥
कर्तव्यके पालनसे जो है पुण्य कमाता।
वह पुण्य ही दो रूपसे है मोदका दाता॥
धर धर्म-वपुष संगमें उरलोक सिधारै।
यश-रूपसे संसारमें प्रख्याति पसारै ॥२०॥
कर्तव्यके पालनसे उभय लोकका आनन्द।
लेते न बनै जिससे उसे जानो महा मन्द॥
इस अबसे विषय-वासनाके छोड़ दो छल-छन्द।
कर्तव्यके पालनसे बनो सच्चे अकिलमन्द॥

---

(१) सिता—चीनी।
(२) किता—तौर

बस चेतो, उठो देरके करनेका नहीं काम ।
वैरीको भगा मोदमें आकर करो विश्राम" ॥२१॥

ये मातु-वचन सुनते ही संजयको हुआ ज्ञान ।
बस जाग उठा चित्तमें क्षत्रित्वका अभिमान ॥
निज सैन सजा शत्रुसे जाकर किया घमसान ।
उत्साहके कर्त्तव्यके साथी बने भगवान ॥
सब सैन सहित शत्रुको यों मार भगाया ।
ज्यों भानु लखे भगती है तम-तोमकी माया ॥२२॥

संजयसे विलासीको महावीर बनाना ।
आलस्य-भरे चित्तमें उत्साह भराना ॥
कायरको, कुमति, क्रूरको कर्तव्य सिखाना ।
निज वंशके अभिमानको गिरनेसे बचाना ॥
ये कृत्य कठिन सकता है कर कौन विधाता ?
अनुभव है मेरा कहता, कि बस एक 'सुमाता' ॥२३॥

हे राम ! दयाधाम ! शरण-पाल अनोखे ।
हम सबको बना दीजिये कर्त्तव्यके चोखे ॥
इस हिन्दने आलससे बहुत खाये हैं धोखे ।
सम्पत्तिको जाती है विषय-वासना सोखे ॥
हर घरमें प्रगट कीजिये विदुला सी सुमाता ।
सिखलाके बना दें हमें कर्तव्यका ज्ञाता ॥२४॥



देवल देवी

हर हिन्दके बालकको जो हो वीर बनाना ।
संतानको कर्तव्यका हो ज्ञान कराना ॥
आलसको छुटा भरना हो उत्साह-ख़ज़ाना ।
कायरको धराना हो जवांमर्दका बाना ॥
मंजूर हो निज देशकी मर्य्याद रखाना ।
तो हिन्दकी माताओंके गुण गाके सुनाना ॥ १ ॥

माताओंके गुण-गानका अभ्यास भुलाना ।
है उनकी सुभग कीर्तिमें इक दाग़ लगाना ॥
इस पापके फल-भोगकी तादाद बताना ।
है शक्तिसे बाहर, सही अन्दाज़ लड़ाना ॥
माताओंके गुण-गान भुलानेका कुफल है ।
हर व्यक्ति, जिसे देखो व कायर है, निबल है ॥ २ ॥

ऐ हिन्द-निवासी! ज़रा इस ओर निहारो ।
धर ध्यानमें इस मेरे कथनको तो विचारो ॥
यदि सत्य हो कुछ इसमें तो ले चित्तमें धारो ।
यदि झूँठ ऊँचै, जाते हो जिस पंथ, सिधारो ॥
"तुम भूल गये जबसे सुमाताओंका गुण-गान ।
वीरत्वने उस दिनसे किया हिन्दसे प्रस्थान" ॥ ३ ॥

भारतकी वही भूमि, वही वायु, वही जल।
है अन्न वही और वही फूल, वही फल॥
गङ्गा भी वही, सिन्धु वही, विन्ध्य-हिमाचल।
क्या हेतु, मनुष्योंमें नहीं है वही कस-वल?
कमाससे चौंड़ासे, पिथौरासे, शिवासे।
आल्हासे, समरसीसे कहाँ वीर हैं खासे? ॥४॥

माताओंके गुण-गान जो होने लगें घर-घर।
फिर पैदा हों इस हिन्दमें वैसे ही प्रबल नर॥
वल-सीम महा भीमसे, अर्जुनसे धनुर्द्धर।
हों सत्यव्रती राय युधिष्ठिरसे भी बढ़कर॥
सहदेवसे विद्वान हों, सुन्दर हों नकुलसे।
हों भीष्मसे पनपाल लसें कीर्त्ति अतुलसे ॥५॥

देवल सी सुमाताका सुनाऊँ तुम्हें गुण-गान।
निज पूतोंको जिसने था वनाया महा बलवान॥
निज धर्मका पुत्रोंको सिखाया था भला ज्ञान।
वीरत्व लखे जिनका ज़माना भी था हैरान॥
आल्हा था बड़ा धीर तो ऊदल था विकट वीर।
हाथोंहीसे शेरोंको पकड़ डालते थे चीर ॥६॥

विधवा हुई देवल तो युगुल वाल थे नादान।
कर्तव्यका था उनके दिलोंमें न उचित ज्ञान॥
मारा है पिता किसने, किया किसने है हैरान?
घर-बारका सब लूट लिया किसने है सामान?

इन बातोंकी आल्हाको, न ऊदलको ख़बर थी ।
बस खेलना खाना ही फ़क़त मनकी लहर थी ॥ ७ ॥

देवल थी चतुर, बच्चोंको निज हाथ खेलाती ।
नहलाती थी, पर भूमिपै थी नित्य लेटाती ॥
निज साथ ही रखती थी जहाँ आप थी जाती ।
नित प्रेम-सहित रातको निज सङ्ग सोलाती ॥
वीरोंके चरित रातको किस्सोंमें सुनाती ।
कुछ लानेके मिस दूर अँधेरेमें पठाती ॥ ८ ॥

निज साथ लिये जाके पहाड़ोंपै घुमाती ।
लँघवाती कभी नाला, कभी खोह झँकाती ॥
धावासे कभी घाटीपै चढ़नेको बताती ।
मिस करके जड़ी कोई शिखरपरसे मँगाती ॥
इस भाँति सदा खेलमें वीरत्व सिखाती ।
क्षत्रीका परम धर्म सिखा, वीर बनाती ॥ ९ ॥

ले जाके अखाड़ेमें पटा-बाँक सिखाती ।
भालेके, कभी सैफ़के सब हाथ बताती ॥
वन-जीवोंका आखेट चतुरतासे कराती ।
धनु-बाणका अभ्यास भी खुद करके दिखाती ॥
बिछुवाकी, कटारीकी, कराबीनकी घातें ।
निज हाथसे कर-करके सिखाती सभी बातें ॥ १० ॥

घोड़ेकी सवारीके सकल मर्म बताये ।
हाथीके चलानेके भी सब तर्ज़ सुझाये ॥

तेग़ाके, तवर, तीरके सब दाँव सिखाये।
रण-खेतमें रथ हाँकनेके ढँग दिखाये॥
सिखलाया उरग-व्यूह, गरुड़-व्यूह बनाना।
गज-व्यूह, चक्रा-व्यूहसे सेनाको लड़ाना ॥११॥
सब व्यूहोंका फिर तोड़ भी पुत्रोंको बताया।
शरपंजरी करना भी सहित प्रेम सिखाया॥
नगफाँस, उरगफाँससे बचना भी सुझाया।
विषबाल* विकट फाँससे बचना भी लखाया॥
फिर मोरचाबन्दी व क़िलाबन्दी सिखाई।
किस भाँतिसे होती है बुरजबन्दी बताई ॥१२॥
सिखलाया गुणी लोगोंका सम्मान भी करना।
बिगड़े हुए हथियारको फिर शोधके धरना॥
सुर, विप्र, गऊ, भूमिके हित शत्रु कतरना।
निज वंशकी मर्य्यादसे तिल-मात्र न टरना॥
जननी सी जनमभूमिकी मर्य्याद बताई।
वीरत्वकी हर बात, सहित नेह सिखाई ॥१३॥
जब पुत्र हुए ज्वान तो सब भेद बताया।
माँड़ाके करिंगाका कपट-कार्य सुनाया॥
चतुराईसे निज चित्तका सब भाव जनाया।
उत्साह दिलानेको वचन एक सुनाया॥

---

*विषबाल—विष-कन्या।

"जो बापका बदला न ले वह पूत नहीं है।
दबता है जो, निज धर्ममें मजबूत नहीं है ॥१४॥
नौ मास असह भार जो माता है चलाती।
निज रक्तको कर श्वेत है दो वर्ष पिलाती॥
खुद कष्ट अमित सहती है, कर वज्रकी छाती।
चन्दनसा समझ प्रेमसे मल-सूत्र उठाती॥
उस मातुका जिस पूतने जियरा न जुड़ाया।
हा खेद ! वह संसारमें फिर काहेको आया?॥१५॥
क्षत्रीका सकल धर्म तुम्हें मैंने सिखाया।
रण-खेलमें अत्यन्त चतुर तुमको बनाया॥
अब ज्वान हुए, समझो तो अपना व पराया।
सानन्द रखै तुमको भवानी महामाया॥
इतना ही तो हूँ चाहती लो बापका बदला।
यश-नीर मेरे स्वामीका होजाय न गँदला ॥१६॥
जो पूत न निज मातुके मन मोद बढ़ावै।
निज पितुकी न कुल-कीर्ति-ध्वजा ऊँचे चढ़ावै॥
नौ मासका ऋण, मोल न दुधवाका चुकावै।
कायर हो पिता-वंशमें कुछ दाग़ लगावै॥
इस पुत्रका होना है न होनेके बराबर।
बस जान लो उस पुत्रको भू-भार सरासर" ॥१७॥
यों कहके वचन पुत्रोंका उत्साह बढ़ाया।
रण-साज सजा माँड़ोको रणहेत पठाया॥

सुत-प्रेमसे खुद साथमें जा हाथ बँटाया।
माँड़ाके करिंगाको ठिकाने ही लगाया॥
इस भाँतिसे निज पूतोंका यश जगमें अचल कर।
निज नाम अमर कर, बसी सुर-धाममें चलकर ॥१८॥

माता है वही पुत्रोंको कुल-धर्म सिखावै।
दुनियामें अचल कीर्ति कमाना ही बतावे॥
पुत्रोंका असत छोह न मनमे कभी लावै।
निज धर्ममें रत होनेका उत्साह बढ़ावे॥
पुत्रोंको न होने दे कभी धर्मसे अनजान।
बस ऐसी सुमाताओंको यश देता है भगवान ॥१६॥

जिस माताने निज पुत्रको निज धर्म सिखाया।
उसने ही है संसारमें शुभ नाम कमाया॥
पुत्रोंको भी दुनियामे विभव-भोग कराया।
शुभ कीर्ति सहित वंशका सम्मान बढ़ाया॥
यश-पुष्प हैं दुनियामें अभी उनके महकते।
हैं नाम अमर उनके सितारोंसे चमकते ॥२०॥

ध्रुव-मातु 'सुनीती'* का सुभग नाम सुमिर लो।
मन्दालसाका नाम भी निज ध्यानमें धर लो॥
सह प्रेम सुमित्राको नमस्कार भी कर लो।
कुन्ती सी सुमाताकी सहस बार ख़बर लो॥

* 'ध्रुव' का सचित्र जीवन चरित्र हमारे यहाँ छप रहा है, जिसमे उनकी 'सुनीति' के भी अचल पातिव्रतका हाल भी दिया गया है।

ऐसी ही सुमाताओंने भारतको बढ़ाया ।
खुद कष्ट सहे, पुत्रको निज धर्म पढ़ाया ॥२१॥

माताहीकी शिक्षासे हुए बुद्ध यशोधर ।
माताहीकी शिक्षासे बढ़ा वीर सिकंदर* ॥
माताहीकी शिक्षासे विजेता बना बाबर† ।
माताहीकी शिक्षा भी शिवाको हुई हितकर ॥

ऐसी ही सुमातायें जो चाहैं सो धरैं कर ।
जैसा ही चहैं वैसा करैं पुत्रको गढ़कर ॥२२॥

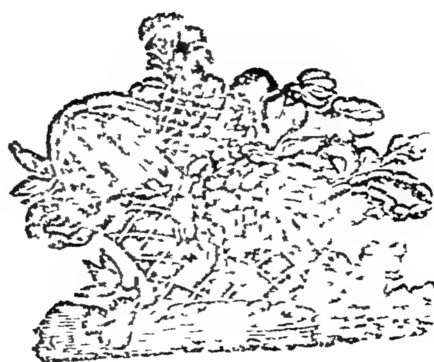
देवलने रँड़ापेमें भी हिम्मत नहीं हारी ।
वर वीर बना पूतोंको निज कीर्त्ति पसारी ॥
बदला लिया पति-शत्रुसे कहलाई सुनारी ।
यों दी है मदद हिन्दके वीरत्वको भारी ॥

इस हेतु है देवलको नमस्कार हमारा ।
ऐसी ही सुमातायें है भारतका सहारा ॥२३॥



---

* वीर 'सिकन्दर' का सचित्र जीवन चरित्र हमारे यहाँ १॥= मे मिलता है।
† बादशाह 'बाबर' का जीवन चरित्र हमारे यहाँ ।= मे मिलता है।



पाँचवाँ रत्न

वीर-पत्नी

इस हिन्दमें हो गुजरी हैं कुछ ऐसी भी नारी ।
मर्दोंकी तरह युद्ध किये हैं बड़े भारी ॥
स्वामीके भी मर जाने पै साहस नहीं छोड़ा ।
निज धर्मके हित खासे कभी मुँह नहीं मोड़ा ॥

भगवानदीन ।

रायमती

कोटाके निकट एक घने वनका निवासी।
इक रायचरण व्यक्ति था आखेट-विलासी॥
पत्नी थी यही रायमती स्वर्ण-लता सी।
कन्या थी सुभद्रा, जो थी इक चन्द्रकला सी॥
आखेटसे करता था य परिवार गुजारा।
इसके ही सुयश गानपै है लक्ष्य हमारा॥ १॥

यह रायमती देहसे नाजुक थी, निबल थी।
पति-देवमे सावित्री सरिस प्रीति अटल थी॥
सादी थी रहन, अपने स्वभावोंमे निछल थी।
गृह-कार्यमें थकती न थी, मानो कोई कल थी॥
पर, क्रोध-समय देखो तो चंडीसे प्रबल थी।
उत्साहसे भरपूर थी, आखेट-कुशल थी॥ २॥

होता कभी अस्वस्थ जो पति, आप ही जाती।
जङ्गलके सघन भागोमे रंचक न डराती॥
बन्दूक, कभी साँग, कभी तीर चलाती।
निज करके अचल लक्ष्यसे आखेट गिराती॥
फिर उसको लिये कोटाके बाजारमें जाती।
आखेटकी बिक्रीसे गृहकार्य चलाती॥ ३॥

कहती न थी, पर चित्तमें रखती थी यही चाह।
हो स्वामिको यदि व्याघ्रके आखेटका उत्साह॥
राज़ी हो प्रजा, मान भी करने लगे नर-नाह।
होने लगे परिवारका अच्छी तरह निर्वाह॥
हो मेरे ससुर-वंशका सम्मान भी भारी।
और मैं भी गिनी जाने लगूं वीरकी नारी॥४॥

इसके लिये कुल-देव सदा अपने मनाती।
एकान्तमें विनती यही दुर्गाको सुनाती॥
मिलता जो कहीं साधु, उसे शीश नवाती।
"मनसा फलै" आशीष कभी उससे जो पाती॥
ले उसकी चरण-रेणुको निज शीश चढ़ाती।
आनन्दसे निज देहमें फूली न समाती॥५॥

जब रायचरण शामको आखेटसे आता।
आखेटका सब हाल स्वपत्नीको सुनाता॥
आखेटकी बिक्रीसे जो धन-अन्न था लाता।
सब प्रेम सहित हाथमें पत्नीके गहाता॥
शूकरके सुआखेटकी जब बात बताता।
उस रोज़ स्वपत्नीको अधिक मोदमें पाता॥६॥

जिस रोज़ सुनाता किसी लघु जन्तुका संहार।
तब रायमती देती उसे प्रेमकी फटकार॥
"लघु जन्तुके आखेटसे शोभा नहीं सरकार!
वीरत्वकी शोभा है करै वीरहीपर वार॥

हारीत, लवा, क्रौंच, कबूतरके शिकारी ।
पा सकते नहीं जगमें कोई नामना भारी ॥ ७ ॥

मृग-बाल, शशा, पक्षी तथा मीनका संहार ।
आखेट कहाता है अधम जानलो सरकार !
बिग रोझ, हिरण, बेझा, श्वना, शल्लकोपै वार ।
आखेट य मध्यम है, सुनो प्राणके आधार !

"घड़ियाल, मगर, बाघ, शूअर मारके लाना ।
उत्तम है, शिकारोंमें, यही वीरका बाना" ॥ ८ ॥

जब पाती सुअवसर तभी यह बात सुनाती ।
निज नाथके उत्साहको इस भाँति बढ़ाती ॥
स्वामीके भी थी चित्तमे यह बात समाती !
"नारी तो है; पर बात तो अच्छी है बताती ॥

मिल जाय सुअवसर तो करूँ पापका आखेट ।
प्यारी हो मुदित, दूर हो दारिद्रकी दपेट" ॥ ९ ॥

कुछ काल गये कोटामें संवाद य पाया ।
नर्मदाके जङ्गलोंमें इक बाघ है आया ॥
जो निर्दयी गाँवोंमें उपद्रव है मचाया ।
हर ओर किसानोंमें महाशोक है छाया ॥

दस बीस किसानोंको है उस बाघने खाया ।
दस-पाँच अहेरियोंको ठिकाने है लगाया ॥ १० ॥

कोटाके धराधीशने डौंड़ी है पिटाई ।
"देगा जो मार शेरको इस भयसे रिहाई ।

वह चाहे जो हो, भील, कि क्षत्री, कि कसाई।
धन, मान दे मानूँगा उसे निज सगा भाई॥
मारेगा जो इस बाघको मानूँगा उसे वीर।
सेनामें सुपद देके करूँ मान भी गम्भीर" ॥११॥

सुनतेही समाचार हुआ मोद तो भारी।
पर रायमतीने न कोई बात उचारी॥
दिन दूसरे आखेटकी लख पूरी तयारी।
कहने लगी निज स्वामीसे "यह काम है भारी॥
हो हुक्म, मदद करनेको मैं साथ चलूँ नाथ!
नारी भी तो पतिकाही हुआ करती हैं इक हाथ! ॥१२॥

जो साथ नहीं लेते तो घर शामतक आना।
उस वनमें उचित हो नहीं है रात बिताना॥
मिल जाय जो बघवा तो प्रथम हाँक सुनाना।
ललकार बिना उसपे न हथियार चलाना॥
चोरोंका नहीं काम कि चुपचाप करें वार।
बन्दूक य लो, साँग य लो, लो य है तलवार" ॥१३॥

हथियार लिये रायचरण वनको सिधारा।
आशाकी उमङ्गोंने था सब भयको सँहारा॥
अरमान य था "आज जो इस बाघको मारा।
खुल जायगा बस कलहहीसे भाग्य हमारा॥
प्यारी सुभद्राके विवाहार्थ धरूँगा।
सम्मानसे घरवालीके मन मोद भरूँगा" ॥१४॥

खाता हुआ इस भाँतिके आशाके बताशा।
हिम्मतसे भगाता हुआ भय और निराशा॥
लखता हुआ हर ओर सघन वनका तमाशा।
जाता था चला मनमें सफलताकी थी आशा॥
शाके कुसुम होते हैं अत्यंत मनोहर।
आशा ही बना देती है वीरोंको यशोधर ॥१५॥

आशाहीसे संसारके सब काम हैं चलते।
आशा न अगर होती तो सब हाथ ही मलते॥
वीरोंके तो आशाहीसे हैं काम निकलते।
क्रूरोंके निराशाहीसे हैं चित्त दहलते॥
व्यक्तिको यह चाहिये आशाको न त्यागे।
उत्साहसे निजधर्मके पालनसे न भागे ॥१६॥

रस्सीसे बँधा साथमें बकरा भी लिये था।
बन्दूक भरी बान्धे पै, कुछ डर न हिये था॥
हर ओर चतुर नरकी तरह दृष्टि किये था।
हर पातके खड़केकी तरफ कान दिये था॥
ता हुआ जा पहुंचा जहाँ खड्ड था इक ओर।
थी राह बहुत तङ्ग, इधर बन था महा घोर ॥१७॥

इतनेमें अचानक ही गिरा बाघ जो आकर।
धक्केसे शिकारी तो गिरा खड्डमें जाकर॥
देखो हुआ पत्थरोंकी टक्करें खाकर।
इस बाघने भी राह ली बकरेको उठाकर॥

इस भांति बचे प्राण, मगर चोटसे बेहोश।
दिन-रात पड़ा रह गया उस खड्डमें खामोश ॥१८॥

बस शामको जब रायचरण घर नहीं आया।
तब रायमती-चित्तमें कुछ सोच समाया॥
भयभीत हुई, समझी कि "या बाघने खाया।
या बाघको वध हर्षसे कोटाको सिधाया॥

हे मातु कृपाधाम! भवानी महामाया!
प्राणेशकी रक्षा करो, लो यह मेरी काया" ॥१९

इस भाँति बड़े खेदसे वह रात बिताई।
'कर्त्तव्य है क्या' सोचते निद्रा नहीं आई॥
भोजनकी तो क्या, जलकी भी सूरत न सोहाई।
कन्याको भी कुछ थोड़ी पँजीरी ही फँकाई॥

कंधे पै तो बन्दूक थी, कन्या थी कमर पर।
तड़के ही दिखाई पड़ी जङ्गलके सफर पर ॥२०

बन्दूक वह गज गोलोको चर्बन सा चबाती।
टोपीकी चिलम, दारूकी दम खींच लगाती॥
ठाँ, करते ही जीवोंके जिगर भूनके खाती।
थी नार बड़ी, खाते कभी भी न अघाती॥

सूधी हुई जिस ओर विधाता था उसे बाम।
उँगलीके इशारेसे ही कर डालती बस काम ॥२१

जा पहुँची जहाँ बाघका रमना था भयङ्कर।
और खोजमें स्वामीके लगी काटने चक्कर॥

वृक्षोंके घने झुंडोंमे फेंके कभी पत्थर।
माँदोंमें, गुफाओंमे कभी झाँकती झुककर॥
इस ओरसे उस छोर तलक टेर लगाई।
सूरतकी कहै कौन, कुछ आहट भी न पाई ॥२२॥
क्लेशित हुई जब प्यासके और भूखके मारे।
तब एक जगह बैठ गई ताल-किनारे॥
कुछ सोचके जल-देवके दो घूंट उतारे।
फिर दूध पिला कन्याको ये बैन उचारे॥
"हे सोजा सुभद्रा! तेरी रक्षा करे भगवान्।
मैं ढूढू तेरे बापको, या बाघके लू प्रान" ॥२३॥
कन्याको वहीं छोड़के बन्दूक उठाई।
इतनेहीमें इक झाड़ीसे डिंड़कार सी आई॥
जैसे कि मृगी कोई हो चीताकी सताई।
बस रायमती सुनते ही उस ओरको धाई॥
देखा, कि मृगी छोपे हुए बाघ है बैठा।
यह लखते ही बन्दूकके घोड़ेको उमेंठा ॥२४॥
छतियाई जो बन्दूक तो हिम्मतने भी की 'हाँ'।
चिल्लाई मृगी फिर भी उधर एक दफा 'डाँ'॥
इस ओरसे बन्दूक भी बोली कि 'अररधाँ'।
'धाँ धाँ' होते संग बाघ भी चिल्लाया 'वघरवाँ'॥
[illegible] यमालयको सिधारा।
बस रायमती बोल उठी [illegible] ॥२५॥

यस बाघ, मृगी छोड़के कन्याको उठाया।
नज़दीकके इक ग्रामके दिश पैर बढ़ाया॥
उस गाँवमें जा अपना सकल हाल सुनाया।
सुन हाल जिमींदारने लोगोंको बोलाया॥
"इस नारिके संग जाके उठा बाघको लाओ।
इस नारिके स्वामीका भी कुछ टोह लगाओ" ॥२६॥

सुनते ही किसानोंने बड़ा हर्ष मनाया।
फ़ौरन ही वहाँ जाके मरा बाघ उठाया॥
मिल सबने पता रायचरणका भी लगाया।
पीड़ासे कहरता हुआ इक खड्डमें पाया॥
उसको भी उठा प्रमसे सब ग्राममें आये।
'जय रायमती जीकी' वचन सबने सुनाये ॥२७॥

कोटाके धराधीशने संवाद य पाया।
तब रायमतीदेवीको निज पास बोलाया॥
सम्मान किया, खूब पुरस्कार दिलाया।
करवाके दवा रायचरणको भी बचाया॥
सेनामें सुपद देनेकी जब बात चलाई।
तब रायमतीने यही निज अर्ज सुनाई ॥२८॥

"सेनाका सुपद वीर पुरुषहीको है सजता।
जो राज्यके हित शत्रुको है खूब तरजता॥
निज स्वत्वके हित सिंह सरिस रणमें गरजता।
निर्भीक हो संग्रामके सब साज है सजता॥

मैं नारि हूँ, अबला हूँ, मेरा धर्म ही है और।
अबलाओंके कृत्यों पै जरा कीजिये कुछ गौर ॥२९॥

गृह-कार्य परम धर्म है, पति-सेवा महा काम।
पति-गेहही है नारिके हित मानो परमधाम॥
संतानकी रक्षा व सुशिक्षा करे निष्काम।
इतना ही है नारीके अहङ्कारका शुभ ठाम॥

इस हेतु क्षमा करके मुझे दीजिये वरदान।
पति मेरेको सेनामें सुपद देके करो मान" ॥३०॥

सुन रायमतीके य वचन भूपने माने।
सम्मान सहित उसको किया घरको रवाने॥
पतिको भी सुपद देके किया ठीक-ठिकाने।
सब दुःख व दारिद्र सकल उनके पराने॥

यदि नारिमें उत्साह हो, पति-प्रेम हो आला।
मिट सकता है परिवारका दारिद्र कसाला ॥३१॥

हे रायमती! प्रेमसे लो मेरा नमस्कार।
वरदान दो, भारतमें हो वीराओंकी भरमार॥
तुम सी ही सुवीराओंका है मुझको अहङ्कार।
यश-गान तुम्हाराही है इस 'दीन' का आधार॥

इस हिन्दकी अबलाओंको मति ऐसी दे भगवान्।
निज धर्मकी रक्षाका करें चित्तसे अभिमान ॥३२॥



जगम्मा

जिस सुदेवकी लीला जगमें अति विचित्र दिखलाती है।
बड़े-बड़े पण्डित गणको भी नहीं समझमें आती है॥
पथरीले प्रदेश काबुलमें मेवे मधुर पकाती है।
पावन और सरस ब्रज-भू पर कुंज-करील उगाती है॥ १॥
नीच कीचसे स्वच्छ कुमुदिनीके शुभ फूल खिलाती है।
अति प्रकाशमय दीप-शिखासे कारिखही निकलाती है॥
नीच वंशमें भी अति उत्तम नारि-रत्न उपजाती है।
उच्च और अभिमानी कुलमें अधम पुरुष जनमाती है॥ २॥
उस लीलामय भुवनेश्वरको सादर शीश नवाता हूँ।
एक अनोखी लीला उसकी तुमको आज सुनाता हूँ॥
लीला-लेखन-मिस भारतका वीर सुयश कुछ गाता हूँ।
"एक पंथ दो काज" कहावत अब कर सत्य दिखाता हूँ॥ ३॥
भारत-भूमि सदासे ऐसे गुण दरसाती आती है।
जिनके हेत सकल जग-जनसे अद्भुत आदर पाती है॥
वीर-प्रसूता होना इसका जगमें माना जाता है।
सर्वश्रेष्ठ इस गुणके आगे सब जग शीश नवाता है॥ ४॥
पुरुषोंकी तो बात कहूँ क्या, जो अबला कहलाती हैं।
भी विकट वीरता करके इसका सुयश बढ़ाती हैं॥

दुर्गा और द्रौपदीकी तो गाथा बहुत पुरानी है।
सुनो हालकी बात सुनाऊँ जो सब जगकी जानी है॥ ५॥
ओड़-पटेल* मालवा वाली जो टीकम कहलाता था।
कई सहस ओड़ लोगोंका मुखिया माना जाता था॥
'जसमा' एक षोड़शी बाला उसकी प्रिय घरवाली थी।
नीच जातिकी होने पर भी उसकी छटा निराली थी॥ ६॥
उस जसमाके नेत्र देखकर पंकज भी सकुचाते थे।
उसका मुख-मंडल विलोककर द्विजपति चक्कर खाते थे॥
रूप, शील, लावण्य, पतिव्रत उसके बहुत अनोखे थे।
सारे शुभ-गुण नारि-जातिके उसमें अतिशय चोखे थे॥ ७॥
ऐसी होनेपर भी जसमा पतिका हाथ बँटाती थी।
उसके साथ मृत्तिका ढोने सदा कामपर जाती थी॥
थी सुकुमार, किंतु श्रम कर-कर अपना स्वेद बहाती थी।
हुक्का, पानी भी भर-भर कर पतिको सुख पहुँचाती थी॥ ८॥
मिट्टी ढोते जो लम्पट जन जसमाको लख पाता था।
वही हवाई क़िले बनाता निज मनमें ठहराता था॥
बुद्धिमान जन उसी रूपने जब उसको लखपाते थे।
धूरभरी हीरोंकी माला टीकम-कण्ठ बताते थे॥ ९॥
सिद्धराज पाटनका राजा, जो गुजरात निवासी था।
था तो उच्च वंशका वह, पर लम्पट और विलासी था॥

---

* ओड़-पटेल—मालवादेशकी एक जाति, जो कुँआ, तालाब वगैरः खोदती है।

'सहसलिङ्ग' प्रख्यात सरोवर पाटनमे बनवाता था।
अन्य प्रान्तके मज़दूरोंको आदरसे बुलवाता था॥१०॥
दो सहस ओड़ोंको लेकर टीकमको बुलवाया था।
बड़ी कृपासे सब ओड़ोंको दे निवास ठहराया था॥
यथा योग्य मज़दूरी देकर सबको काम बताया था।
सबसे अधिक इन्हीं लोगोंका काम उसे मन भाया था॥११॥
अपने पुत्र, कलत्र साथमें ओड़ लोग सब लाये थे।
इसी हेतु राजाका कारज करते चित्त लगाये थे॥
टीकम था सरदार सबोंका, पूरी मेहनत करता था।
जसमाकी सेवासे खुश हो महा मोद मन भरता था॥१२॥
टीकमकी खोदी मिट्टीको जसमा लपक उठाती थी।
भर डलिया माथेपर रखकर फेंक दूरपर आती थी॥
श्रम-कण सहित स्वपतिका आनन देख-देख लहराती थी।
तब टीकमका श्रम हरनेको तान-तरङ्ग उड़ाती थी॥१३॥
रूपवती षोड़शी सुबाला, जब तरङ्गपर आती थी।
निज पतिके प्रमोदके कारण अमित भाव दरसाती थी॥
सरस व्यङ्ग-युत वचन बोलकर पतिको कभी हँसाती थी।
सखियों संग ठठोली करके कभी प्रमोद बढ़ाती थी॥१४॥
इसी भाँति आनन्द भावसे मास एक ही बीता था।
विपति-बज्र आ पड़ा अचानक जो सबका अनचीता था॥
सदा एक रस समय किसीका जाते सुना न देखा है।
इस दुनियामें दुष्ट दैवका यही अजूबा लेखा है॥१५॥

काम देखने हित पाटन-पति एक दिवस चल आता है।
रूपवती जसमाका यौवन लख लम्पट ललचाता है॥
दिवस दूसरे एक दूतिका उसके निकट पठाता है।
निज घरनी करने हित उसको, साम-दाम दिखलाता है॥१६॥
नित्य चाव बढ़ता है उसका पर कुछ पेश न जाती है।
दूतीके फन्दोंमें जसमा रंचक मात्र न आती है॥
अमित गुरिंदे कोतवालके जसमाके ढिग जाते थे।
विविध भाँतिसे उस अबलाको बहकाते-धमकाते थे॥१७॥
इसका भी फल हुआ न जब कुछ सिद्धराज अकुलाता है।
निज गौरव-मर्याद त्यागकर जसमाके ढिग जाता है॥
मकर-केतु अपने दासोंको कैसा नाच नचाता है।
देखो, एक मजूरिनको यों राजा विनय सुनाता है॥१८॥
"प्यारी जसमा, विनय मानले बन जा तू मेरी रानी।
अभी एक ही दिनमें तेरी भग जावे सब हैरानी॥
त्याग झोपड़ी महलोंमें बस, पहिन रेशमी बाना तू।
रत्नोंसे आभूषित होकर, कर प्रमोद मनमाना तू"॥१६॥
अति संकोचसे बोली जसमा "मुझे न रानी होना है।
मेरा ओड़ स्वपतिही मुझको सुखप्रद श्याम सलोना है॥
उसके सङ्ग झोपड़ी हीमें महलोंका सुख पाती हूँ॥
गजी पाट सम, कांस रत्न सम, जान प्रमोद मनाती हूँ"॥२०॥
सिद्धराज फिर यों जसमाको प्रेम सहित समझाता है।
"कोमल तन तेरा इस श्रमसे भारी क्लेश उठाता है॥

स्याह हुआ जाता है मुखड़ा बहुत पसीना आता है।
रानी बन सुख अमित भोगना तुझे नहीं क्यों भाता है?" ॥२१॥
तब सलज्ज जसमा यों बोली "राजा जी बलि जाती हूँ।
रानी होने हित अपनेको मैं अयोग्य अति पाती हूँ॥
तुम राजा, मैं ओड़ जातिकी नारी नीच कहाती हूँ।
मुझे न छेड़ो, मैं श्रम हीमें मनमाना सुखपाती हूँ ॥२२॥
कुछ सक्रोध हो सिद्धराज तब ऐसे वचन सुनाता है।
"सीधे समझानेसे तुझको राज्यानन्द न भाता है॥
देख अभी फौरन टीकमको पकड़ शीश उड़वाता हूँ।
तुझे पकड़, महलों लेजाकर, रानी अभी बनाता हूँ" ॥२३॥
बोली जसमा तब चण्डी हो, "कहाँ कुबुद्धि कमाई है?
राजा होकर ऐसी बातें, धो-धो लाज बहाई है!
कहाँ पवित्र राज-मर्यादा, कहाँ तुम्हारी बातें ये!
रक्षक कहलाकर करते हो भक्षककी सी घातें, ये ॥२४॥
वज्र परै रानीके पदपर, राज्य पड़े भरसाईं में।
दासो-दास, भोग सुख सम्पति; पड़े नरककी खाईं में॥
आग लगे ऐसे महलोंमें, जहाँ कुबुद्धि समाती है।
ऐसे अनुचित वचन बोलते तुमको लाज न आती है! ॥२५॥
अग्नि-देवको साखी करके जिस पतिको स्वीकारा है।
उसी पूज्य पतिको सेवा-हित यह मेरा मन सारा है॥
अन्य पुरुष चाहे जो छूना, उसके हेत अँगारा है।
मुझे छू सको तुम हाथोंसे, गुरदा नहीं तुम्हारा है ॥२६॥

जसमा ओड़िन, रानी-पदकी नहीं तनक भी भूखी है।
उसके आगे राज्य-सम्पदा एक उपरिया सूखी है॥
अपने पातिव्रत-पावकसे उसे जला दे सकती है।
राज-रानियाँ दुख भोगैंगी, इससे तनक झिझकती है॥२७॥
अनुचित वचन बोल निज जिह्वा क्यों अपवित्र बनाते हो?
ओड़-भुक्त जूठी पत्तलपर नाहक चित्त चलाते हो॥
तुम बलवान् पुरुष राजा हो, तुम्हैं न कुछकर पाऊँगी।
तो देखो कटार यह तीक्षण अपने पेट धसाऊँगी" ॥२८॥
जसमाकी प्रचण्डता लखकर सिद्धराज घबराता है।
अपना सा मुँह लेकर फौरन निज महलोंको जाता है॥
पातिव्रत-बलके आगे यों सब जग शीश नवाता है।
प्रबल नरेश मजूरिनको भी नहीं स्ववशकर पाता है॥२९॥
तब जसमा निजपति ढिग जाकर सारा हाल सुनाती है।
उसी रातमे घर भगनेकी निज सम्मति ठहराती है॥
ओड़ पचासक लेकर टीकम जसमा सहित पलाता है।
होत भोर ही पाटन-पति भी समाचार सुन पाता है॥३०॥
एक सहस्र सवार साथ ले उनके पीछे जाता है।
पाटनसे दस कोस दूरपर उनको पकड़े पाता है॥
जसमाने देखा अब सिरपर घोर विपत्ति घहराती है।
कालेश्वरका नाम सुमिरकर काली सी बन जाती है॥३१॥
कसकर लाँग, लपक लै तेगा, यों हुंकार सुनाती है।
"सुनो ओड़ सब, आज तुम्हारे सिरकी पगड़ी जाती है॥

तुम सबहीके अछत तुम्हारी पकड़ पटेलिन जावैगी ।
तब क्या तुमको ओड़ कहाते लज्जा तनक न आवैगी ! ॥३२॥
क्या तुम मेरे हेत समरकर अपना सुयश बढ़ाओगे ?
एक पटेलिनकी रक्षामें अपने प्राण गँवाओगे ?"
ऐसी बात पटेलिनकी सुन सब तयार हो जाते हैं ।
राजाकी सवार-सेनासे लोहा विकट बजाते हैं ॥३३॥
ऐसा देख पटेलिन जसमा पटेबाज़ बन जाती है ।
'हुं' 'हुं' कर कराल काली सी रणमें रक्त बहाती है ॥
किसी अश्वका शीश उड़ाकर धड़ धरनी टपकाती है ।
किसी ज्वानकी कमर कतरकर यमपुर उसे पठाती है ॥३४॥
पैर पकड़कर किसी ज्वानको भूपर खींच गिराती है ।
गर्दापर गिरते ही उसकी गर्दन भी उड़ जाती है ॥
सिद्धराजकी खोज लगाते जिधर लपककर जाती है ।
उसी ओरकी सारी धरती रक्त रँगी दरसाती है ॥३५॥
कहाँ सबपति है, कहाँ ओड़ हैं, इसका ध्यान न करती है ।
फ़क़त एक पाटन-नरेशको लपक ढूँढ़ती फिरती है ॥
जो करता है रोक राहमें, उसे कतर ही धरती है ।
इसी भाँति सारे रण-थलमे बनी बवण्डर फिरती है ॥३६॥
जसमाकी तलवार समरमें अद्भुत कृत्य दिखाती है ।
छू जाती है जिसके तनसे, यमपुर उसे झँकाती है ॥
जसमाका है खड्ग, किधौं है अग्नि ज्वाल झहराती सी ।
किधौं जीभ कालीकी, अथवा विज्जुलता लहराती सी ॥३७॥

टोकम सहित ओड़ सब मिलकर विकट युद्ध दिखलाते हैं।
किन्तु कहाँतक लड़ सकते थे, आखिर मारे जाते हैं॥
जसमाने यह हाल देखकर मरना ही अच्छा जाना।
मार कटार पेटमें! रक्खा सत्य पतिव्रतका बाना॥३८॥
मरते समय कड़ककर बोली "देखैं भारतकी नारी।
सत्य पतिव्रतमें रहती है कैसी शक्ति महा भारी॥
बड़े धराधिपकी इच्छा भी अवला एक नसाती है।
अपनी इच्छा रख, सुरपुर जा पतिको कंठ लगाती है" ॥३९॥
धन्य धरा भारतकी, जिसमें ऐसी अवला होती हैं।
प्राण-नाशसे भी अपने नहीं पातिव्रतको खोती हैं॥
धन्य जाति, कुल, ग्राम, धाम वह जहँ उपजैं ऐसी नारी।
ऐसी नारीका गुन गाकर सुख पाते हैं संसारी॥४०॥



नीला वा नीलदेवी

भारतके पञ्जाब प्रान्तमें नूरपूर बस्ती थी एक।
सूरजदेव वहाँका ठाकुर, रखता था वीरोचित टेक॥
साधारण ग्रामीण ढङ्गसे खेती करता चित्त लगाय।
जितना पृथ्वी-माता देती, लेता उतना सीस नवाय॥ १॥
छोटासा कच्चा घर उसका क़िला समझलो चाहे कोट।
लड़के, बाले, धन-सम्पति सब रहते थे उसकीही ओट॥
द्वारे नीम-पेड़के नीचे, था चबूतरा एक सुढार।
वहीं बैठकर वह करता था अपना देहाती दरबार॥ २॥
आमिल सूबेदार, गवर्नर ज़िमींदार, चौधरी अमीर।
इनमेंसे कोई भी उसको मिली न थी पदवी गम्भीर॥
तब भी अपने क्षात्र-तेजसे धर्म-सहित करके सब काम।
निज पुरजनका प्रेमपात्र हो, पाया था 'राजाजी' नाम॥ ३
दीनोंकी सहायता करना, और रोकना अनुचित कर्म।
देना दंड उदंड जनोंको वह समझे था अपना धर्म॥
इसी हेतु दो चार ग्रामके वासी थे उसके आधीन।
जो वह कहता सोई करते ग्राम-निवासी अपढ़ प्रवीन॥ ४
नौकर, चाकर, दास, टहलुवा, रक्षक, पहरू, ड्योढ़ीदार।
जो समझो सो सोमदेव था, पुत्र-रत्न जीवन-आधार॥
हृदयेश्वरी, मालकिन घरकी, दासी, लौंडी, बाँदी, सर्व।
एक नीलदेवी ही सब कुछ बन जाती सदैव सह-गर्व॥ ५

'सोमा ज़रा यहाँ तो आना' कहकर जब पुकारता सूर।
बालक "सोमदेव" तब पाता, अपने चित्त मोद भरपूर॥
'नीला थोड़ा जलतो लाना' यों पुकार पतिकी सुनि कान।
झपटि प्रेमयुत शीतल जल लै देती सहित मंद मुसुकान॥ ६॥
अवसर परे प्रेमयुत पतिकी नीला करती बहुत सहाय।
जिसको पाकर घर गृहस्थका सच्चा इन्द्रभवन बन जाय॥
पुत्र-प्रेम, पति-प्रेम, शूरता, वीराङ्गना-उचित गुण सर्व।
इनके सिवा गान-विद्यामें नीला रखती थी कुछ गर्व॥ ७॥
किसी पड़ोसीके घर कोई उत्सव होता मङ्गल-मूल।
आदर-सहित बुलाई जाती नीला-युत मङ्गली दुकूल॥
मधुर तानसे गाना गाकर गृह-देवता रिझाती ख़ूब।
इसी हेतु सब ग्राम-वधूटी उसे समझती थीं महबूब॥ ८॥
सोमदेव नीलाका बालक मित्रोंसे रखता अति प्रेम।
सभी ग्राम-गुरुजनकी आज्ञा-पालन था बस उसका नेम॥
भर्ता, पुत्र समेत सदाही नीला रहती हर्ष समेत।
वैसे ही निज धर्म-कृत्यमें सूरज रहता सदा सचेत॥ ९॥
इस परिवर्तनशील जगतमें देखी एक अनोखी बात।
सदा एकसे रहे न कबहूँ काहूके सारे दिन रात॥
इसी नियमसे नीलाका भी भाग्य-चक्र पलटा इस ओर।
पर नीलाने साहस करके सहे सभी दुख महा कठोर॥ १०॥
रहा एक अब्दुल शरीफ़ ख़ाँ सूर, जातिका यवन सुवीर।
विजय-हेत पञ्जाब देशमें आया लिये सेन रणधीर॥

लूटा, किसी नगरको फूंका, किसी ग्रामको दिया उजाड़।
निर्दय धन-लोलुपको लगती नरहत्या मानो खेलवाड ॥११
किसी वीरको काट गिराया, लिया किसी योधाको बाँध।
किसी किसी हेकड़ क्षत्रीको दिया लोह-पिंजरेमें धाँध ॥
कई एक क्षत्री वीरोंकी बहू-बेटियाँ लीं सब छीन।
अत्याचार मचाया दिल भर, किये सैकड़ों कर्म मलीन ॥१२
यह दुर्दशा देशकी लखके नीला मनमें हुई अधीर।
क्रोध-सहित पतिको ललकारा "नाहक़ बनता है तू वीर ॥
क्षत्री-रक्त नसोंमें तेरे तनक नहीं खाता है जोश।
सुनता नहीं यवन क्या करते, कहां गया है तेरा होश ?॥१३
वीर-कुमारी, वीर-वधूटी और वीर-जननीकी लाज।
जन्मभूमि, कुलकी मर्य्यादा रखना है क्षत्रीका काज ॥
रजपूतोंकी कन्या, नारी, यवन लोग लेते हैं छीन।
इसे देख लज्जासे तेरा मुखड़ा होता नहीं मलीन ?॥१४॥
चाहैं तो मुझको भी आकर यवन लोग ले जावैं छीन।
तेरा किया न कुछ भी होगा, रह जावैगा बनकर दीन ॥
रे कायर! तू जाति वंशका रखता नहीं तनक अभिमान।
ऐसे कायर नरकी नारी नाहक किया मुझे भगवान् !"॥१५॥
ऐसे वचन नारिके सुनके, गुनि यवनोंके अत्याचार।
सत्यवीर सूरजके तनमें हो आया रिसका संचार ॥
अधर और भुजदण्ड फड़कने लगे वीरके बारम्बार।
दमक उठा मङ्गलसा चेहरा, चमक उठे नैना अङ्गार ॥१६॥

'देवासिंह' एक नेही था उसको झटपट लिया बुलाय ।
"मेरे सब मित्रोंसे कह दो आज पड़ा है अवसर आय ॥
वीर-धर्मकी रक्षा करना यदि वे समझैं अपना काम ।
आवैं मेरे साथ, करें चल यवन सैनिकोंसे संग्राम" ॥१७॥
ख़बर पाय ग्रामीन वीरवर यथाशक्ति लै लै हथियार ।
सूरजके द्वारे जुड़ जुड़ कर हुए एकट्ठे एक हज़ार ॥
सुत-समेत सूरज हर्षित हो हुआ लड़ाईको तैयार ।
कसे कटारी, बाँक, बिछुरदा, नेज़ा, तबर, ढाल, तरवार ॥१८॥
नीलाने यह हाल देखके कहा सबोंसे यों ललकार ।
"क्षात्र-धर्म पर मरना होगा, लीजे चितमें सोच-विचार ॥
चित कदराता हो मरनेसे जिसका वह अबहीं घर जाय ।
क्षत्री होकर रणसे भागै उसकी माँका दूध लजाय ॥१९॥
मरना है अवश्य ही जगमे धर्म-हेत क्यों देहु न प्रान ।
प्रलय कालतक नाम रहैगा, राज़ी होंगे श्रीभगवान् ॥
जननी जन्मभूमिकी इज़्ज़त, वेटी, वहिन, नारिकी लाज ।
सुख,सम्पति,धन प्राण झोंककर रखना है क्षत्रीका काज ॥२०॥
इतना करनेका बल-साहस जिस क्षत्रीके अङ्ग न होय ।
बस, जानो उसकी माताने नाहक यौवन डाला खोय ॥
जन्मभूमिकी मर्यादाको जो क्षत्री नहिं सकै रखाय ।
निज नारीके सतीधर्मको कब सकिहै वह क्रूर बचाय ॥२१॥
आगे चलो करो रण बढ़कर मैं भी आती हूँ
रणसे जिसे विमुख पाऊँगी मारूँगी .२

कभी किसीने किया न होगा सो करके दूंगी दिखलाय
देखूंगी कैसा 'शरीफ़' है जो सन्मुखसे भाग न जाय" ॥२२॥
ऐसे वचन नील-देवीके सुन सब वीर उठे हुलसाय।
उठे फड़कि भुजदण्ड सबनके मुखपै रही ललाई छाय॥
कोऊ लगे उछारन नेज़ा, कोऊ खांडा रहे थहाय।
कोऊ कहैं "चलो अरि मारैं, चलो चलो वह भाग न जाय" ॥२३॥
यों उत्साहित हो सब छत्री यवन सेनके सन्मुख जाय।
सूरजके आज्ञानुसार हो गिरे यवन-दल पै हहराय॥
मारे, मरे, कटे बहु काटे, चले तीर, तरवार कटार।
रण-उन्मत्त भये सब क्षत्री जय-धुनि करें पुकार पुकार ॥२४॥
पहले दिन पचास क्षत्री कटि, मारे यवन तीनसौ वीर।
यवनोंके बहु सेना-नायक छिन्न भिन्न हो गये शरीर॥
सूरजने शरीफ़-सेनाके नायक तीन हने ललकार।
सोमदेवने सुत शरीफ़का रण-दङ्गलमें दिया पछार ॥२५॥
पुत्र-पतन सुनकर शरीफ़खाँ, सोमदेवके सन्मुख आय।
चारों दिशिसे ऐसा दावा जैसे चन्द्र-गहन घिर जाय॥
बेचारा नवयुवक अकेला पहले तो कुछ गया डराय।
फिर, माताके वचन याद कर लगा झाड़ने असि हरपाय ॥२६॥
रण-कौशलमें पक्का यवनवर सोमदेवके निकट सिधाय।
झपट चाहता था नेज़ा हनि उसे भूमिपर देय गिराय॥
देवाने आकर नेज़ा काट किया दो खण्ड।
मनोरथ हुआ यवन यों, निकल गया सोमा वरिबंड ॥२७॥

इसी भाँति अवसर पानेपर, सूरज लै क्षत्रिनकी भीर।
कभी दिवसमें, कभी रात्रिमें, हनता यवन-सेनके वीर॥
कई मासतक यों सूरजने, किया यवन-सेनाको तङ्ग।
सब सूरोंकी सिट्टी भूली, मारी सारी गई उमङ्ग॥२८॥
एक रात्रि यवनोंने छिपकर, सूरजके डेरों ढिग जाय।
समय पाय छापा एक डाला, छत्री सकल दिये बिडराय॥
पकड़ लिया सूरजको जिन्दा, लाये अपने दलके बीच।
क़ैद किया पिंजरेमें उसको कहे वचन कुछ अतिशय नीच॥२९॥
'बन्दी हुए यवनके सूरज' सुनी सोमने जब यह बात।
यवनोंपर धावा करनेको निश्चितकी भविष्य-अधरात॥
पुत्र-क्रोध लखिनीला बोली "बेटा! तू है अभी अजान।
यवनोंसे तू पार न पैहै, क्यों देता है अपने प्रान॥३०॥
जबतक मैं जीती हूँ तबतक तुझे न करना चहिये सोच।
कलही तेरे पितुको लाऊँ मारि यवन-सेनापति पोच॥
बिना गहे तरवार तमञ्चा, बिना लिये सँगमें कुछ सैन।
देख वीर-छत्रानी कैसे पूरा करती है निज बैन"॥३१॥
शत्रुहिं बन्दी लखि शरीफ़ख़ाँ, सेना-नायक लिये बुलाय।
"आज विजयका उत्सव होगा, सब सेनाको देहु सुनाय॥
साजौ सब जुलूसके सामां, मद्य, मांस हो गज़क तयार।
कुछ तवायफ़ें नाच-गान हित, बुलवाओ अब्दुलसत्तार॥३२॥
भांड़ भगतिये, नट बेड़िनियाँ बुलवालो नचवाओ खूब।
तीन रोज़ आनन्द उड़ाओ लिये बग़लमें निज महबूब॥

पाँच सात उमदा कंचनियाँ मेरे ढिग देना पहुँचाय।
उस काफ़िर कैदीका पिंजरा द्वारेपर देना रखवाय॥३३॥
मद्यपान कर नाच-गानसे जब हो जाऊँगा अलमस्त।
तब कञ्चनियोंसे जूतोंसे पिटवा उसे करूँगा पस्त॥
छत्री-कन्याओंका सत् भी उसके सन्मुख होगा भङ्ग।
तब देखूं उल्लूका पट्ठा दिखलाता है कैसा रङ्ग"॥३४॥
इस जलसेकी ख़बर पायके नीला बनी कञ्चनी-रूप।
सङ्ग सफरदाई लै सातेक सच्चे छत्री वीर अनूप॥
पहुँची यवन-सेनमें जाकरखाँ शरीफ़के डेरे-द्वार।
नैन सैन दै रक्षक मोहे, पहुँची जहाँ भरा दरबार॥३५॥
"बहुत दिनोंसे इश्तियाक़ था कब हुज़ूरका होय नियाज़।
बेनियाज़ने मक़सद मेरा पूरा किया, बढ़ा एजाज़(१)॥
सुनती हूँ हुज़ूरको अज़हद(२)गाना सुननेका है शौक़।
बंदी भी इस अपने फ़नमें रखती है औरोंसे फ़ौक(३)॥३६॥
हुक्म होय तो बंदी भी कुछ अपना फ़न दिखलावै आज।
नज़र इनायत(४)से हुज़ूरकी मेरा बन जावेगा काज॥
ख्वाहिश कुछ इनाम बख़शिशकी मुझे नहीं सच करती अर्ज़।
सिर्फ़ आपका दिल खुश करना समझी हूँ मैं अपना फ़र्ज़"॥३७॥
सुनकर ऐसी मीठी बातें लख नीलाका रूप अपार।
आनबान, सजधज, अङ्गोंकी लख शरीफ़ होगया शिकार॥
"हाँ हाँ जानी, आओ गाओ, सुनें तुम्हारी मीठी तान।

१—सम्मान २—अत्यधिक ३—बड़ाई ४—कृपादृष्टि

है इनाम इकराम कौनशै(१)तुमपर है निसार(२)यह ज्ञान ॥३८॥
लो, यहलो शराबका प्याला,लो यह ग़ज़क(३)ज़ायकेदार ।
खा, पी मस्त नशेमें होकर, फिर गानेकी उड़े बहार" ॥
"मैं हुज़ूर पीकर आई हूँ, ख़ूब नशेमे हूँ मख़मूर(४) ।
ज्यादासे गाना बिगड़ेगा, शौक करें आपही हुजूर" ॥३९॥
ख़ां शरीफ़के चले पियाले, नीला लगी अलापन राग ।
देस-रागकी ठुमरी गाई, फिर कुछ गाया राग-विहाग ॥
सोरठ और झिंझौटी गाकर मजलिस सबै मस्तकर दीन ।
स्वारथहित कुछ हावभाव करि खांशरीफ़ मनमोहित कीन ॥४०॥
'वल्ला, औ शाबाश वाह वा'चारोंदिशि गूंजा यह शोर ।
"वाह, ख़ूब क्या ख़ूब कहा है"की छा गई घटा घनघोर ॥
मदसे मस्त मदनसे मोहित, खां शरीफ़ मुद्रिका उतार ।
देने लगा नीलदेवीको, नीलाने यों कहा संभार ॥४१॥
"इसको अभी पासही रखिये,अभी और कुछ गाकर तान ।
दिल हुज़ूरका पूरा खुशकर,इकदम कर लूंगी भुगतान" ॥
यों कह कुछ वियोग रस अपना गाकर विरह जताया ख़ूब ।
सूरजदेव तान सुर सुनिके समझा,"है मेरी महबूब(५) ॥४२॥
नीला भला यहां क्यों आई, कैसे आई, किसके साथ ?
पकड़ी गई खुशीसे, अथवा सोताहूं या जगता नाथ !" ॥
यों विचार पिँजरेके भीतर सूरज सोचि-सोचि रह ⌄ ।
सत्य बात कुछ बूझ न पड़ती, कैसे कोई करै

१—वस्तु २—निछावर ३—चिखना नमकीन ४—मग्न

ख़ान शरीफ़ नीलदेवी पर मोहित हुआ हज़ारों जान।
बोला"आ नज़दीक बैठ जा, तेरे क़दमों पर कुरबान॥
जान-माल सब अपना समझो लो यह गजमोतीका हार।
आ नज़दीक बैठ जा जानी, कर लेने दे मुझको प्यार" ॥४४॥
यों मौक़ा पाकर नीला भी धीरे ढिग शरीफ़के जाय।
बैठ गई चुपके दक्षिण दिश, तब शरीफ़ बोला हरषाय॥
"लो जानी बोसा तो दे दो"योंकहि लपक बढ़ाया हाथ।
हाथ रोकि, नीला मनहीमन हरि-पद कमल नवाया माथ॥४५॥
खींचिकटारी निज चोलीसे, झपटिशरीफहिं दिया पछार।
सबके देखत आनन्-फानन् छातीमें धँस गई कटार॥
छाती फार रक्तसे रंजित मुखमें दिया कटारहि डाल।
बोली'इसका बोसा लेकर निजमनका अरमान निकाल' ॥४६॥
साज़िन्दे-रूपी क्षत्रीगण तबला और सारंगी डार।
खेंचि सिरोही निज कमरनसे छपछप करन लगे तलवार॥
सूरजदेव हाल यह लखिकै समझ गया नीलाका भेद।
पिंजरा तोड़ लोहछड़ लेकर किये बहुत यवनन शिर-छेद ॥४७॥
नीला लै शरीफ़का खांड़ा काटत शत्रु चली पति ओर।
सूरज भी बैरिन बिड़रावत नीला ओर चला करि ज़ोर॥
अहमद नामक एक यवनने सूरजका सिर दिया उड़ाय।
नीलाने फुरतीसे आकर पति-मस्तकको लिया उठाय॥४८॥
हाथ नाथ-सिर लीन्हें बायें हाथ करत तरवार।
शत्रु बचावत वारन, पहुँची जाय शिविरके द्वार॥

वीर-पत्नी



वीर-पत्नी "नीलदेवी"

देवासिंह अश्व द्वै लीन्हे, खड़ा यवन-सैनिकके भेष।
एक अश्व पै बैठि तुरंतहि, पहुँची झपटि आपने देश ॥४६॥
छत्रीधर्म सिखाय पुत्रको, धीरज सहित चिता बनवाय।
पति-सिर-साथ सती ह्वै नीला, पहुँची सत्यलोकमे जाय ॥
देश-प्रेम और जाति-नेम हित दिये नीलदेवीने प्रान।
जैसा कहा किया वैसाही, यही सत्य वीरोंकी वान ॥५०॥
नमस्कार है नीला तुझको, धन्य ग्राम जहँ किया निवास।
धन्य वंश पित-मातु धन्य वे, जिनके घरमे किया प्रकाश ॥
तेरा प्रेम-पात्र सूरज भी धन्यवादका पत्र लखाय।
सोमदेव सबभाँति धन्य है जो कहता था तुझको माय ॥५१॥
अब तो भारतकी सब नारी डरती हैं लखिकै तरवार।
इसी हेतु सब पुरुष यहाँके कायरपनके हुए शिकार ॥
हे ईश्वर! मेरी इक विनती है तुझसे यह बारम्बार।
दायाकर फिर वीर नारियाँ पैदाकर इस हिन्द-मंझार ॥५२॥





गङ्गा-यमुना मध्य ग्राम इक मोहनपूर कहाता है।
ज़िला बुलन्दशहरमें अबभी बसता पाया जाता है॥
इसी ग्रामका एक निवासी 'रामनाथ' कहलाता था।
जो अपनेको रामचन्द्रका वंशज वीर लगाता था॥ १
उस मौज़ेके दशम अंशका ज़िमींदार सरकारी था।
थोड़े धन, अच्छे प्रबन्धसे बना असामी भारी था॥
'कमला देवी' उसकी गृहिणी बड़ी प्रवीणा नारी थी।
सुन्दर, सती, साहसी, शूरा, पतिको परम पियारी थी॥ २
मोहनपुर भरमें यह कमला मधुरभाषिणी भारी थी।
कुलका अहङ्कार रखनेमें पतिसे नहीं पिछारी थी॥
गृह-प्रबंध पति-सेवा करना अपना धर्म विचारे थी।
निश्चय यही मोक्ष द्वारा है, यह मनमे निरधारे थी॥ ३
इसके रूप, गुणोंकी चर्चा चारो ओर सुनाती थी।
कामी यवनगणोंके चितपर अत्याचार मचाती थी॥
चर्चा सुन मेरठका हाकिम जो नवाब कहलाता था।
निज निकाहमे लानेके हित मन-ही-मन ललचाता था॥ ४
निज सूबेमें दौरा करना तब नवाब ठहराता है।
इधर उधरसे धूमधाम कर मोहनपुर ढिग आता है॥
'बंदी करलूँ रामनाथ'को यह विचार मन लाता है।
इसी काजहित कपट-रूपसे इक दरबार रचाता है॥ ५